॥ ओ३म् ॥

श्री हनुमान जी

का

जीवन-चरित्र

जिसको

श्रीमान् महाराजाधिराज जम्बू

काश्मीराधीश का आज्ञानुसार

स्त्रियों के लाभ के लिये

ठाकुर सुखरामदास चौहान

ने

देवनागरी में अनुवाद कराया

यह एडीशन

बाबू देवी दियालु जी

मालिक गुप्ता ऐन्ड कम्पनी टोहाना, देहली

ने

इम्पीरियल प्रिंटिंग वर्कस, मोची दरवाज़ा लाहौर में

ला० दुनीचंद मुद्रिक के प्रबंद से प्रकाशित कराया।

अष्टमवार २५००] सं० १९८२ [मूल्य १॥)

यह पुस्तक ... नी टोहाना से भी मिल सकती है।

...का पताः—नेशनल बुकडिपो नई सड़क देहली से मिलती है।

रोतों को हंसाने वाली ज़िन्दा दिल बनाने वाली
निहायत दिलचस्प किताब

हंसी का गोल गप्पा

यह पुस्तक उर्दू में बहुत पसंद की गई है और थो
ही दिनों में छै बार छप कर बारह हज़ार बिक चुकी है, अ
हिन्दी लिखे पढ़े महाशयों के ज़ोर देने पर इसका हिन्दी
अनुवाद छपवाया गया है जो हाथों हाथ बिक रहा है इस
किताब में हर प्रकार के मनुष्यों के लिये ऐसे दिलचस्प और
अनोखे चुटकले दर्ज हैं जिनको पढ़कर खवाह मखवाह हंसी
आये और जो आज तक आपने किसी किताब में पढ़े या
सुने न होंगे यानी अकल मन्दों और बेवकूफों के चुटकले
अफीमियों, अहदियों, कंजूसों के चुटकले मंजूम चुटकल
अकल बढ़ाने वाले सवाल व जवाब अनोखे रंग और ढंग
की दिल पसन्द गज़लें, लाजवाब, दिलफरेब, रसीले लेख
जिन के पढ़ने से दिल निहायत खुश हो दिमाग़ तरो ताज़ा
रहे चन्द लेख यह हैं :—

(१) हमारे शिश गुरू (२) वाह रे मैं (३) बिसमिल्ला
अलरहमानउल रहीम, मँहगा कर आटा ससती कर अफीम
(४) कोई कहता है दिवाना कोई कहता है सौदाई, खुशामद
सब की सब करते हैं जिससे जिसकी बन आई (५) बाकी
सब खैरियत है (६) हम खानदानी हकीम हैं।

चन्द दिल खुश करने वाली तसवीरें भी दी गई हैं
किताब को दिलचस्प बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी
कागज़ छपाई बढ़िया खूबसूरत जिल्द बंधी हुई मूल्य केवल
।।।) डाक व्यय ।=) अलग होगा।

मिलने का पता :—

मैनेजर गुप्ता ऐंड कम्पनी,

मु० टोहना, ज़िला हिसार।

Hanu-Man Ji

Sukh Ram Das

असली चित्र

पुरुष
महा-
चुप
यही
को
कार
कीर्ति

प्राचीनकालीन

भारतवर्ष का नक़शा

॥ ओ३म् ॥

भूमिका

मङ्गलाचरण ।
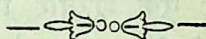
प्रथम शीश नवाय के कर ईश्वर का ध्यान ।
जो प्रभु करे सहायता चरित लिखूं हनुमान ॥
था पुरुष वह सूरमा और बड़ा विद्वान् ।
शंका उन की दूर हो जो कपि कहैं नादान ॥

रामायण जैसे ग्रन्थ को पढ़ कर कौन ऐसा पुरुष होगा जिसका मन गद गद न हो और जो महाराजा रामचन्द्र जी की स्तुति किये बिना चुप रह सके, वैदिक धर्म के सच्चे उत्साही यही महाराजा हुए हैं। जिन्हों ने जगत् के सर्व सुख आनन्दों को छोड़ और पिता की आज्ञा मान चौदह वर्ष बनवास स्वीकार किया और पिता का प्रण पूरा करके जगत् में यश और कीर्त्ति

प्राप्त की। परन्तु जब हम इन शूरवीर महाराजा के सेनापति का वृत्तान्त पढ़ते हैं तो एक आश्चर्य-दायक दृश्य दिखाई देता है, कहां ऐसे शूरवीर ज्ञानवान् महाराजा रामचन्द्र और कहां उनके सेनापति हनुमान जी? जिन्हें बन्दर (पशु) जाति में माना गया है।

प्यारे सज्जनो! क्या यह आश्चर्य-दायक दृश्य नहीं है। क्या हनुमान जी के काम जो उन्हों ने अपने जीवन में किये, प्रकट करते हैं कि वह पशु थे? कदापि नहीं। उन से तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह एक शूरवीर विद्वान् और बुद्धिमान् पुरुष थे न कि बन्दर। तो फिर यह कलंक उनको क्यों लगाया जाता है? क्या उनके माता पिता के जीवन वृत्तान्त सिद्ध करते हैं कि वह बन्दर थे? नहीं! कदापि नहीं!! आओ प्रथम इनके जन्म का हाल जीवन की घटनायें और महाराजा रामचन्द्र जी की सम्मति ढूंढें कि उन से क्या सिद्ध होता है।

प्रथम—यद्यपि बाल्मीकि और तुलसी रामायण की कई एक विषयों में एक सम्मति नहीं, तथापि दोनों में हनुमान जी के पिता का नाम पवन और माता का नाम अंजनी कथन किया है। अंजनी का अप्सरा होकर केशरी वानर की स्त्री होना (देखो तुलसी रामायण ६५८ किष्किन्धा काण्ड छापा बम्बई पं० ज्वाला प्रशाद मिश्र कृत) सिद्ध करता है कि केशरी मनुष्य था। क्योंकि यह स्वाभाविक बात है कि जिस जाति से कोई होता है उसी को चाहता है न कि अन्य को। शब्द अप्सरा से ज्ञात होता है कि वह एक अति सुन्दर

स्त्री थी। तब किस प्रकार निश्चय हो सकता है कि उसने को अपना पति बनाया हो। इसी स्थान पर कश्यप ऋषि ने रीति से प्रगट कर दिया है कि अंजनी और केशरी मनुष्यज से थे, क्योंकि उस में लिखा है कि केशरी उस बन का र था और जब उस ने हाथी मार कर धरती पर गिरा दिया कश्यप ऋषि ने उसको ब्राह्मण पालक कहा और यह केवल मनुष्य पर ही घट सकता है, न कि पशु पर। क्योंकि को तो अपना ही बचाव करना कठिन है मनुष्य की पाल किस प्रकार कर सक्ता है। आगे चल कर ग्रन्थकर्त्ता ने रीति से दर्शा दिया है कि "हनुमान के जन्म लेने से दोनों पुरुष सुख पूर्वक रहने लगे" यह शब्द स्त्री पुरुष का हम रहे सहे सन्देह को भी इस प्रकार निवृत्त कर देता है सोने को सुहागा।

द्वितीय—बाल्मीकि रामायण में लिखा है (देखो बाल्मी रामायण किष्किन्धा काण्ड पृष्ट ७५ सर्ग १६ परमेश्वरी दयाल टीका) कि जब ऋषि के श्राप से अंजनी बन्दरी हो गई तो स ही ऋषि ने उसको इच्छारूपी स्वरूप धारण करने का वर देदिया था, इस से प्रगट होता है कि अंजनी ने एक घड़ी बन्दरी का स्वरूप न रहने दिया होगा और उसी वरदान शक्ति द्वारा तत्काल स्त्री बन गई होगी। क्योंकि कोई मनु प्रसन्नता पूर्वक पशु के शरीर की चाहना नहीं कर सक्ता। आ चल कर लिखा है कि अंजनी सुन्दर वस्त्राभूषण से श्रृङ्ग

पर्वत के शिखर पर बैठी थी और यहां उसका पवन देवता
मेलाप हुआ। अब विचार का स्थान है कि पशुओं को भी
र अथवा वस्त्रों का अनुराग होता है वा नहीं ? उत्तर होगा,
पि नहीं ! भला एक बन्दर की स्त्री अर्थात् बन्दरी को
गा, कंघी और संदूर इत्यादि सोलह श्रृङ्गार की क्या आ-
कता हो सकती है।

तृतीय—यदि यह कहा जावे कि हनुमान जी दोनों
ायणों के अनुकूल पवन देवता के वीर्य्य से उत्पन्न हुए
और केशरी के वीर्य्य से नहीं तो हम बड़ी प्रसन्नता पूर्वक
र लेंगे, क्योंकि पुराणों में पवन को देवता माना गया है, तो
न प्रकार सम्भव है कि इनके वीर्य्य से पशु उत्पन्न हो। इसी
ति शिव पुराण में हनुमान जी की उत्पत्ति शिवजी के
र्य से वर्णन की गई है, जिस को मान कर उनका पशु होना
ो भी सिद्ध नहीं हो सक्ता।

चतुर्थ—महर्षि अगस्त्यमुनि श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण
दि से हनुमान की स्तुति करते हुए कहते हैं, कि "हनुमान जी
लकपन से ही ऐसे तीव्र बुद्धि थे, कि थोड़े काल में ब्रह्मा से
शास्त्र पढ़ कर सर्व विद्याओं में ऐसे निपुण होगए, कि ब्रह्मा
गुरु) भी उनकी ऐसी तीव्र बुद्धि देख कर चकित रह गया,
ामुनि अगस्त्य के इस वचन को सुन कर सब विस्मित
गए कि हम लोग भी हनुमान जी के आगे तुच्छ हैं" (देखो
तर काण्ड सर्ग ४०)।

पञ्चम—महाराजा रामचन्द्र जी ने स्पष्ट रीति से
लाया है कि हनुमान जी ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवे
जानने वाले थे और व्याकरण भी उत्तम प्रकार से ज
थे । (देखो वाल्मीकि रामायण पृष्ठ ५ किष्किन्धा काण
प्रभुदयाल कृत) यह भी कथन किया है कि हनुमान जी र
और वाली से अधिक बलवान और कुवेर, यमराज
विष्णु से अधिक वीर थे। जो गुण पण्डित और बुद्धि
के शास्त्रों में वर्णित हैं, वह रामचन्द्र जी ने सब हनुमान ज
कथन किए हैं । बड़े शोक की बात है कि महाराजा रामच
जी की बात पर विश्वास न करके हनुमान जी को ब
माना जावे । सब कथनों को छोड़ कर केवल इसी एक क
को लिया जावे तो आप मान लेंगे कि पशु में और सब
हो सकें तो हो सकें, परन्तु वेद शास्त्र का पढ़ना सर्वथा
सम्भव है । कोई भी इस बात को नहीं मानेगा कि पशु भी
विद्या को प्राप्त कर सकता है । इस कारण यहां स्पष्ट प्र
होता है कि हनुमान जी मनुष्य थे, न कि बन्दर । चूंकि ह
शूरवीर जरनैल (सेनापति) हनुमान जी का सम्बन्ध सु
से भी है और उनको भी बन्दर माना गया है । इस क
उचित प्रतीत होता है कि उनके विषय में भी देख भाल
जावे कि वह भी पशु थे या मनुष्य ? इस शंका के निवार
रामायण से बढ़कर और कोई माननीय पुस्तक नहीं हो सक

* रामायण अङ्गरेजी बाबू मनमथनाथदत्त कृत सन् १९०१ पृष्ठ

ान जी की उत्पत्ति के समान, बाली और सुग्रीव की
त्ति का वर्णन भी निराला दिखाई देता है, जो सृष्टि नियम
रुद्ध है। यह जान नहीं पड़ता कि ग्रन्थकर्त्ता ने किस
में आकर ऐसा कथन किया है। अस्तु कुछ भी क्यों न
रन्तु दोनों देवता के वीर्य्य से उत्पन्न हुए हैं। (देखो
ीकि रामायण उत्तर काण्ड, पृष्ठ ३९) इस लिये कोई कारण
कि इन को बन्दर माना जावे। इस बात की पुष्टि के लिये
न लिखित युक्तियों को विवेक दृष्टि से विचारिये।

१—जब रावण बाली से युद्ध करने आया तो उस समय
ी सन्ध्या कर रहा था (देखो बाल्मीकि रामायण उत्तर
ड पृष्ठ २५) क्या एक पशु को सन्ध्या इत्यादि कर्म करने
ज्ञान हो सकता है! कदापि नहीं!

२—(देखो बालमीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड पृष्ठ
सर्ग १७) जब रामचन्द्र जी ने बाली के बाण मारा तो
ने अपने मारे जाने का कारण पूछा, जिस पर उन्हों ने
र दिया कि तुम ने सुग्रीव की स्त्री को ग्रहण किया है, जो
शास्त्र के विरुद्ध है, इस लिये तुम्हारे मारने का कोई पाप
(देखो बालमीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड पृष्ठ २५)
क गण! पशुओं को यह विचार कहां, उनके स्त्री पति का कोई
बन्ध नहीं होता। धर्म शास्त्र का दण्ड मनुष्यों के लिये बनाया
है, न कि पशुओं के लिये, यदि यह बन्दर होते तो महाराजा
चन्द्र जी जैसे विद्वान् बाली का कभी वध न करते। यदि

रामचन्द्र जी ने पशु समझ कर यह वर्त्ताव किया था जो आज सृष्टि के सकल पशु वध के योग्य हैं, जो माता, भगिनि या पुत्री इत्यादि को ग्रहण कर लेते हैं।

३—जब बाली रामचन्द्र जी के हाथ से मारा गया तब अङ्गद ने शास्त्रानुकूल उसका अन्त्येष्टि संस्कार करवाया (देखो बाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड पृष्ठ ३७) पाठक गण! क्या आप अब भी बाली और सुग्रीव को बन्दर समझते हैं ? यदि यही विचार है तो आज कल किसी बन्दर वा पशु की क्रिया कर्म्म इत्यादि होते दिखाओ। इस का होना तो असम्भव है, किसी पशु को अपने सम्बन्धी पशु के शव को दबाते या जलाते ही दिखा देना पर्याप्त होगा। पर नहीं इन बेचारों को इतनी बुद्धि कहां! जहां कोई मरा वहीं पड़ा सड़ता रहा, कहां का जलाना और कहां का दबाना और क्रिया कर्म इत्यादि का तो नाम ही न लीजिये।

४—जब रामचन्द्र जी ने लंका पर आक्रमण किया तो प्रथम अङ्गद जो बाली का बेटा था, दूतवत् रावण के निकट भेजा, कि उसको समझा कर मेल करावे, और युद्ध तक बात न पहुंचे। अब विचारणीय स्थान है कि कहां एक पशु और कहां दूत का उच्च पद? बुद्धि चकित होती है कि किस प्रकार अङ्गद को पशु ठहरावें। वर्त्तमान समय में जिस कार्य्य के लिये एक योग्य से योग्य और स्याने पुरुष की खोज की जाती है, क्या सम्भव है कि उस गंभीर कार्य के लिये रामचन्द्र जी ने एक पशु को भेजा हो।

५—जब रामचन्द्र जी लंका को जीत कर अयोध्या जी में आये तो एक साधारण सभा की, उस समय देशदेशान्तर के राजा और बड़े २ पण्डित, हनुमान, विभीषण, जामवन्त अङ्गद इत्यादि उस में उपस्थित थे, और धर्म्म चर्चा होती रही (देखो बाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड पृष्ठ २९ सर्ग ४०) पाठक गण! इसका निर्णय आप पर है, यदि कभी आप ने अपनी सभाओं और धर्म्म चर्चा के उत्सवों में पशुओं को सम्मिलित किया है, तो यह भी हुआ होगा नहीं तो यह कब सम्भव है कि महाराजा रामचन्द्र जी की महासभा और उस में सभासद पशु!!! बुद्धि कभी विश्वास नहीं कर सक्ती और न ऐसा होगा॥

६—जिस समय महाराज रामचन्द्र जी लंका को जीत कर अयोध्या में आये तो भरत जी से हनुमान सुग्रीव आदि की स्तुति करके बोले कि यह लोग बड़े धर्मात्मा और हमारे भक्त हैं, इनको सर्व राजभवनों की सैर कराओ, जिससे हमारे गृह पवित्र हो जावें, भरत जी ने ऐसा ही किया तत्पश्चात् वह भवन जिसके सन्मुख एक मन मोहन उद्यान था, सुग्रीव के रहने के लिये नियत किया और हनुमान जी को अपने निज भवन में रहने की आज्ञा दी। (लंका काण्ड पृष्ठ १३९ सर्ग १२०) क्योंजी! न्याय कीजिये आप ने कभी पशुओं की स्तुति में ऐसे शब्द उच्चारण किये या सुने हैं, कि यह पशु बड़ा धर्मात्मा और भक्त है, और इसके चरणों से हमारे ग्रह पवित्र हो जावेंगे।

शोक! हम कुछ नहीं सोचते और ऐसे शूरवीरों को पशु मान बैठे हैं।

७—जब रामचन्द्र जी को राजतिलक हो चुका तो सब लोग अपने २ घरों को विदा होने लगे और प्रत्येक को योग्यतानुसार पारितोषिक प्रदान किया गया। अच्छे २ वस्त्र और आभूषण और रत्न दिये गये। सीता जी ने अपने गले की माला उतार कर हनुमान जी को दी। (देखो लंका काण्ड पृष्ठ १४६ सर्ग १३९) मान लिया कि वह बन्दर थे पर उनको आभूषण और वस्त्रों से क्या काम? धन रत्न की क्या सार! यदि है तो आज कल भी लाखों बन्दर हैं किसी एक को वस्त्र वा आभूषण पहिनते और रत्न रखते दिखा दीजिये। प्यारे पाठको! यह हमारी समझ का दोष है, वास्तव में यह वानर थे न कि बन्दर। वानर बन में रहने वाली एक मनुष्य जाति थी और उन दिनों महाराजा रामचन्द्र जी के साथ युद्ध में सम्मिलित हुई थी। केवल शब्द के उलटे अर्थ लिये गये हैं आगे चल कर आपको भली भांति समझाने के निमित्त इसका सविस्तार वर्णन किया जाता है॥

अनु-भूमिका

जब हम रामायण को पढ़ते हैं तो विचार करते हैं कि इस के योग्यकर्त्ता बालमीकि जी ने हनु-मान इत्यादि को वानर क्यों कहा. क्या उन के विचार में यह सब पशु थे ? नहीं ! कदापि नहीं ! प्यारे सज्जनो ! रामायण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि बालमीकि जी ने इनको पशु नहीं माना, यदि ऐसा होता तो हम को यह अवसर कभी न मिलता कि हम उनकी पुस्तक से ही बन्दर से मनुष्य सिद्ध करते। ज्ञात होता है कि बात कुछ और ही है। संस्कृत कोष में वानर उस को लिखा है जो बन में रहे और अपनी आयु अधिक वन के फलों पर व्यतीत करे। वास्तव में यह लोग किसी समय इसी भांति अपना जीवन व्यतीत करते थे, और भील और गौंड के समान रहते थे (देखो पिकचर्स औफ़ इन्डिया मिस्टर आरकस्ट कृत पृष्ठ १६९ और २९१) और कावेरी नदी और रामनाथ के मध्य व दक्षिण के उन पर्वतों में जो नासिक से बम्बई की ओर होते हुये सितारा देश से चल कर निज़ाम दक्षिण की ओर चले गये

बसते थे और बानर की संज्ञा से प्रसिद्ध थे। उस समय यह
ब्द एक साधारण शब्द था इस कारण बालमीकि जी ने इस
अर्थ सहित लिखना उचित न जाना, जब अविद्या का समय
रम्भ हुआ और व्योपार आदि के हेतु अन्य देशों में आना
ना हट गया, और न कोई प्राचीन इतिहास ही हमारे हाथ में
। तो हम ने वास्तविक घटनाओं से अज्ञात रह कर बानर शब्द
अर्थों को बन्दर पर घटाया और उस पर विस्तार पूर्वक
ख मारा, जो मन में आया वही धर घसीटा, उन के कामों
विचारना एक ओर रहा अपने ही लेख की सुध न रही
पहिले क्या लिखा है और अब क्या लिख रहे हैं। संक्षेपतः
शूरवीरों के बड़े २ कार्यों को दृष्टिच्युत करके उनको पशु
पद दिया, उक्त विषय को पुष्टि के लिये एक दृष्टान्त लिखा
ता है जिस में अविद्या की बात भली भांति समझ में आ
वेगी, यथा आज कल लाला रामदास सूरी या हरीदास बैल
प्रसिद्ध वकील हैं, और उनका नाम प्रथम श्रेणी के वकीलों
है और हर कोई जानता है कि वह क्षत्री हैं, सूरी और बैल
ल उनकी उपजाति की संज्ञा है, जो इन के नाम के साथ
खी जाती है। बहुत काल व्यतीत होने पर जब पंजाबी भाषा
व्योहार न रहे और न कोई इतिहास ही हो जिस से ज्ञात
सके कि सूरी और बैल क्षत्री जाती की एक उपजाति है तो
लेख को देख कर और इनकी योग्यता इत्यादि को सुन कर
रा विचारे हर कोई आश्चर्य से कहेगा कि किसी समय

पञ्जाब देश में सूर और बैल जाति के पशु भी वकीलों का क
करते थे, ठीक यही दशा हमारे बानर शब्द की हो गई है, थ
यह सब अविद्या के कारण हुआ है, हाय ! मूर्खता ! तू
हमारा पीछा छोड़ेगी अब तो दया कर, शोक ! तेरे कारण
अपने शूरवीरों को पशु बनाकर प्रसन्न हो रहे हैं, यदि कोई स
कहे तो उलटा बुरा भला कहते हैं, जब स्वयम् हमारी यह द
है तो अन्य जातियां जितनी घृणा हम से करें ठीक है।

प्यारे पाठकगण ! इस से पहिले कि हनुमानजी का जी
चरित्र लिखने के लिये हम लेखनी उठायें उचित प्रतीत होता
कि इन के माता पिता के विषय में भी विस्तार पूर्वक समालोच
की जावे, क्योंकि जब तक इनके माता पिता का सत्य वृत्ता
ज्ञात न हो, हमारा सत्य अभिप्राय प्रकट होना अत्यन्त कठि
प्रतीत होता है। देखने में इस जीवन वृत्तान्त का ढंग
निराला जान पड़ेगा, पर इसके बिना और युक्ति सिद्ध नहीं,
कारण हम पाठक गण से क्षमा मांग कर अपने शूरवीर जर
हनुमान जी का जीवन वृत्तान्त इनके माता पिता के व
से ही आरम्भ करते हैं, जो गुजराती भाषा की पुस्तकों
बहुत काल की देख भाल के पश्चात् प्राप्त हुआ है।

हमारी मनोकामना यह थी कि सीधे साधे लेख ही पाठ
गण की भेंट करें, परन्तु समयानुसार बहुत लोगों की सम
चार ख्व उपन्यास का ढंग स्वीकार करना पड़ा है। य

षय को सुन्दरता देने के लिये लेख सम्पन्न किया गया है तथापि सत्य घटनाओं को दृष्टिच्युत नहीं किया गया :—

यह वह किस्सा नहीं जिसमें बनावट की हों कुछ बातें,
बयां पुर दर्द है जनरल बहादुर की कहानी का।

ठाकुर सुखरामदास चौहान,

मालिक उरदू अख़बार राजपूत गज़ट,

लाहौर।

१ अप्रैल १९०२ ई०।

पञ्जाब देश में सूर और बैल जाति के पशु भी वकीलों का क
करते थे, ठीक यही दशा हमारे वानर शब्द की हो गई है,
यह सब अविद्या के कारण हुआ है, हाय ! मूर्खता ! तू
हमारा पीछा छोड़ेगी अब तो दया कर, शोक ! तेरे कारण
अपने शूरवीरों को पशु बनाकर प्रसन्न हो रहे हैं, यदि कोई स
कहे तो उलटा बुरा भला कहते हैं, जब स्वयम् हमारी यह द
है तो अन्य जातियां जितनी घृणा हम से करें ठीक है।

प्यारे पाठकगण ! इस से पहिले कि हनुमानजी का जी
चरित्र लिखने के लिये हम लेखनी उठायें उचित प्रतीत होता
कि इन के माता पिता के विषय में भी विस्तार पूर्वक समालोच
की जावे, क्योंकि जब तक इनके माता पिता का सत्य वृत्ता
ज्ञात न हो, हमारा सत्य अभिप्राय प्रकट होना अत्यन्त क
प्रतीत होता है। देखने में इस जीवन वृत्तान्त का ढंग
निराला जान पड़ेगा, पर इसके विना और युक्ति सिद्ध नहीं,
कारण हम पाठक गण से क्षमा मांग कर अपने शूरवीर ज
हनुमान जी का जीवन वृत्तान्त इनके माता पिता के व
से ही आरम्भ करते हैं, जो गुजराती भाषा की पुस्तकों
बहुत काल की देख भाल के पश्चात् प्राप्त हुआ है।

हमारी मनोकामना यह थी कि सीधे साधे लेख ही पाठ
गण की भेंट करें, परन्तु समयानुसार बहुत लोगों की सम्म
...कर यह उपन्यास का ढंग स्वीकार करना पड़ा है। य

षय को सुन्दरता देने के लिये लेख सम्पन्न किया गया है
ापि सत्य घटनाओं को दृष्टिच्युत नहीं किया गया :—

यह वह किस्सा नहीं जिसमें बनावट की हों कुछ बातें,
बयां पुर दर्द है जनरल बहादुर की कहानी का।

ठाकुर सुखरामदास चौहान,
मालिक उरदू अख़बार राजपूत गज़ट,
लाहौर।

१ अप्रैल १९०२ ई०।

प्रथम अध्याय

॥ महिन्द्रपुर ॥

हमारे उपन्यास का क्रम उस समय की घ
नाओं से प्रारम्भ होता है, जिस को अ
प्रायः ८ लाख* वर्ष के लगभग व्यतीत
चुके हैं और जो रामायण का समय कहल
है । इस समय राजा महिन्द्रराय†
छोटे से रियासत पर, जिसकी राजधानी महीन्द्रपुर‡ है,
करा रहा है ।

---

* देखो तारीख दुनिया भाग द्वितीय पृष्ठ ७४ पं० लेख
आर्य्य पथिक कृत ।

† देखो अंजना सती नोरास गुजराती भाषा में ।

‡ यह शहर हिन्दुस्थान के उस दक्षणीय भाग में था
बानरद्वीप के नाम से प्रसिद्ध था (देखो नकशा जो पुस्तक
साथ है) तुंगभद्रा और कावेरी नदी के मध्य में बसता थ
इसके बासी भी गोंड और कोल के समान थे (देखो पिक
औफ़ इण्डियन लाइफ़ आर्कस्ट साहिब कृत पृष्ठ
और १७०) ।

प्रातःकाल का सुहावना समय है सूर्य देवता उदय होने को हैं और ठंडी ठंडी वायु चल रही है राजा महिन्द्रराय की राज दुलारी अंजना देवी सखी सहेलियों सहित अपने अति सुन्दर और मनोहर उद्यान के बीच प्राकृतिक दृश्यों को बड़े प्रेम से अवलोकन करती हुई जा रही है, अकस्मात् उसकी दृष्टि इस सुन्दर पौदे पर पड़ी, जिस में रूपवान लहलहाते हुए फूल दृष्टिगोचर हो रहे थे, न जाने इस के मन में क्या विचार उठा कि कुछ कालतक टकटकी लगाये इन फूलों की ओर देखती रही है और अब कुछ सोच कर बसन्तमाला से वार्तालाप करने लगी है।

अंजना देवी—"सखी! देख यह कैसे मनोहर सुन्दर फूल खिले हुए हैं, और कोई तो अभी उन कामनियों के समान जो घूंघट की ओट कर लाल २ होठों में मुस्करा रही हों हरे पत्तों में से दीख पड़ते हैं, जिनके देखने से दृष्टि तृप्त नहीं होती, और ईश्वर की महिमा प्रकट होती है, पर साथ ही उनको भी देखना जो नीचे नाली में पड़े सड़ रहे हैं, एक वह समय था कि यह भी ऐसे ही सुन्दर और मन भावने थे, परन्तु अब तो इन पर दृष्टि डालने से मन घृणा करता है। इसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी तीन अवस्थाओं में विभक्त है—अर्थात् बालकपन युवा, और वृद्धावस्था—पर प्यारी सखी! सब से उत्तम और श्रेष्ठ भाग युवावस्था है, जिस में मनुष्य धन, धर्म दोनों एकत्र कर सकता है, इस में कुछ सन्देह नहीं कि जिस समय मनुष्य

युवावस्था में होता है, विषय वासना बहुत बढ़ जाती है, परन्तु वीर वही है जो इनको जीत कर प्रबल होजाए, नहीं तो मनुष्य और पशु में भेद ही क्या है। मनुष्य को उचित है कि युवावस्था को दुर्लभ जान परलोक के लिये धर्म, और वृद्धावस्था के लिये अर्थ संचय करे। जहां तक हो सके भलाई करे। दूसरों को दुःख न दे, नहीं तो स्मरण रहे कि उन सड़े हुए फूलों के समान वृद्धावस्था में निकम्मा होकर पश्चाताप करना पड़ेगा। दुःख सुख शरीर का भोग जान कर जो ईश्वर पर विश्वास रखता है, वही संसार में सुखी और आनन्दित रहता है"। बसन्तमाला कुछ कहने ही को थी कि इन्द्रमणी बोल उठी।

इन्द्रमणि—"राजदुलारी! तुम तो बड़ी बुद्धिमान हो और क्यों न हो, माता का घर है, पिता का राज्य है कल यह ज्ञान कहां जो आज है, जब ससुराल में जाओगी तब यहां की कदर जान पाओगी, वहां अपनी इच्छानुकूल चलना फिरना कठिन होगा, उद्यान का रमण तथा ज्ञान उस समय याद आयेगा, जब ननद की बोलियां और सास की धमकियां सुध भुला देंगी। प्यारी! स्त्री का मान अधिकतर पति पर होता है, सो देखें कैसा मिले? आनन्द में रखे अथवा कष्ट में"।

अंजनादेवी—"जब वह दिन आयेगा देखा जायेगा। विधाता के लेख को कौन मिटा सकता है, भाग्य में सुख है तो कष्ट नहीं। ईश्वर पर विश्वास है और की आशा नहीं"। इसी भांति बातें कर रही थी कि राजा और प्रधान इत्यादि उद्यान की ओर

आते हुए दिखाई दिये । अंजना देवी शीघ्रता से सहेलियों को साथ ले राज भवन को चली गई ।

राजा—(कन्याओं को देखकर) प्रधान ! यह कौन हैं ?

प्रधान—महाराज वह आगे २ राज दुलारी सखी सहेलियों सहित जा रही है ।

राजा—एं ! वह राज दुलारी ?

यह कहा और सिर झुका चिन्ता में होगया और थोड़ी देर पश्चात् बोलाः—

वर प्राप्त भई अंजना सुनो मित्र प्रधान ।
बैठ विचारो वर भला जो राखे कुल की आन ॥

धर्म कर्म में हो जती और बड़ा विद्वान् ।
वर घर ऐसा तब मिले जो हों भाग बलवान ॥

दूसरा अध्याय

वर की खोज।

सूर्य देवता तो शोकातुर होकर अन्तिम दृष्टि से जगत् को देखता हुआ पश्चिम को जा रहा है, और हम अपनी कल्पना को लिये हुए गोदावरी नदी के दक्षिण में जो एक श्रेणी पर्वतों की शैलाम्रू के नाम से रामायण में वर्णन की गई है आ रहे हैं।

अभी हम इन पर्वतों की सैर करते और अद्भुत दृश्यों को अवलोकन करते हुए जा ही रहे थे कि कुछ अति सुन्दर ऊँचे स्थान दाईं ओर दीख पड़े, जिनके अवलोकन की अभिलाषा ने हमको वहां तक पहुंचा ही दिया। कहने को यह एक छोटा सा नगर है पर मनुष्य संख्या को देखते उन सारे पहाड़ी नगरों की अपेक्षा कई अंश अधिक है, गली कूचे स्वच्छ, और सब गृह उन भवनों के अतिरिक्त जो दूर से दिखाई देते हैं एक समान हैं, यद्यपि सायंकाल के अंधेरे के कारण वह अद्भुत भवन भले प्रकार दिखाई नहीं देते तथापि बनावटी प्रकाश जो लाल और

यहां के राजा के मन्दिर हैं, जिनके अवलोकन की अभिलाषा में हम उसी ओर को बढ़े।

इस समय रास्ते में भीड़ की यह दशा है कि बाज़ार में चलना कठिन हो रहा है, ग्रामवासी अधिकता से हैं कोई आटा ले रहा है कोई दाल का भाव पूछ रहा है। संक्षेप ज्यों त्यों करके हम एक चौंक में पहुंचे यहां जो दृश्य दिखाई दिया वह यह है कि इस स्थान पर खड़े होने से देखने वाले की दृष्टी पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण को बिना किसी रुकावट के चली जाती है।

इस से पहिले इस प्रकार का चौंक हमारे दृष्टी गोचर नहीं हुआ था इस लिये हम बड़ी लालसा से वहां खड़े होकर देखने लगे। इतने में "हटो बचो" के शब्द सुनाई दिये और हम भी एक ओर होगये।

पूछने पर ज्ञात हुआ कि प्रधान बुद्धि प्रकाश की सवारी आरही है जो राजा महेन्द्रराय के भवन को जा रही है।

आहा! यह तो महिन्द्रपुर है जिसके नाम से पाठकगन भले प्रकार अभिज्ञ हैं। राजा महेन्द्रराय का नाम सुनकर हमारी अभिलाषा और भी बढ़ गई और हम उस सवारी के पीछे २ होलिये, थोड़ी ही दूर गये होंगे कि लोहे का एक बड़ा फाटक दिखाई दिया जिसके दोनों ओर दो सिपाही नंगी तलवारें हाथों में लिये पहरा दे रहे हैं, प्रधान को देखते ही फाटक खोला गया और उसकी सवारी अन्दर चली गई हम भी छाया

के समान सिपाहियों की दृष्टि से अपने आप को बचाते हुये साथ ही घुस गये। भीतर जाने पर अति सुन्दर भवन दीख-पड़े, पर उनको भली प्रकार से देखने का अवसर ही न मिला और हम प्रधान के संग दाईं ओर के दालान में जिसकी चारों भीतें श्वेत पाषाण के समान स्वच्छ और सुथरी बनी हुई हैं और नीचे बहुमूल्य गलीचा बिछा है चले गये, इस दालान में एक झाड़ लटक रहा है जिसके बनावटी उजाले ने स्वाभा-विक चांदनी को भी मन्द कर दिया है और लाल गलीचे पर एक हरे मखमल का गद्देला पड़ा है जिस पर राजा महेन्द्रराय गाव तकिया लगाय बड़े आनन्द से बैठे मन्त्री से वार्तालाप कर रहे हैं, प्रधान को देखते ही बोले:—

राजा—आइये प्रधान जी अभी आपको याद कर रहे थे।

प्रधान—योग्य सत्कार के पश्चात् दास भी उपस्थित है।

यह कह कर कुछ चित्र निकाल कर आगे रखे और उन में से दो उठा कर राजा के हाथ में देकर कहा :—

प्रधान—महाराज! यद्यपि बहुत से राजकुमारों के चित्र मंगाये गये हैं पर उन में से मेरी दृष्टि तो इन दो पर ही ठहरती है, आगे प्रभु मालिक हैं। (बाकी चित्रों को भी आगे करके) इनको भी अवलोकन कर लीजिये।

राजा—(साधारण दृष्टि से देख कर) इनको रहने दो।

यह कहा और फिर उन दोनों चित्रों को उठा कर देखने लगा। बहुत काल उन चित्रों को प्रत्येक ओर से देखने के पश्चात्

सोचता हुआ वहां से उठा और रानी वेगमोहनी के पास ले गया।

राजा—प्रिया जी! आप इन दोनों में से किसको अंजनादेवी के योग्य समझती हो? यह जो पिताम्बरी धोती पहने है, हरण्यात विद्याधर के पुत्र विद्युपर्व की है और यह दूसरी प्रहलाद विद्या धर के कुमार पवन की है।

रानी वेगमोहनी पहिले तो कुछ काल दोनों चित्रों को देखती रही पश्चात् कहने लगी :—

वेगमोहनी—स्वामिन्! मेरी सम्मति में तो दोनों अच्छे हैं, केवल इतना भेद अवश्य है कि जिसको आप विद्युपर्व के नाम से बतलाते हैं, शरीर का कुछ निर्बल प्रतीत होता है पर इसके चिन्ह चक्रों से जान पड़ता है कि बड़ा भाग्यवान् और विद्वान् होगा और दूसरी जो पवन की है, यह एक शूरवीर और विद्वान् दीख पड़ता है।

राजा—नहीं प्रिया जी एक और बात है जिसका बतलाना मैं भूल गया, वह यह है कि विद्युपर्व के विषय में मन्त्री इत्यादि का विचार है कि यद्यपि यह कुंवर बहुत अच्छा और सुन्दर है, पर ज्योतिष* विद्या द्वारा प्रतीत हुआ है कि इसकी आयु बहुत थोड़ी है, इस कारण मुझ को सन्देह हो गया है नहीं तो मेरी दृष्टि तो इस पर ही थी।

रानी—स्वामिन्! यदि यह बात है तो इसका नाम ही न

* देखो—रामायण गुजराती अध्याय तीसरा पंक्ति १२।

लीजिये क्योंकि जिस बात में सन्देह पड़ जावे उसका परिणाम प्रायः अच्छा नहीं होता।

राजा—प्रियाजी! क्या मैं नहीं समझता हूं? मेरी एक ही पुत्री है जब तक मैं अपनी तसल्ली न करलूं नाम न लूंगा।

रानी—महाराज! निस्सन्देह यह काम बड़ा वक्र है, अञ्जना देवी का आगामी सुख दुःख इस समय के विचार पर निर्भर है, हमारी तो इस समय की खुशी है और उसकी सारी आयु का झगड़ा।

राजा—प्रिया जी, निस्सन्देह! आप ने सत्य कहा, यह काम बड़ा विचार योग्य है। अच्छा पवन के विषय में आप का क्या विचार है? मेरी सम्मति में उस के साथ अञ्जना देवी का सम्बन्ध किया जावे तो अच्छा है।

रानी—महाराज! साधारण रीति से तो अच्छा जान पड़ता है, यदि आपको तृष्णा है तो तिलक भेजदो। पर मन्त्री को फिर भी कहि देना कि पहिले हर एक प्रकार से पूछ पाछ कर लेवे और पश्चात् फलदान देवे।

राजा—प्रिया जी! ऐसा ही होगा, आप धैर्य रक्खें।

यह कह कर प्रधान के पास आया और कहिने लगा कि प्रातःकाल एक योग्य मन्त्री को अञ्जना देवी का चित्र देकर रत्नपुर भेज दो और समझादो कि प्रथम सब बातों में अपना निश्चय करके फलदान दे आवे।

तीसरा अध्याय

पवन भी एक होनहार युवक है।

व र्षा होकर थमी ही थी कि एक पुरुष रत्नपुर के बाज़ार में दिखाई दिया। यात्रा को कुयात्रा कहा जाता है वह ठीक है, देखो वह घोड़े पर एक श्वेत दाढ़ी वाला सवार उज्वल वस्त्र पहने शीत के कारण कैसे सिकुड़ा बैठा है, प्रतीत होता है कि दूर की यात्रा से आ रहा है, यद्यपि बहुत से उष्ण वस्त्र धारण किये हुए है और दुशाला भी ओढ़े है, तथापि शीत से दुखी हो रहा है। आह! शीत भी बहुत ही है, शीत ऋतु के दिन हैं जिस पर वर्षा ने तो और ही अन्धेर कर रक्खा है, ठंडी वायु चल कर उसके प्रकोप को और भी बलवान कर रही है, इस वृद्ध का क्या कहना; युवक भी अभी तक बिछौनों पर निहाली ओढ़े दुबके पड़े हैं।

आहा! फिर वर्षा होने लगी, वृद्ध ने भी घोड़े को एड़ी लगादी, अभी दो चार कदम ही गया कि एक काले कुत्ते ने जो शीत के मारे मार्ग में ऐंठा पड़ा है, अनर्थ ही कर दिया। ज्यों ही घोड़ा उसके समीप पहुंचा कि उस ने अति दुखित दशा में पांव फैला कर शिर को हिलाया, बस फिर क्या था! घोड़ा

डर कर भागा और स्वाधीन होगया। वृद्ध चकराता हुआ धरती पर गिर पड़ा, सारे वस्त्र कीचड़ में लतपत होगये। यद्यपि वह बहुतेरे हाथ पांव मार कर उठने का यत्न कर रहा है पर, आह! वही दुशाला जो उसको शीत से बचा रहा था शरीर के साथ ऐसा लिपटा है कि उठने नहीं देता।

यह दशा देख कर बहुत से लोग एकत्र होकर उसकी धनाढ्यों की सी आकृति वृद्धावस्था और शीत की अधिकता पर शोक कर रहे थे, कि एक मनुष्य ने जो ना जाने कौन है आगे बढ़ कर सब को पीछे हटाया और उसको शीघ्रता से उठा कर कहा :—

वही मनुष्य—हा! मन्त्री जी कहीं चोट तो नहीं आई?

पाठक! यह तो वही मन्त्री है जो महेन्द्रपुर से अञ्जना देवी का फलदान लेकर चला था, ज्यौंही उसके कान में यह शब्द पहुंचे बोला :—

मन्त्री--(शिर को उठाकर) आहा! हरिजस! बड़ा कष्ट हुआ।

हरिजस—महाराज! आपकी अवस्था अब इस योग्य नहीं कि यात्रा का कष्ट सह सके यह तो एक विशेष अवसर वर्षा का है जो युवकों को भी थरथरा रहा है, फिर आप से यह किस प्रकार सहा जा सकता है।

पाठकगण! हरिजस मन्त्री को अपने स्थान में लाया और दो तीन पहर पश्चात् जब वह सुख चैन से बैठा तो हरिजस ने कहा :—

हरिजस—मन्त्री जी वह कौनसा ऐसा आवश्यक कार्य्य है जिस से आपको यहां आना पड़ा ?

मन्त्री—मित्र ! क्या कहूं। वह कार्य्य ही शीघ्रता का है।

हरिजस—क्या वह कोई ऐसी बात है जो प्रगट करने के योग्य नहीं।

मन्त्री—नहीं ! आप से छिपाओ क्या है। हमारे राजा की कन्या ब्रह्मचर्य्य पूर्ण कर चुकी है और पवन जी पर सब की दृष्टि है सो उनके विषय में कुछ पूछपाछ करने आया हूं।

हरिजस—(प्रसन्न होकर) आहा ! पवन ! वह तो एक होनहार युवक है जो वास्तव में पवन ही के समान है। जैसे वायु मनुष्यों के प्राणों का आधार है, उसी प्रकार, प्रजा के लिये पवन कुमार है, दीन लोगों का वही दया भण्डार है, परदेसियों के लिये सहायता और आश्रम का दातार है, और जो घोड़े की सवारी में देखा तो पूरा शहसवार है, युद्ध में रिपु का शिर और उसकी तलवार है, जैसे तारागण में चन्द्र अपनी शोभा दिखा कर उनको मन्द कर देता है, वैसे ही पवन कुमार सभा में बैठ सब के मन को हर लेता है, महाराज मुझ में इतनी शक्ति कहां है, जो उसके गुण वर्णन करूं ईश्वर उस को दीर्घ आयु करे।

हरिजस के वचन सुन कर मन्त्री का मन गद्गद होगया, और अपनी अर्थ सिद्धि देख कर सम्पूर्ण कष्ट भूल गया, और भोर होते ही राजा प्रहलाद विद्याधर के पास पहुंचा। दैवात्

उस समय वह अकेला ही बैठा था ज्योंही उसको देखा, बोला :—

राजा—आओ मन्त्री, बहुत काल पश्चात् तुम्हारा आगमन हुआ, राजा महेन्द्रराय तो अच्छे हैं।

मन्त्री—महाराज! आपकी कृपा है।

इतने में पवन कुमार भी आया और योग्य सत्कार के पश्चात् बैठ गया।

राजा—मन्त्री जी, कुछ दिन हुए हैं आपके राजा ने इस का (पवन की ओर इशारा करके) चित्र मंगवाया था उसका क्या परिणाम हुआ।

मन्त्री—महाराज! मैं उसी कार्य्य के लिये आया हूं (यह कहा और अञ्जना देवी का चित्र पवन के हाथ में देदिया)।

पवन ने चित्र को देखते ही हाथ से रख दिया और लज्जा से मुख नीचा कर लिया।

फिर क्या था चारों ओर से बधाई की धूम मच गई और मन्त्री जी ने उस समय की रीति के अनुसार एक सुनहरी थाल में धन रत्न केशर इत्यादि पवन जी की भेंट किया, जिसको उस ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया।

उसी समय बाजे बजने लगे और घर घर मंगलाचार होने लगा तीन चार दिन तक बड़ी धूम धाम से आनन्द होता रहा। बहुत सा दान दीनों को दिया गया और विवाह का दिन नियत करके मन्त्री को विदा किया गया।

चतुर्थ अध्याय

क्या यह वास्तव में वही है?

सा यंकाल का समय है, कमरे में दीपक जल रहा है। उसके निकट ही एक सुन्दर चौकी पर पवन जी एक चित्र हाथ में लिये बड़े सोच में शिर झुकाये बैठे हैं, और रह २ कर उसको दीपक के समीप करके गूढ़ दृष्टि से देखने लग जाते हैं, पश्चात् नीचे रख व्याकुल हो सोच में पड़ जाते हैं और कई प्रकार की कल्पना उत्पन्न हो उस के मन को चकित कर रही हैं, और दिल ही दिल में यूं कह रहे हैं, क्या यह चित्र जिस को मैं देख रहा हूं वास्तव में उसका है? ऐसी सुन्दर स्त्री तो पहिले इस द्वीप में कभी दृष्टिगोचर नहीं हुई, कभी सोचता है कि मैं कैसा सौभाग्य सम्पन्न हूं कि ऐसी स्त्री से मेरा विवाह होगा।

पर जब चित्र की ओर ध्यान जाता है तो घंटों इसी चिंता में पड़ जाता है, कि पहिले तो कभी इस स्वरूप की स्त्री का वर्णन नहीं सुना है, और न देखने में ही आई है। अवश्यमेव किसी अप्सरा ने जन्म लिया है, या चित्रकार का ध्यान इसको

बनाते समय किसी अप्सरा पर चला गया है, पुनः कहिता है कि नहीं ! नहीं ! ऐसा भी होना असम्भव है, क्योंकि महिन्द्रपुर का चित्रकार बड़ा निपुण है, वह कदापि ऐसी भूल न करता और यदि करता भी तो तत्काल ठीक कर लेता। संक्षेपतः इस प्रकार के कल्पित विचार उत्पन्न होकर उसके मन को व्याकुल कर रहे थे, निदान जिनका परिणाम यह हुआ कि महिन्द्रपुर जाने का दृढ़ निश्चय करके पलंग पर लेट गया, और बहुत कष्ट से रात्री व्यतीत की, भोर होते ही मन्त्री को बुला कर कहने लगा :—

पवन—मन्त्री ! एक आवश्यक कार्य्य है इस लिए मैं आज ही महिन्द्रपुर जाना चाहता हूं, और तुम भी हमारे ही संग चलो।

मन्त्री—बहुत अच्छा !

यह कहा और यात्रा की सामग्री प्रस्तुत करके दोनों चल दिये। दूसरे दिन सूर्य्य अस्त होते ही महिन्द्रपुर में पहुंच गए और बड़ी सावधानी से नगर में भ्रमण करने लगे, कि कोई पहिचान न लेवे और बहुत यत्न किया कि अञ्जनादेवी को देख कर अपने व्याकुल मन को धैर्य दें, परन्तु निराशा के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त न हुआ।

जब तीन दिन इसी निराश और असन्तुष्टता में व्यतीत हुए तो पवन मन्त्री से कहने लगे :—

पवन—मन्त्री ! मनकी बात मन ही में रही जिसके वास्ते

इतना कष्ट सहन किया और इतनी दूर की यात्रा भी की उस के देखने की तो कोई आशा ही नहीं दिखती। मैं नहीं जानता कि मेरे मन को क्या हो गया है कि जो इस चित्र को देख कर बावला सा बन गया है, मुझे तो स्त्रियों से बहुत घृणा थी पर इस सौन्दर्य की देवी को देखकर मेरे सारे गुण मिट्टी में मिल गये हैं। जो मूरखों के समान इधर उधर फिर रहा हूं। हाय! कोई देखेगा तो क्या कहेगा। हाय लज्जा को भी तो परित्याग कर दिया है। मन्त्री! तुम से तो कोई बात छिपी नहीं है (चित्र दिखा कर) टुक इस को देखकर तुम ही धर्म से कहो कि इससे पहिले कभी ऐसी स्त्री इस वानर द्वीप में देखी है?

यह कह कर उसके मुख की ओर देख रहा है (कुछ काल मौन रहने के पश्चात् स्वयं ही) मेरा मोहित होना अकार्थ नहीं है वह कौन होगा जो इसके स्वरूप को देख मोहित न होगा? जब तक मैं इसको देख नहीं लूं शान्ति नहीं होती।

मन्त्री—जो कुछ आप ने मुखारविन्द से कहा ठीक है, यदि संसार में कोई वस्तु अद्वितीय है तो यही है, वरन् सर्व गुण निधान होने में तो कोई सन्देह ही नहीं, परन्तु आपका अधिक काल यहां ठहिरना भी उचित नहीं। ऐसा न हो कि भेद खुल जावे आप की व्याकुलता से उलटा परिणाम निकले और सारी आशायें मिट्टी में मिल जावें।

पवन-(कुछ काल सोच कर) जो कुछ आपने कहा ठीक है। (ठंडी श्वास लेकर) अच्छा। निराश ही जाना पड़ा कल चल देंगे।

पाठकगण ! दिन के अन्तिम भाग में पवन जब मन्त्री को साथ लेकर सैर करने को निकला तो दैवयोग से उसका गवन उस गृह के नीचे से हुआ जो राज भवन के साथ ही पूर्व की ओर को था।

इस अद्भुत भवन की भीतों पर चित्रकारों ने भूत पूर्व शूरवीरों के चित्र और बेल बूटे इस विचित्रता से चित्रित किये थे कि देखने वाला चाहे कितने ही समय तक क्यों न देखता रहे पर उसके नेत्र तृप्त नहीं होते थे अन्त में फिर आने की इच्छा रख कर वहां से लौट आता था।

जब पवन की दृष्टि उन चित्रों पर पड़ी तो वहीं खड़ा हो गया और बहुत काल पर्यन्त देखता रहा, अन्त में पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह अञ्जनादेवी का भवन है।

आहा ! इस समय जो आनन्द पवन को प्राप्त हुआ उसके लिखने में लेखनी असमर्थ है, तत्काल अति आनन्दित होकर मन में विचार करने लगा कि आज किसी न किसी प्रकार से उस को अवश्य देख लूंगा। इस प्रकार विचार करता हुआ उस दीवार की ओर देखता रहा कि कई कन्याओं के शब्द उस भवन में से सुनाई दिये, जिनको वह भली प्रकार समझ न सका। परन्तु जब एकाग्र चित्त होकर उस ओर कान लगाया तो सुना कि कोई कन्या कह रही है, कि विद्युपर्व बड़ा विद्वान् और रूप में अति प्रिय युवक है, वह स्त्री बड़ी सौभाग्यवती होगी जिसको ऐसा पति प्राप्त होगा। दूसरी बोली अरी सखी!

अवस्था भी तो न्यून है, क्या पवन वैसा नहीं ? तीसरी जो हंसमुख थी बड़ी कोमलता से कहने लगी कि "अमृत का एक घूंट विष के भरे समुद्र से अच्छा है" ।

ओह ! इस अन्तिम वाक्य ने तो गज़ब ही कर दिया ज्यों ही पवन के कानों में यह शब्द पहुंचा सारे शरीर में विरहानल प्रचंड होगई ।

तत्क्षण हर्ष की कल्पनाएं कोप के रूप में बदल गईं, उन्हीं नेत्रों से जो हर्ष से भरे हुए किसी के ढूंढने में इधर उधर ताक रहे थे कोप के मारे ज्वाला निकलने लगी शरीर थरथर कांपने लगा और तलवार म्यान से निकाल कर मन्त्री से बोला :—

पवन—मन्त्री ! कुछ सुना राजदुलारी ने क्या कहा ?

मन्त्री—महाराज ! किसी ने कहा है कि अमृत का एक घूंट ही विष भरे समुद्र से अच्छा है पर मैं नहीं कह सकता हूं कि किस ने कहा और वह कौन थी ?

पवन—क्या तुम विवेक नहीं कर सकते कि पहिले जो कई प्रकार के शब्द सुनाई दिये हैं; वे ऐसे निपुण न थे जैसाकि अन्त में एक बड़ा मनमोहन तथा कोमल वाक्य कहा गया है । दूसरी को क्या प्रयोजन जो इस प्रकार को वार्तालाप करे इस से तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह राजदुलारी ही थी, जिसने अपने सौन्दर्य्य के अहंकार में मुझको विष के समुद्र की उपमा दी है । (तलवार को दिखा कर) अब तो मैं इसी से उसको नष्ट

किये बिना कभी नहीं छोड़ूंगा, वह भी क्या जानेगी कि इस प्रकार मैंने एक शूरवीर की उसके परोक्ष में निन्दा की और उसका प्रतिफल न पाया।

मन्त्री—(हाथ पकड़ कर) ओह! ऐसा अन्धेर मत करो शान्ति और धैर्य से काम लो, शीघ्रता का परिणाम बुरा होता है, मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि आप ने किस प्रकार निश्चय कर लिया, कि वह अञ्जनादेवी का ही वाक्य था, अथवा किसी और का क्योंकि आप उसके वाक्य को पहिचान ही नहीं सकते, निष्प्रयोजन एक निरदोष अबला के लोहू से अपने हाथ न रंगो।

पवन—(कांपता हुआ) मन्त्री! तुम क्या विचारते हो कि मैं बेखबर हूं। नहीं मैंने अपनी सन्तुष्टि भले प्रकार कर ली है कि यह अञ्जना ही थी। भला विचार तो करो कि जब अभी से उसकी यह कल्पनाएं हैं तो आगे कब भलाई की आशा कर सकते हैं। इस में कुछ सन्देह नहीं कि वह बहुत ही सुन्दर है पर इतना भी अहंकार क्या, कि दूसरों को घृणा की दृष्टि से देखे। (सीने की कटार है तो कलेजे में मारने को है)।

मन्त्री—(कुछ सोच कर) प्रथम तो निश्चय करके कह ही नहीं सकते कि यह किसका वाक्य था, और यदि यह मान लिया जावे जैसा कि आप का विचार है, तो इसके जीवन का समाप्त करना आप जैसे धर्मात्मा का धर्म नहीं है, और सभ्यता के विरुद्ध है कि आप इतना बड़ा भारी पाप करें।

पवन कुछ क्षण तो सिर नीचे झुकाकर सोचता रहा और मन ही मन में यह प्रतिज्ञा करके कि विवाह से १२ वर्ष पर्यंत इससे न बोलूंगा, बोला "अच्छा" और ठंडी स्वांस लेकर भोर होते ही रत्नपुर को चल पड़ा ॥

कर्म बड़े बलवान हैं किये न वृथा जायँ ।
बोये पेड़ जो आक के आम कहां से खायँ ॥

कई गुण दोष ग्राही अपेक्षा करेंगे कि पवन ने इतना बुद्धिमान् और विद्वान् होने पर सत्य के अन्वेषण किये विना क्यों ऐसी कठिन प्रतिज्ञा की ?

पाठक गण ! यह किसी के वस की बात नहीं यह सब अपने कर्मों का फल है, जब दुःख के दिन आते हैं, एक भली बात भी बुरी प्रतीत होती है, बड़े २ चतुर भी चतुराई भूल जाते हैं एक क्या सहस्रों दृष्टान्त सन्मुख हैं। कुछ काल विचार करने से आपको ज्ञात हो जावेगा कि बड़े २ विद्वानों और बुद्धिमानों ने प्रारब्ध के आगे सिर झुकाया, बहुत से यत्न किये पर अन्त को कुछ भी बन न आया, इस पर एक कवि ने कहा है—

तुलसी नर को कहा बड़ो समय बड़ो बलवान ।
काबा लूटी गोपिका वही अर्जुन वही बान ॥

मेरा विचार था कि महाभारत के समय के एक योग्य और विद्वान् राजा का दृष्टान्त भेंट करके पाठकगण की तुष्टि करता, पर यह कोई नई बात नहीं दिन रात हम लोगों को ऐसी घटनाओं के देखने का अवसर मिलता रहता है इस कारण उचित न जाना कि आप लोगों का समय व्यर्थ जाय ॥ (ग्रंथकर्ता)

पञ्चम अध्याय

विवाह ।

सन्ध्या का समय है सूर्य्य देवता के अस्त होने से सारे जगत् में अन्धेरा छा गया है, वह फुलवारी जिस के अवलोकन से मन प्रफुल्लित होता था, और ईश्वर की महिमा दृष्टिगोचर होती थी कि किस प्रकार उसने एक हरे पौदे से सुन्दर से सुन्दर मन लुभाने वाले रंग विरंगे फूल उत्पन्न करके अपना भाव सिद्ध किया है, इस समय वह भी डरावनी मूर्ति बनी हुई दिखाई देती है, कोई स्थान ऐसा नहीं जहां अन्धेरे ने अपना डेरा न डाला हो। हां भीतों में से बनावटी रोशनी दीख रही है वह भी कहीं अधिक और कहीं न्यून, पर महीन्द्रपुर की छटा जो इस समय दिखाई देती है अद्भुत है, जिधर देखिए दीपक ही दीपक दीख रहे हैं, स्थान स्थान पर झाड़ और फानूस जगमगा रहे हैं, राजा के भवन की ओर तो ध्यान कीजिये बड़े २ झाड़ भिन्न २ आकृति और रूप के जिन पर बड़ी सुन्दरता से चित्रकारी की हुई हैं प्रकाशमान हो रहे हैं, इनका उजाला देखकर स्वाभाविक चांदनी भी तुच्छ प्रतीत

होती है, घर २ मंगलाचार हो रहा है बाजे बज रहे हैं, छोटा बड़ा ऊंच नीच सब हर्षित हैं, राज्याधिकारी और प्रधान उत्तमोत्तम वस्त्र धारण किये विद्यमान हैं और दर्शकों की भीड़ उन के पीछे पीछे नगर के दक्षिणी दरवाजे की ओर जा रही है ॥

आहा! आज क्या है ? अंजनादेवी का विवाह है और बरात की अगवानी के लिये यह लोग जा रहे हैं।

वह देखिये बरात आ गई, आगे २ कई सवार घोड़े दौड़ाते अद्भुत आनबान से आ रहे हैं। उनके पीछे सुखपाल में पवन जी केसरिया वस्त्र धारण किये हुए हैं, सिर पर मुकट, जिस पर बहुमूल्य हीरे जड़े हुये जगमगा रहे हैं, शोभायमान है, प्रहलाद विद्याधर और उसके राज्याधिकारी बड़ी सजधज से अश्व और हस्तियों पर आरूढ़ हैं, और उनके पीछे अगणित पैदल उत्तम उत्तम वस्त्र धारण किये बरात की शोभा को बढ़ाते हुये जा रहे हैं। दर्शकों की भी एक अच्छी भीड़ है। हरएक इस विचार में है कि आगे बढ़कर दुल्हा को देखें, परन्तु बहुत से आयास से भरे दिखाई देते हैं, चारों ओर से बधाई और वाह वाह के शब्द सुनाई दे रहे हैं; बाजे गाजे नौबत और झांझ, मंजीरे इत्यादि के शब्दों से आकाश गूंज उठा है, कानों की श्रवणशक्ति जाती रही है, अब देखिये इशारों से काम ले रहे हैं ॥

जब यह बरात इस सजधज के साथ शहर के चौक में पहुंची तो राजा महेन्द्रराय जो पहिले ही से प्रधान इत्यादि

को साथ लिये बाट देख रहे थे मिलनी करने के निमित्त आगे बढ़े ॥

आहा ! यह कैसा उत्तम दृश्य है ! देखिये दोनों राजा किस प्रेम से एक दूसरे से हर्षित होकर वार्तालाप कर रहे हैं। जब यह रीति पूर्ण हो चुकी तो बड़े सत्कार पूर्वक बरात को जनवासे के स्थान में उतारा और अब सब के हाथ पांव धुला-कर सरबत पिला रहे हैं, तत्पश्चात् हलवा, पूरी, कचौरी तथा अन्य स्वादिष्ट मिठाइयों के थाल हर एक बराती के आगे रक्खे गये हैं ॥

जब सब ने तृप्त होकर भोजन से हाथ हटाया तो पान इलायची बांटे गये तत्पश्चात् सब अपने २ बिस्तरों पर जा लेटे। कुछ रात्रि व्यतीत होने पर पवन जी को वेदी के नीचे आसन पर बिठाया ही था कि पंडितों ने वेद मंत्र पढ़ हवन करना आरम्भ किया, और सखी सहेलियों ने अंजनीदेवी को स्नान करा तथा उत्तम २ वस्त्र और जड़ाऊ आभूषणों से भूषित करके पवन जी के दायें ओर ला बिठाया और गंठजोड़ा किया ॥

आहा ! जिस समय अंजनादेवी ने पवन जी के गले में जयमाला डाली, उनका मुख कोप से लाल ही तो हो गया पर मन में वही प्रतिज्ञा का विचार उत्पन्न हुआ और कानों में वही शब्द भर गये। मन ही मन में कहने लगे कि स्त्रियों का चरित्र देखिये मन में तो अपने सौन्दर्य्य का इतना घमण्ड कि मुझ को विष का समुद्र जानती है, और इस समय जयमाला डाल

कर पत्नी बनती है, मैं तो ऐसी कल्पित चित्त वाली स्त्री से विवाह करने को तत्पर नहीं ॥

पाठकगण ! इस प्रकार की कल्पनायें पवन जी के मन में हो रहीं थीं, कि इतने में पंडितों ने वेद का वह मन्त्र पढ़ा जिस का अर्थ यह है कि जब तक मैं अपनी पत्नी के किसी दूषण का भले प्रकार अन्वेषण न कर लूं विश्वास न करूंगा, और इसी प्रकार पत्नी के वास्ते आज्ञा है ॥

इस उपरोक्त मंत्र को सुनकर पवन जी के विचारों ने पलटा खाया और उधर स्त्रियों के मधुर मनोहर राग और पण्डितों का एक स्वर से अन्त में एक विधिवत स्वर से शब्द स्वाहा का उच्चारण करके हवन कुण्ड में आहुती डालना और अंजनादेवी की सखी सहेलियों का फूलों की वर्षा कर दुल्हा का मुसकराती हुई दृष्टि से देखना, सोने में सुहागे का काम दे गया। यद्यपि पवन जी के शरीर के अन्दर महातेज है और चाहे नाना भांति की कल्पनायें उनको पीड़ित कर रही हों परन्तु इस समय तो प्रत्यक्ष में आनन्द ही आनन्द प्रतीत हो रहा है ॥

देखिये ! कैसे आनन्द होकर हवनकुण्ड में सामग्री डाल रहे हैं और वेदमन्त्रों को पढ़ २ कर वर वधु आपस में प्रतिज्ञा कर रहे हैं ॥

जब पण्डितों ने विवाह कर्म को समाप्त करके शांति पाठ पढ़ा तो चारों ओर से बधाई के शब्द सुनाई देने लगे ॥

सखी सहेलियां अंजनादेवी को राजमन्दिर में लेगईं और पवन जी जनवासे के स्थान में जाकर विराजमान हुए।

राजा महेन्द्रराय का प्रबन्ध श्लाघा के योग्य था किसी को किसी प्रकार से शिकायत करने का अवसर न मिलने पाया, जिसने जो वस्तु मांगी तत्काल ही उपस्थित की गई ॥

तीन दिन तक बरात वहां रही, चौथे दिवस अपार दान दहेज़ देकर विदा करने लगे तो राजा महेन्द्रराय और रानी वेगमोहिनी के मुख पर उदासी की घटायें छा गईं, उधर स्त्रियों के वैराग के गीतों ने सबके मन को हिला दिया, राजा महेन्द्र-राय आंसू भर कर दोनों हाथ जोड़ कर राजा प्रहलाद विद्याधर से कहने लगे—

दोहा—धन्य दिवस यह आज को पूरण भई मुराद ।
जोड़ करूं विनती कर सुनो विद्याधर प्रहलाद ॥
है अंजनादेवी बालिका न जाने जग मर्याद ।
दया दृष्टि राखियो करियो क्षमा अपराध ॥

पाठक गण ! जिस समय राजा महेन्द्रराय ने गद २ स्वर में उपरोक्त दोहे कहे सब उपस्थित जनों के नेत्रों में आंसु भर आये और उसकी नम्रता पर वाह २ करने लगे ॥

राजा प्रहलाद विद्याधर ने महेन्द्रराय का हाथ पकड़ कर कहा—

दोहा—ईश्वर का धन्यवाद हो सुनो महीन्द्रराय ।
करूं अधिक पवन से प्यार मैं मत वृथा घबराय ॥
आनन्द मंगलाचार से रहैं दुलहन दुलहा ।
आयु करें व्यतीत यह गुण ईश्वर का गाय ॥

जिस समय बरात वहां से विदा हुई हर एक के मुख पर उदासी छा गई, सखी सहेलियां वर्षा ऋतु के बादलों के समान आंसू बहा २ कर अंजनादेवी के सुखपाल की ओर टकटकी लगाये देखती रहीं, और उसके बालकपन की भोली २ बातें याद कर आंसू बहाती रहीं, जब उसकी सवारी दृष्टि से लोप हुई उदासीन होकर अपने २ घरों को गईं। जब दूसरे दिन बरात रत्नपुर पहुंची सारे नगर में धूम मच गई, सब स्त्री पुरुष देखने को दौड़े और दुलहा और दुलहन को देख अति प्रसन्न हुए॥

आहा! छोटे २ बालक और बालिकायें देखने को लालसा में कैसे भागे जाते हैं उनको गिरने का भी भय नहीं। देखिये वह लड़की गिर पड़ी परन्तु झट ओढ़नी को सम्भाल फिर भागी जारही है, संक्षेपतः बड़ी सजधज के साथ बरात नगर के भीतर आई तो चारों ओर से बधाई के शब्द सुनाई देने लगे॥

जब राज मन्दिर के निकट पहुंची तो रानी केतुमती जो दासियों और अन्य स्त्रियों सहित द्वार पर खड़ी थी दुलहन को देखते ही अति आनन्द को प्राप्त हुई, दोनों के सिर से निछावर करके ईश्वर का धन्यवाद किया॥

पाठकगण! रानी केतुमती अंजनादेवी का सौन्दर्य देखकर ऐसी मोहित हुई कि बारम्बार उसके मुख की ओर देखती थी, और तृप्त न होती थी, संक्षेपतः बड़े आदर सत्कार के साथ लाकर उसको उत्तम आसन पर बिठाया॥

अंजनादेवी ने इन बातों को दुर्लभ जान कर सिर झुका ईश्वर का धन्यवाद किया॥

षष्टम अध्याय

मन के मनोरथ मन ही में रहे ।

तःकाल का सुहावना समय है आकाश में तारे अभी जगमगाते हुए दिखाई दे रहे हैं । कि अंजनादेवी पलंग से उठी और शौचादि आवश्यक कार्यों से निश्चिन्त हो स्नान कर नित्य कर्म करने बैठ गई ।

जब सन्ध्योपासन कर चुकी तो अपने कमरे में बैठी हुई बसन्तमाला के साथ इधर उधर की बातें कर हंस रही थी, किसी के आने की आहट जान पड़ी मन में विचार किया कि पवन जो आते हैं, यह सोच कर दोनों मौन होगईं । इतने में एक स्त्री ठिगना कद, मोटी ग्रीवा, गोल मुख, सांवला रंग, सिर के बाल बिखरे, बसन्ती दुपट्टा ओढ़े, साढ़ी पहने हुए आई और प्रणाम करके खड़ी होगई ॥

बसन्तमाला—(बड़े कोमल स्वर से) बहिन बैठ जा ।

ठिगनी स्त्री—बहू जी से कुछ कहना है ।

अंजनादेवी—बैठो तो सही।

ठिगनी स्त्री "बहुत अच्छा" कहकर कुछ पीछे हटकर बैठगई।

अंजनादेवी—कहिये क्या आज्ञा लाई हो ?

ठिगनी स्त्री—कुंवर जी ने आपके लिये पालकी भेज कर आज्ञा दी है, कि आप दूसरे राज मन्दिर में जो यहां से समीप ही है जाकर निवास करें।

इस बात को सुन कर अंजनादेवी तो चकितसी रह गई, पर बसन्तमाला चुटकी ले मुसकरा कर बोली—

बसन्तमाला—अंजनादेवी! मेरी ओर ध्यान रखना ऐसा न हो कि पवन जी के प्रेम में आकर मुझको भूल जाओ, मैंने तुम्हारे लिये माता पिता तथा देश को छोड़ परदेश स्वीकार किया है॥

अंजनादेवी—क्या तुम मेरे साथ वहां जाकर अपने प्रण को पूरा करके न दिखलाओगी? तुम तो कहती थीं कि जब तक इस देह में प्राण है तुमको न छोड़ूंगी, चाहे कुछ भी क्यों न हो तुम से मुख न मोड़ूंगी। प्यारी अभी से ऐसी बातें सुनाकर क्यों डराती हो, भला यह संभव है कि तुमको छोड़ मैं अकेली जाऊं।

यह कहा और दोनों पालकी में बैठ गईं॥

बिचारी अंजनादेवी नहीं जानती थी कि जो आनन्द की विभूति थी वह समस्त आज समाप्त होगई है, दुःख और खेद कुछ काल उसकी सेवा करने के लिये आये हैं।

प्यारे पाठकगण ! आपको ज्ञात होगा कि जो प्रतिज्ञा पवन जी ने महेन्द्रपुर में की थी उसको अब पूर्ण करने लगे हैं ।

जब अंजनादेवी उस भवन में आई तो उन द्वारपालों के अतिरिक्त जो द्वारे पर खड़े थे, किसी अन्य व्यक्ति को न पाया, मन में विचार आया कि शायद स्वामी जी कुछ काल पश्चात् आजावेंगे। इसी विचार में सायंकाल का समय होगया, बसन्तमाला ने दीपक जलाया और अंजनादेवी नित्य कर्म करने लगी, जब सन्ध्या कर चुकी तो फिर भी वहां बसन्तमाला के अतिरिक्त किसी को न देखा तो नाना प्रकार के विचार चित्त में उत्पन्न हो घबराहट करने लगी, कई प्रकार के मनोमय अश्व इस बात का कारण जानने के लिये दौड़ाती पर कुछ समझ में न आता, अंत में जब आधी रात बीत गई तो बसन्तमाला से बोली ।

अंजनादेवी— सखी ! क्या तू बतला सकती है कि स्वामी जी क्यों नहीं आये ? और मुझको इस भवन में क्यों रक्खा गया है ?

बसन्तमाला—अंजनादेवी ! क्यों घबरा रही हो, उनको कोई आवश्यक कार्य्य होगया होगा, इस कारण वह नहीं आ सके। प्रायः राजकुमारों का यह नियम होता है कि विवाह के पश्चात् माता पिता से पृथक रहना चाहते हैं, सम्भव है कि उन्हों ने भी यही सोचकर तुम्हारे लिये यह भवन नियत किया हो ॥

अंजनादेवी—मेरा विचार था कि मैं बड़ी भागवान हूं जो ऐसी सास मिली है, कि जिसके मिलने से एक ही दिन में वह प्रेम जो मैं अपनी माता के साथ बरसों से रखती थी भूल गई,

यदि उसके पास रहती तो क्या ही अच्छा होता, प्यारी ! इस बात को सोचकर कि जब से मैं आई हूं स्वामी जी ने मुझ से बात तक नहीं की और न अब तक यहां आये हैं, मैं तेरी कल्पना को क्योंकर ठीक मान सकती हू, कि उन्हों ने यह भवन अपने रहने के लिये चुना हो, सखी ! इसमें अवश्य कुछ भेद है।

यह कहा और न जाने मन में क्या विचार आया कि आंखों से आंसू निकल पड़े और बहुत विकल होगई। बसन्त-माला ने बहुत यत्न किया कि किसी प्रकार यह कुछ देर शयन करे पर निन्द्रा कहां ! मन तो उसका जल हीन सरोवर की मीन के समान तड़प रहा है, आंखें बाट देखते २ पत्थर होगई हैं, चित्त में बुरी २ कल्पनायें उत्पन्न हो मस्तक को शून्य कर रही हैं और स्वामी बिन शून्य भवन भयानक हो रहा है, नींद आये तो क्योंकर आये ?

निदान अंजना कभी तो पलङ्ग पर लेट कर कुछ सोचती है, कभी झरोखे में जा बैठती है वहां से उठी तो बसन्तमाला से कहने लगी—स्वामी जी तो अब तक नहीं आये, हाय ! किस से पूछूं ?

इन्हीं बातों में रात्रि व्यतीत की, प्रातःकाल स्नान कर संध्या की इतने में वही ठिगनी स्त्री जिसका नाम शायद ललिता है, आई जिसको देखकर अंजनादेवी अति शोकातुर शब्दों में बोली, बहिन ! आज क्या आज्ञा लाई हो ?

ललिता—उद्यान को जा रही हूं आपके देखने के निमित्त आगई हूं ॥

वसन्तमाला—प्यारी बहिन ! पवन जी कहां हैं ?

ललिता—सन्ध्या कर अभी बाहिर गये हैं ।

वसन्तमाला—(अति मधुर शब्दों में) प्यारी बहिन ! क्या तू बतला सकती है कि कुंवर जी ने अंजनादेवी को इस भवन में पृथक क्यों रक्खा है ? और आप क्यों नहीं आये और न ही रानी जी ने सुध ली है । अंजनादेवी तो कल से रो २ कर अति व्याकुल हो रही है ॥

ललिता ने अंजनादेवी की ओर देख ठण्डी सांस ली और कुछ उत्तर न दिया ।

ललिता को मौन देख अंजनादेवी का मस्तक ठनका और बसन्तमाला ने घबराकर दिल में कहा—हाय ! यह क्या हुआ, यह क्या बात है ?

वसन्तमाला—(ललिता के गले में दोनों हाथ डाल कर) बहिन ! सत्य बतला यह क्या बात है ?

ललिता—क्या बतलाऊं (मस्तक पर हाथ रखकर) अंजना देवी के भाग फूट गये ! कुंवर जी ने किसी बात पर जिसको वह बतलाते नहीं प्रतिज्ञा की है कि विवाह से बारह वर्ष पर्यंत अंजनादेवी से बात न करेंगे, और उनका मुख भी न देखेंगे और अपनी माता को भी इनसे न बोलने की आज्ञा दी है ।

यह कह कर ललिता तो चलती हुई और अंजनादेवी के हाथ पांव फूल गये, नेत्रों में आंसू भर आये, उच्चारण शक्ति जाती रही और बेसुध हो धरती पर गिर पड़ी ! बसन्तमाला यह

दशा देख अपने मन को दृढ़ कर अंजनादेवी का शिर अपनी जाघों पर रख कर बोली—

बसन्तमाला—(अंजनादेवी के शिर को हिलाकर) अंजना देवी, अंजनादेवी ! प्यारी क्यों नहीं बोलती । जब उसने कुछ भी उत्तर न दिया तो बहुत घबराई और चौंक कर बोली—हाय ! अंजनादेवी को क्या होगया ? अब मैं क्या करूं ? यह कह और थोड़ा सा जल लाकर उसके मुख पर छींटे दिये तब कुछ सुध आई तो यह कहा, हाय ! "मन के मनोरथ मन ही में रहे" और मौन होगई ।

फिर बसन्तमाला ने उसके शिर को हिलाकर कहा, सखी ! क्यों इतनी घबरा रही है ? तेरी यह दशा देख कर मेरा जी घबराता है, हृदय फटा जाता है, यहां हमारा सहायक कौन है जो पवन जी को जाकर समझावेगा, या हमारी ही दशा पर तरस खाकर हमको धैर्य देगा, मैं जानती हूं कि तू निर्दोष है, पर क्या करूं मेरी कौन सुनता है । अब तो ईश्वर के सिवाय कोई सहारा नहीं है इतनी चिन्ता करने से तो कोई लाभ नहीं दृष्टिगोचर होगा ।

प्यारी तुम स्वयं बुद्धिमान हो अधिक कथन की आवश्यकता नहीं टुक विचार तो करो मैं इसके सिवा और क्या कर सकती हूं, कि तुमको इस दशा में देख नेत्रों से आंसू बहाऊं । यह कह और जल मुख में डाला, शिर को हाथों से हिलाया, जब अंजनादेवी ने आंख खोल कर इसकी ओर देखा बसन्तमाला ने कहा, "प्यारी !" मन को धैर्य दे, ईश्वर पर विश्वास रख

देख ज्ञानी वही है जो दुःख में धैर्य रक्खे, क्या तुझको महेन्द्रपुर के उद्यान की वह बात जो क्रीड़ा करते समय प्रायः कहा करती थी, याद नहीं? जो दुःख सुख शरीर का भोग जान ईश्वर पर भरोसा रखता है वही सुख पाता है। यह सुन अंजनादेवी ने बड़े धीमे स्वर से कहा, मैं सब कुछ जानती हूं परन्तु चित्त नहीं मानता, मन को बहुतेरा धैर्य देती हूं कि यह किसी का दोष नहीं, मेरे ही कर्मों का फल है पर जब उस दासी की बात याद आती है, तो चित्त व्याकुल होकर घबराने लग जाता है।

और तो कुछ चिन्ता नहीं केवल विचार है तो इस बात का कि वह कौनसा ऐसा अपराध हुआ है, जिसने मेरे प्राण प्यारे को मेरी ओर से हटा ऐसी प्रतिज्ञा पर तत्पर किया। जहां तक मैं समझती हूं यहां तो क्या माता पिता के घर में भी कभी भूल से ऐसे वाक्य नहीं निकाले, जो दूसरे के दुःख का कारण हुए हों और विशेषतः स्वामी जी के साथ या उनके विषय में वार्तालाप करने का तो अवसर ही नहीं मिला, उनको मेरी ओर से दुःख पहुंचा तो क्योंकर? कुछ समझ में नहीं आता यह क्या भेद है?

बसन्तमाला—जो कुछ तुमने कहा ठीक है इस में कुछ सन्देह नहीं कि तुम निर्दोष हो, परन्तु घबराने से तो कुछ नहीं बनता।

अंजनादेवी—(ठण्डी सांस लेकर) घबराना क्या है? यह मेरे ही पूर्व जन्म के कर्मों का फल है, किसी का दोष नहीं।

जब इस प्रकार दिन रुदन करते और रात्री नाना प्रकार की चिन्ताओं में व्यथित रहते कुछ समय व्यतीत हुआ तो एक दिन सन्ध्या करने के पश्चात् अंजना ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी कि न जाने मन में क्या आया जो रोकर यूं कहने लगी—

दोहा—कौन अवज्ञा मैं करी दीनबन्धु भगवान् ।
मेरी ओर न देखते मेरे प्रीतम प्राण ॥
या विधना ने वैर सों लिख्यो मंद मम भाग ।
हाय ऐसे प्रीतम चतुर ने दियो काहे वैराग ॥
सकल विश्व के नाथ तुम क्षमा करो अपराध ।
पिया दरश को तरसते मेरे नैन असाध ॥
बसन्त सखी तुम चतुर हो ऐसो करो उपाय ।
जा विध रीझें पवन जी सोही करो बनाय ॥
कहे दास सुन अंजना मत वृथा घबराय ।
नहीं दोष कुछ किसी को कर्म लिखा लिया पाय ॥

यह कहा और अति शोकातुर हो कुछ सोचने लग पड़ी, बहुत काल तक मस्तक को हाथ का सहारा दे बैठी रही, परन्तु जिस समय यह विचार आया कि बारह वर्ष की प्रतिज्ञा है तो हृदय शोक से कांप उठा, नेत्रों में अश्रु भर आये और पवन जी का ध्यान धर यों कहने लगी—हे प्राण प्यारे ! मुझ पर दया करो आपके विना यहां मेरा कौन है । महाराज आप दासी पर क्यों ऐसे रुष्ट होगये, जो ऐसी अयोग्य प्रतिज्ञा की, मैंने तो

अभी तक आपके दर्शन भी भली भांति नहीं किये, मेरे नयन
तो चकोर के समान आपका चांदसा मुखड़ा देखने को तरसते
हैं, और न अभी तक आपकी सेवा ही करने पाई हूं कि उसमें
कुछ विघ्न हुआ हो। हाय! समझ में नहीं आता कि आपने
मेरी ओर से क्यों मन फेर लिया।

दोहा—क्षमा करो अपराध नाथ मैं दुखिया भारी।
मात पिता को छोड़ आई मैं शरण तुम्हारी॥
बिना आप महाराज कौन मेरा हितकारी।
दिया काहे वैराग्य नाथ मैं दासि तिहारी॥

पाठकगण! अंजनादेवी ने इन उपरोक्त वचनों को ऐसे
हृदय वेंधक स्वर से रुदन करते हुये मुख से निकाला कि
जिनको सुनकर पवन जी का हृदय भी जो दैवयोग से उस भवन
के नीचे से जा रहे थे विह्वल होगया, यदि इन वाक्यों को
जादू कहें तो उचित है, जिन्हों ने उनके कानों में पहुंचते ही
आगे बढ़ते हुये पांवों को वहां ही रोक दिया और अञ्जनादेवी
के पास जाने के लिये तत्पर कर दिया। आहा! जिस समय
पवन जी ने अन्तिम दोहा सुना तब तो बेबस हो लौट हो पड़े,
पर एक दो पग चल ठिठक कर वहीं खड़े हो मन ही मन में
कहने लगे—छी, मैंने तो बारह वर्ष की प्रतिज्ञा की हुई है, अभी
तो ग्यारहवां वर्ष ही व्यतीत हो रहा है, (स्वयं ही) यदि मेरी
प्रतिज्ञा अटल नहीं रही तो मुझ से बढ़कर निर्दयी और निर्बुद्धि
कौन होगा? जिसने एक वाक्य को बिना सोचे समझे ऐसी

प्रतिज्ञा की। शोक ! मुझ से बड़ी भारी भूल हुई, निःसन्देह भूल हुई। कोई भी बुद्धिमान ऐसा नहीं करता जैसाकि मैंने किया है।

हाय ! यदि इसी प्रकार रुदन करते २ प्राण त्याग दिये तो भारी कष्ट उपस्थित होगा। मैं तो इधर का रहा न उधर का, (कुछ सोचकर) कुछ ही क्यों न हो अब तो अवश्यमेव प्राण-प्यारी से मिलकर उसका वृत्तान्त पूछूंगा, नहीं तो व्यर्थ में ब्रह्महत्या का भागी हूंगा। यह सोच पग उठाकर आगे बढ़ा परन्तु फिर कुछ सोचकर ठहर गया और कहने लगा, शोक ! मैं कैसा निर्बुद्धि हूं, कि एक बार के न सोचने का फल तो अब तक भोग रहा हूं दूसरा एक और कलंक अपने जीवन पर लगाने को तत्पर हूं, इससे तो परलोक में भी छुटकारा नहीं होगा, क्योंकि यह बात सर्व साधारण में फैल जायगी कि पवन ने प्रतिज्ञा कर उसका पालन नहीं किया तो सारे जगत में मेरी अप्रतिष्ठा होगी, हर एक से मुख छुपाना पड़ेगा और जो प्रतिज्ञा कर उसका पालन न करेगा वही मुझको दृष्टांतवत् सन्मुख रक्खेगा, हाय ! ऐसा कार्य्य तो मैं नहीं करूंगा। यह कह कर नीची दृष्टि कर सोचता हुआ वहां से चला गया॥

सप्तम अध्याय

मन का आकर्षण ।

दिन के तीसरे पहर का समय है जबकि राजा प्रहलाद विद्याधर के दरबार में एक सन्नाटा सा छाया हुआ है, किसी का शब्द सुनाई नहीं देता क्या वहां महाराज विराजमान नहीं हैं, और पदाधिकारी और सेवक चले गये हैं इसी से सुनसान दशा है? नहीं! वह देखो राजा प्रहलाद विद्याधर हैं, राजकर्मचारी अपने २ कागज़ात सम्भाल इस बात के ध्यान में हैं, कि यह द्वार से बाहर पग रक्खें और हम चलते फिरते बनें। जूंही राजा वहां से चलने लगे, एक सिपाही सैनिक वस्त्र धारण किये अन्दर आया और झुककर प्रणाम करते ही एक पत्र जेब से निकाल राजा को दिया और पीछे हटकर खड़ा होगया।

राजा पत्र को हाथ में लेकर पहिले तो खड़ा ही खड़ा पढ़ता रहा तत्पश्चात् बैठ गया, कभी पत्र को रख देता और

सिर झुकाकर सोचने लग जाता और कभी पुनः हाथ में लेकर इसको देखता।

ईश्वर जाने इस पत्र में क्या लिखा है, जिसको पढ़कर राजा बहुत देर से सिर झुकाये सोच रहा है। हां! कभी पवन की ओर भी देख लेता है। राजा की यह दशा देखकर उपस्थित अधिकारी बड़ी चिन्ता में पड़कर राजा के मुख की ओर देखने लगे, पर किसी का साहस न हुआ कि मुख से कुछ कहे।

निदान थोड़ी देर पश्चात् राजा ने स्वयं ही प्रधान से कहाः-

राजा—महाराज रावण लिखता है कि दुर्मति नगर के राजा वरुण से कुछ काल हुआ कि युद्ध हुआ था, जिसमें वह विजयी होकर खर और दूषण को बांधकर लेगया था, अब उनके छुड़ाने के लिये युद्ध करने की आवश्यक्ता है, इस लिये सब राजाओं को जो लंका के आधीन हैं बुलाया है, हमको भी लिखा है, अब मैं यह विचारता हूं कि वहां स्वयं जाऊं या पवन को भेजूं।

प्रधान कुछ उत्तर देने को ही था कि पवन जी ने आगे बढ़कर इस प्रकार कहा—

पवनजी—महाराज! यद्यपि आपके समीप यह कोई कठिन कार्य नहीं परन्तु मेरे होते हुये आपका जाना मानों मेरा अपमान होना है। इस कारण हाथ जोड़कर प्रार्थित हूं कि मुझको जाने की आज्ञा दी जाय।

जब पवन जी ने इस प्रकार कहा तो प्रधान ने इस बात की पुष्टी की, मन्त्री इत्यादि ने कहा, इनकी बात सुन कर पहिले तो

राजा कुछ देर तक नीचे दृष्टि किये सोचता रहा पश्चात् प्रधान से कहने लगा।

राजा—सेना को अभी तैयारी की आज्ञा देदो जिस से पवन कल प्रातःकाल ही यहां से चल पड़े। प्रधान ने यह सुनते ही सैनिक अधिकारियों को बुलाकर सब सामान ठीक करने की आज्ञा दी।

प्रातःकाल होते ही पांच सौ योद्धा नङ्गी तलवारें कन्धों पर रक्खे तरकशों को तीरों से भरे रत्नपुर के दक्षिणी द्वार से बाहर किसी की बाट देखते हुए दृष्टि पड़े।

आहा! जिस समय पवन जी सिर पर मुकुट धारण किये बखतर पहने घोड़े को दौड़ाते हुए वहां आये तो सबने सैनिक नियमानुकूल प्रणाम किया।

थोड़े काल पश्चात् बिगुल हुआ (शंख बजा) जिसकी ध्वनि सुनते ही वह सिपाही जो आगे पीछे होकर पङ्क्ति बांधे पाओं मिलाये खड़े थे बड़ी शीघ्रता के साथ चलते हुए दिखाई दिये, जिनके पगों की थपाथप की आवाज़ कानों को कैसी सुहावनी प्रतीत होती है।

सब से आगे २ पवन जी मन्त्री के साथ बातें करते हुये जा रहे हैं और इन सबके पीछे सेनापति धुन्दवीर बड़े आन-बान से घोड़े को एड़ देता हुआ कभी दाईं ओर निकल जाता है, कभी बाईं ओर, ज़रा किसी का पग इधर उधर हुआ कि धुन्दवीर ने डांटा।

इस प्रकार से बड़ी सजधज के साथ जारहे थे कि सूर्य्य-देवता अपना राज चांद को देने के लिये तत्पर हो गये और इन शूरवीरों ने एक अच्छा स्थान देख एक नदी के तट पर डेरा डाल दिया।

आहा! सब लोग तो (उन सिपाहियों के बिना जो रात की रक्षा के लिये नियत किये गये हैं) सो गये हैं, परन्तु पवन जी और उनका मंत्री अब तक बातें करते सुनाई देते हैं।

अभी बातें ही कर रहे थे कि किसी जीव के कोलाहल का शब्द सुनाई दिया, पवन जी ने आश्चर्यमय होकर मंत्री से पूछा कि यह कौन जन्तु है? जो इस समय बोल रहा है, पहिले तो कभी ऐसा स्वर सुनने का संयोग नहीं हुआ।

मन्त्री—महाराज! इसको चकवी कहते हैं यह प्रायः पानी में रहती है, दिन भर नर और नारी एक साथ रहते हैं, परन्तु रात को पृथक् २ हो जाते है, यह नारी है जो नर के वियोग में बोल रही ह, मानो उसको बुला रही है।

पवन जी—(चकित होकर) क्या यह रात को दोनों एक स्थान में नहीं रह सकते?

मन्त्री—जी नहीं! स्वाभाविक बात है कि यह रात को एक दूसरे से नहीं मिल सकते।

पवन जी—ऐं! केवल रात के बिछुड़ने ही से ऐसी बोल रही है?

मन्त्री—जी हां! आप इतने चकित क्यों हुए? यह कोई नवीन बात नहीं।

पवन जी—इसका स्वर सुनकर मुझको कुछ और ही विचार उत्पन्न हुआ है, और वह यह है कि हमने विवाह करते ही अञ्जनादेवी को पृथक् स्थान में रक्खा हुआ है, और आज तक उसका मुख भी नहीं देखा, जब इस पत्नी की यह दशा है तो वह विचारी क्यों न बेचैन होती होगी? यदि किसी से कुछ न कहती होगी तो मन में अवश्य कुढ़ती होगी।

मन्त्री—(आश्चर्यमय होकर) क्यों! आपने ऐसा क्यों किया?

पवन जी—क्या तुमको महीन्द्रपुर की बात याद नहीं? जब हम तुम विवाह करने से पहिले गये थे तो अञ्जनादेवी ने क्या कहा था? उसी बात पर हमने प्रतिज्ञा की हुई है कि विवाह से बारह वर्ष पर्यन्त उससे न बोलेंगे।

मन्त्री—(बड़ी नम्रता से) यदि आपने उसी बात पर ऐसी कठिन प्रतिज्ञा की है, तो बड़ा अन्याय किया है, क्योंकि वह बात तो विश्वास के योग्य ही न थी और मैंने उस समय भी यही बिनती की थी, परन्तु शोक है कि आपने कुछ ध्यान न दिया, और व्यर्थ उस देवी को अब तक दुःखित रक्खा। अञ्जनादेवी ने मेरी स्त्री से जो प्रायः उसके पास जाया करती है, कभी इस बात की चर्चा नहीं की और न किसी प्रकार की वार्ता इस विषय में जिह्वा पर लाई है। उसकी विद्वत्ता पर सब स्त्रियां मोहित हैं। बारह वर्ष होगए पर आपने पहिले कभी इस बात को प्रगट नहीं किया, नहीं तो कब सम्भव था कि मैं आपको इस महापाप का भागी बनने देता। आह! यह बात सुनकर

मेरे तो रोम उठ खड़े हुए हैं। आपने बड़ा अनर्थ किया। वास्तव में अनर्थ किया, ऐसी विचारशीला देवी और उस पर यह अन्याय ? शोक ! शोक !! आप बड़े निर्दई हैं।

पाठकगण ! मन्त्री के वाक्य पवन जी के शरीर में बिजली के समान प्रवेश कर गये। ऐसे अवसर पर ही यह कहा जा सकता है कि "जादू वह जो सिर पर बोले" पवन जी ने किसी बात का उत्तर दिये बिना यूं कहा—

दुःख का कारण मैं भयो सन्तापी निज नार।
शीलवती प्यारी अंजना कुछ न किया विचार॥

जब पवन जी ने इस प्रकार कहा तो मन्त्री बोला—

मन्त्री—महाराज ! जो समय व्यतीत होगया है वह तो हाथ नहीं आता, परन्तु अब भी रत्नपुर समीप ही है आप जाकर उसका दुःख निवारण करें और मैं सेना को लेकर रामनाथ पर आपकी बाट देखूंगा।

पवन जी—(कुछ सोचने के पश्चात) आहा ! मन्त्री यह बड़ी ही आनन्द को बात है कि आज बारह वर्ष की प्रतिज्ञा भी पूरी होगई।

मन्त्री—तो अब आप विलम्ब न करें, क्योंकि रात्रि पहिले ही बहुत व्यतीत हो चुकी है।

पवन जी—अस्तु इस बात की तो कुछ चिन्ता नहीं परन्तु यदि मैं इस समय लौट गया तो पिता जी विचार करेंगे कि युद्ध के भय से लौट आया है, और मित्रवर्ग भी उपहास करेंगे।

मन्त्री—आपको किसी से मिलने की आवश्यकता ही क्या ? केवल अञ्जनादेवी के निकट पधारिये और एक दो दिन रह कर पुनः आजाइये ।

पवन जी को मन्त्री की युक्ति पसन्द आई तत्क्षण अश्वारूढ़ हो, घोड़े को ऐड़ लगा यह जा वह जा । अन्त में दृष्टि से लोप हो गये ॥

* दोहा *

बलिहारी जगदीश के जाकी महिमा अपरम्पार ।
नाम उसी का सत्य है झूठा यह संसार ॥
दया करे जब दीन पर ज़रा न लागे देर ।
निराश न हो अञ्जना था दिनों का फेर ॥

अष्टम अध्याय

आशा पूर्ति ।

एक पहिर से कुछ अधिक रात्रि रही होगी कि अञ्जनादेवी जो इस से पहिले सारी रात पवन जी के प्रेम में जाग रही थी, अचेत होकर सो गई और सोई भी ऐसी गाढ़ी निन्द्रा में जिसको घोर निन्द्रा कहें तो उचित है; क्योंकि जब से यह सुसराल में आई है मीठी नींद तो इससे कोसों दूर रहती थी, हां दिन भर ठण्डे २ श्वांस ले लड़कपन की बातें याद कर आंसू बहाना और रात्रि तारे गिन २ कर व्यतीत करना इसका मुख्य कर्त्तव्य था। आज न जाने क्या कारण है कि सन्ध्या का समय होने पर भी निश्चिन्त हो सो रही है, जब नियत से अधिक समय होगया और अञ्जनादेवी ने करवट भी न बदली तो बसन्तमाला घबरा कर अञ्जनादेवी के कमरे में दबे पाओं आई, तो क्या देखती है कि वह अचेत सो रही है और दीपक जल रहा है इससे पहिले बसन्तमाला ने इसको इस दशा में कभी न देखा था, इस लिये और भी घबरा गई और हाथ बढ़ाकर उठाना चाहा परन्तु झिझक कर यह सोच कर रह गई कि बहुत समय के पश्चात् इसको यह नींद प्राप्त हुई है।

मन्त्री—आपको किसी से मिलने की आवश्यकता ही क्या ? केवल अञ्जनादेवी के निकट पधारिये और एक दो दिन रह कर पुनः आजाइये ।

पवन जी को मन्त्री की युक्ति पसन्द आई तत्क्षण अश्वारूढ़ हो, घोड़े को ऐड़ लगा यह जा वह जा । अन्त में दृष्टि से लोप हो गये ॥

* दोहा *

बलिहारी जगदीश के जाकी महिमा अपरम्पार ।
नाम उसी का सत्य है झूठा यह संसार ॥
दया करे जब दीन पर जरा न लागे देर ।
निराश न हो अञ्जना था दिनों का फेर ॥

अष्टम अध्याय

आशा पूर्ति ।

क पहिर से कुछ अधिक रात्रि रही होगी कि अञ्जनादेवी जो इस से पहिले सारी रात पवन जी के प्रेम में जाग रही थी, अचेत होकर सो गई और सोई भी ऐसी गाढ़ी निन्द्रा में जिसको घोर निन्द्रा कहें तो उचित है; क्योंकि जब से यह सुसराल में आई है मीठी नींद तो इससे कोसों दूर रहती थी, हां दिन भर ठण्डे २ श्वांस ले लड़कपन की बातें याद कर आंसू बहाना और रात्रि तारे गिन २ कर व्यतीत करना इसका मुख्य कर्त्तव्य था। आज न जाने क्या कारण है कि सन्ध्या का समय होने पर भी निश्चिन्त हो सो रही है, जब नियत से अधिक समय होगया और अञ्जनादेवी ने करवट भी न बदली तो बसन्तमाला घबरा कर अञ्जनादेवी के कमरे में दबे पाओं आई, तो क्या देखती है कि वह अचेत सो रही है और दीपक जल रहा है इससे पहिले बसन्तमाला ने इसको इस दशा में कभी न देखा था, इस लिये और भी घबरा गई और हाथ बढ़ाकर उठाना चाहा परन्तु झिझक कर यह सोच कर रह गई कि बहुत समय के पश्चात् इसको यह नींद प्राप्त हुई है।

आहा ! यद्यपि अञ्जनादेवी बेसुध सो रही है, परन्तु उसके होठों से हंसी के चिन्ह पाये जाते हैं न केवल यही वरन् शनैः शनैः हिल भी रहे हैं, मानो यह नींद में किसी से बातें कर रही है, बसन्तमाला बड़े आश्चर्य से बहुत काल तक इस प्यारी भोली मूर्ति को देखती रही और कई प्रकार की कल्पनायें उसके मन में उत्पन्न हो चकित करती रहीं ।

जब नित्यकर्म का समय व्यतीत होने लगा तो बसन्तमाला अधिकतर उसको इस दशा में देख न सकी और यूं बोली—

बसन्तमाला—प्यारी सखी ! नित्यकर्म का समय होगया और तुम अब तक सोती हो क्या आज उठने को मन नहीं चाहता ? यह कहा और हाथ से हिलाया अञ्जनादेवी ने आंखें खोल कर एक बार देखा और पुनः आंखें मून्द लीं । बसन्तमाला अञ्जनादेवी की यह दशा देखकर और भी आश्चर्य में डूब गई और कहने लगी—

बसन्तमाला—सखी ! आज यह क्यों ! क्या मेरा मुख देखना नहीं चाहती मैं कमरे से बाहर निकल जाऊं ?

अञ्जनादेवी मुसकराती हुई उठी और बोली—

बसन्त सखी मैं स्वप्न में देखे हैं भर्तार ।
अति आनन्द हो मन विषे रही घड़ी दो चार ॥
शुभ दिन प्यारी आज का देखा स्वप्न अपार ।
अति प्रसन्न है मन मेरा जो राखें कर्तार ॥

बसन्तमाला कुछ कहने को ही थी कि किवाड़ों की खट
ाहट मालूम हुई, भागकर झरोखे से देखा तो पवन जी को
ा, हंसती हुई आई और यूं बोली—

उठ देख प्यारी अञ्जना क्यों होवे बेचैन।
स्वामी खड़े द्वार पर शीतल कर उठ नैन॥

अञ्जनादेवी—सखी क्यों उपहास करती है, कभी तो ईश्वर
ा करेंगे और भले दिन आयेंगे।

अञ्जनादेवी यह कहती ही रही कि बसन्तमाला ने जाकर
कवाड़ खोले और पवन जी को साथ लाई, ज्यों ही उन्हों ने
लान में पांव रक्खा अञ्जनादेवी को अपने चरणों पर पाया
र यह कहते सुना "धन्य है आज का दिन जो आपके दर्शन
र" महाराज! मेरे नयन चकोर के समान आपके दर्शन को
रस रहे थे, न जाने वह कौनसी बात है जिसने आपको इस
ासी की ओर से ऐसा विमुख कर दिया जो आज तक सुध न
ी, स्वामिन्! बिना आपके और कोई सहारा नहीं मुझ पर
या करो, मैं निर्दोष हूं माता पिता को छोड़ आपकी शरण में
ाई थी सो आपने मन से ऐसा त्याग किया जैसे सिद्ध धनधाम
ौर मनुष्य मल को।

यह कहा और रोते २ हिचकी बंध गई।

पवन—प्रिया! मेरा कुछ दोष नहीं यह तुम्हारे ही अभिमान
ा फल है। क्या तुमको याद नहीं कि विवाह से कुछ दिन
पहिले सन्ध्या समय सखी सहेलियों के साथ भवन में बैठे हुये

आहा ! यद्यपि अञ्जनादेवी बेसुध सो रही है, परन्तु उसके होठों से हंसी के चिन्ह पाये जाते हैं न केवल यही वरन् शनैः शनैः हिल भी रहे हैं, मानो यह नींद में किसी से बातें कर रही है, बसन्तमाला बड़े आश्चर्य से बहुत काल तक इस प्यारी भोली मूर्ति को देखती रही और कई प्रकार की कल्पनायें उसके मन में उत्पन्न हो चकित करती रहीं।

जब नित्यकर्म का समय व्यतीत होने लगा तो बसन्तमाला अधिकतर उसको इस दशा में देख न सकी और यूं बोली—

बसन्तमाला—प्यारी सखी ! नित्यकर्म का समय होगया और तुम अब तक सोती हो क्या आज उठने को मन नहीं चाहता ? यह कहा और हाथ से हिलाया अञ्जनीदेवी ने आंखें खोल कर एक बार देखा और पुनः आंखें मून्द लीं। बसन्तमाला अञ्जनादेवी की यह दशा देखकर और भी आश्चर्य में डूब गई और कहने लगी—

बसन्तमाला—सखी ! आज यह क्यों ! क्या मेरा मुख देखना नहीं चाहती मैं कमरे से बाहर निकल जाऊं ?

अञ्जनादेवी मुसकराती हुई उठी और बोली—

बसन्त सखी मैं स्वप्न में देखे हैं भर्तार।
अति आनन्द हो मन विषे रही घड़ी दो चार॥
शुभ दिन प्यारी आज का देखा स्वप्न अपार।
अति प्रसन्न है मन मेरा जो राखें कर्तार॥

बसन्तमाला कुछ कहने को ही थी कि किवाड़ों की खट खटाहट मालूम हुई, भागकर झरोखे से देखा तो पवन जी को पाया, हंसती हुई आई और यूं बोली—

उठ देख प्यारी अञ्जना क्यों होवे बेचैन।
स्वामी खड़े द्वार पर शीतल कर उठ नैन॥

अञ्जनादेवी—सखी क्यों उपहास करती है, कभी तो ईश्वर कृपा करेंगे और भले दिन आयेंगे।

अञ्जनादेवी यह कहती ही रही कि बसन्तमाला ने जाकर किवाड़ खोले और पवन जी को साथ लाई, ज्यों ही उन्हों ने दालान में पांव रक्खा अञ्जनादेवी को अपने चरणों पर पाया और यह कहते सुना "धन्य है आज का दिन जो आपके दर्शन हुए" महाराज! मेरे नयन चकोर के समान आपके दर्शन को तरस रहे थे, न जाने वह कौनसी बात है जिसने आपको इस दासी की ओर से ऐसा विमुख कर दिया जो आज तक सुध न ली, स्वामिन्! बिना आपके और कोई सहारा नहीं मुझ पर दया करो, मैं निर्दोष हूं माता पिता को छोड़ आपकी शरण में आई थी सो आपने मन से ऐसा त्याग किया जैसे सिद्ध धन धाम और मनुष्य मल को।

यह कहा और रोते २ हिचकी बंध गई।

पवन—प्रिया! मेरा कुछ दोष नहीं यह तुम्हारे ही अभिमान का फल है। क्या तुमको याद नहीं कि विवाह से कुछ दिन पहिले सन्ध्या समय सखी सहेलियों के साथ भवन में बैठे हुये

अपने सौंदर्य के अभिमान में रत होकर तुम मुझको विष सागर से तुलना दे विददपर्व की स्तुति कर रही थी।

इन बातों को सुनकर अञ्जनादेवी तो चकित होकर पवन मुख की ओर देखने लगी पर बसन्तमाला ने उत्तर दिया।

बसन्तमाला—महाराज! जो आपने कहा सत्य है परन्तु इस विचारी को तो कुछ खबर ही नहीं, वह तो चन्द्रमुखी एक मन्त्री की कन्या थी जो दिल्लगी से बात कर रही थी, उसके अतिरिक्त वहां और बहुत सी कन्यायें थीं जो नाना प्रकार की बातें करके आपस में प्रसन्न हो रही थीं, क्या यही बात थी जिसने आपको ऐसी कठिन प्रतिज्ञा करने पर तत्पर किया?

पवन जी—(आंख चुराकर) हां! बात तो यही थी।

बसन्तमाला—शोक आपने कुछ भी विचार न किया, भला यह तो बतलाइये कि आपको विश्वास क्यों कर आया, कि वह अञ्जनादेवी के शब्द थे अथवा किसी अन्य के, आपने पहिले तो कभी उसके शब्द नहीं सुने थे, तो निश्चय कैसे हुआ कि यह उसी के शब्द हैं। मान लिया जाय कि उस समय आप किसी कारण से भूल कर भी बैठे थे, तो यह बड़ी सुगम बात थी कि विवाह के पश्चात् आप राजदुलारी की आवाज़ की परीक्षा कर लेते तो सत्य झूठ का निर्णय हो जाता, परन्तु हाय शोक! आपका इस ओर तो ध्यान ही न हुआ, यह इसी के कर्मों का फल है आपका क्या दोष। यह कहा और दोनों रोने लग पड़ीं।

पवन जी—(कुछ काल सोचने के पश्चात् ठण्डी श्वांस लेकर) सखी जी ! निःसन्देह मैंने भूल की, बहुत भूल की, यह ज्ञान नहीं पड़ता कि उस समय मुझको क्या होगया था कि बिना सोचे समझे ऐसी प्रतिज्ञा कर ली, आह ! प्यारी ! आपको बहुत दुःख हुआ है, मुझको क्षमा करना मैं अपराधी हूं।

अञ्जनादेवी—(हाथ जोड़कर) स्वामिन् ऐसी बातें करके मुझको लज्जित न करो, इस में आपका कुछ दोष नहीं, यह केवल मेरे ही कर्मों का फल है आप कुछ चिन्ता न करें। मैं आज के दिन को शुभ दिन जानती हूं जो आपके दर्शन हुए, बसन्तमाला ने अज्ञानता से दो तीन बातें अनुचित कहीं हैं, सो उनके लिये आप से क्षमा मांगती हूं।

इतने में बसन्तमाला ने मुसकराते हुए कहा—

बसन्तमाला—सखी ! क्या आज सन्ध्या नहीं करोगी ?

यह सुनते ही पवन जी और अञ्जनादेवी ने स्नान कर सन्ध्या की, तत्पश्चात् इधर उधर की बातें कर दुःख निवारण करने लगे।

आहा ! इस समय अञ्जनादेवी का वही मुख जो कल काल विकाल की गति से दुःख और खेद के कारण पीतवर्ण और भयानक दीखता था लाल और मनोहर दीख रहा है। पवन जी के न देखने से वह लहू जो रग २ में जम गया था, पुनः संचार कर रहा है, बात २ पर हंसी आरही है और आनन्द से मुख मण्डल दमक रहा है।

आज वही भवन जो बहुत दिनों से ठण्डे स्वस सु
हुआ अशोक गृह बना हुआ था, आनन्द भरी ध्वनि से गू
रहा है। देखो वही पत्ती जो मौलसिरी के वृत्तों पर बैठ
अञ्जनादेवी की शोकातुर दशा पर रोया करते थे आनन्द
चहचहाते हुए दीख रहे हैं, उसी फुलवाड़ी से जिसके देख
से कलेजा मुंह को आता था, आज बसन्तमाला फूलों के ह
गूंथ कर अञ्जनादेवी और पवन जी के गले में पहना रही
और एक पुष्प गुच्छा भी आगे रक्खा है, सत्य है! जी
जहान है यदि चित्त प्रसन्न हुआ तो सब चीजें भाती हैं, नहीं
दुःख का कारण हैं।

जब तीन दिन व्यतीत होगए तो पवन जी चलने को प्रस्तु
हुए अब अञ्जनादेवी ने हाथ जोड़कर कहा—

अञ्जनादेवी--स्वामिन्! क्या आप अपने माता पिता
समीप न जायेंगे?

पवन—प्रिये! इस समय तो मैं नहीं जा सकता सीध
रामनाथ को जाऊंगा।

अञ्जनादेवी—महाराज जिस समय यह समाचार उनको
मिलेगा वह मन में यही विचार करेंगे कि मैंने आपको उनसे
मिलने से रोका है, इस कारण आप अवश्य उनके पास जायें।

पवन—प्रिये! इस समय उनके पास जाने से मेरी हंसी
होगी, वह यही विचार करेंगे कि युद्ध के भय से मैं लौट आया
हूं, नहीं तो जाने में कोई भय नहीं।

अञ्जनादेवी—यदि आप स्वयं नहीं जा सकते तो किसी को भेजकर ही उनको सूचित करादें, नहीं तो मेरे लिये यह अच्छा न होगा, क्योंकि ऋतुकाल में आप से मिलने का सौभाग्य हुआ है, और मैं आशा रखती हूं ईश्वर अवश्यमेव उस इच्छा को जो विवाह का मुख्य उद्देश है और जिसके लिये छोटे से लेकर बड़े पर्यंत ईश्वर से प्रार्थना करते हैं पूर्ण करेंगे।

पवन—(हाथ से अंगूठी उतार कर) प्रिया जी! यह अंगूठी पास रक्खो, उनको दिखला देना वह तुम्हारी बात पर कभी सन्देह न करेंगे और मेरे आने का निश्चय कर लेंगे। यह कहकर वहां से चल दिये।

यद्यपि इस समय पवन जी का मन अञ्जनादेवी की बातें सुन कर नहीं चाहता था कि एक क्षण भर के लिये भी उससे बिछुड़े परन्तु यह अवसर बहुत वक्र जान घोड़े को सरपट डाले जा ही रहे हैं।

रामनाथ से अपनी सेना के साथ लंका में पहुंचे और जब सब राजा जिनको बुलाया गया था आगये तो वरुण पर चढ़ाई की गई, उधर से वरुण भी सन्मुख आया, पांच दिन तक युद्ध होता रहा। अन्त में वरुण मन छोड़ रण से भाग गया और रावण खर और दूषण को छुड़ाकर लंका में लौट आया।

पवन जी ने बहुत यत्न किया कि रत्नपुर को लौट जायें परन्तु आवश्यक कार्यों के कारण रावण ने आज्ञा न दी॥

नवम अध्याय

मैं निरापराध हुं !

जब पवन जी लंका को पधारे तो अञ्जनादेवी भवन पर चढ़कर जहां तक दृष्टि ने सहायता दी देखती रही जब दृष्टि असमर्थ हो गई तो उदास होकर नीचे आ वसन्तमाला से कहने लगी—

अञ्जनीदेवी—देखें ! स्वामी जी कब तक लौट कर आते हैं ? मेरी आंखों में तो, उनकी मोहनी मूर्त्ति ऐसी समाई है कि जिधर देखती हूं वहीं दीख पड़ते हैं, कानों में उन्हीं की सुहावनी बोली गूंज रही है, शय्या की ओर जो दृष्टि पड़ती है तो वही बैठे दिखाई देते हैं। प्यारी मेरा मन मेरे वस में नहीं, यह भी जानती हूं कि वह लंका को चले गये हैं परन्तु शीघ्र इस बात को भूलकर यही वहमसा हो जाता है कि वह यहां ही उपस्थित हैं, परन्तु जब अपनी बात का उत्तर नहीं पाती तो बावली हो जाती हूं।

वसन्तमाला—(मुस्करा कर) सखी ! तीन ही दिन में तेरी यह दशा ! यदि बहुत काल ठहरते तो क्या होता, धैर्य धर, थोड़े दिनों में आजावेंगे।

अञ्जनी—(लज्जित होकर) बहिन ! क्या करूं मेरा मन मेरे वश में नहीं, यह चञ्चल मन उस भंवरे के समान है, जो कंवल की खोज में इधर उधर भटकता फिरता है, हर समय उनके दर्शन की अभिलाषा में रहता है।

यह कहा और ठण्डी स्वांस लेकर मन में कहने लगी न जाने कि स्वामी जी की प्रेममय आंखों ने मुझपर क्या जादू कर दिया है कि किञ्चित भर भी मेरे मन को धीरज नहीं आता। मन को बहुतेरा संभालती हूं परन्तु किसी प्रकार नहीं संभलता, हाय ! मुझको क्या होगया, यह कहा और पलंग पर जाकर लेट गई।

जब इस प्रकार पवन जी के स्मरण में अञ्जनादेवी को पांच मास बीत गए, तो एक दिन बातें करते करते बसन्तमाला ने कहा—

बसन्तमाला—सखी ! यद्यपि तू प्रकट नहीं करती पर यह बात कभी छिपाने से नहीं छिपती, मैं तुझ में गर्भ के चिन्ह पाती हूं क्या यह मेरा विचार ठीक है ?

अञ्जनादेवी—(नीचे सिर झुकाकर) आज क्या दिल्लगी सूझी है जो इस प्रकार की बातें करती हो।

बसन्तमाला—नहीं ! नहीं !! मैं दिल्लगी नहीं करती मेरा तात्पर्य पूछने से केवल यह है कि यदि मेरा विचार सत्य है, और ईश्वर करे कि ऐसा ही हो, तो इस अवस्था में तुमको किसी प्रकार का दुःख या खेद करना उचित नहीं, क्योंकि इस का संस्कार सन्तान पर बुरा पड़ेगा।

अञ्जनादेवी—नहीं ! बहिन मुझको तो कोई दुःख नहीं, परन्तु इतना भय अवश्य रहता है कि यदि रानी (सास) ने स्वामी जी की अंगूठी देखकर यहां आने का निश्चय कर लिया तो अच्छा, नहीं तो फिर बड़े भारी दुःख का सामना दिखाई देता है।

वसन्तमाला—इस बात की क्यों चिन्ता करती हो, अंगूठी से बढ़कर उनके आने का हम और क्या परिचय दे सकती हैं, यदि न माने तो उनसे पूछ मंगायें, तुम क्यों डरती हो।

पाठकगण ! अञ्जनादेवी बहुत दानी और दयालु है, देखिये बहुत से भिखारी इसके द्वार पर खड़े हैं और यह नाना प्रकार से दान कर रही है। कोई भोजन लेकर प्रसन्न हो रहा है, कोई रुपया मांग रहा है और कोई वस्त्र लेने के लिये प्रार्थी है।

अञ्जनादेवी तो इस समय निर्धनों की सहायता में लगी हुई है। आइये अब हम रानी केतुमती के भवन को चलें, एक तो बहुत काल से उसे देखा नहीं दूसरे न जाने कि अञ्जना के विषय में उसका क्या विचार है। आहा ! रानी केतुमती का भवन भी कैसा सुन्दर दिखाई देता है, सजावट के समस्त पदार्थ हर स्थान पर लगे हुए हैं। सुन्दर २ परदे ताखों पर पड़े हैं, और लालरङ्ग विरंगे गलीचे बिछे हुए हैं, और एक दासी हाथ जोड़े खड़ी है। इसको तो हम पहचानते भी हैं, कदाचित् इस का नाम ललिता है, जिसको पहिले अञ्जनादेवी के पास देखा था। हां ! वही है वह देखो ! रानी केतुमती भी बड़ी आन बान से बहुत सुन्दर वस्त्र पहने बैठी हुई है इसके मुख की ओर भौं चढ़ाये देख रही है।

रानी—क्या यह सत्य है कि अञ्जना भाग जाने का मनोरथ रखती है, और सारी जमा पूंजी यूं ही लुटा रही है।

ललिता—जी हां! मैंने भी ऐसा हीं सुना है।

यह सुनते ही रानी का गोरा २ मुख मारे क्रोध के तमतमा गया और बुद्धि चक्कर में पड़ गई। सिर को हाथ से थामे नीचे झुकाकर कुछ काल तक तो सोचती रही, तत्पश्चात् क्रोध भरे शब्दों में ललिता से कहा—

रानी—जाओ हमारा सुखपाल लाने के वास्ते आज्ञा दो।

ललिता—बहुत अच्छा।

यह कहा और चली गई। थोड़े काल पश्चात् आकर कहने लगी—

ललिता—माता जी! सुखपाल आगया है।

रानी उसी समय सुखपाल में बैठ अञ्जना के भवन को गई। ज्यों ही दालान में पग रक्खा और अञ्जना की दृष्टि उस पर पड़ी वह शीघ्रता से रानी के पांव पर जा गिरी।

अञ्जना—धन्य है आज का दिन कि इतने काल पश्चात् आपने दर्शन दिये। माता जी मैं तो केवल आपके आश्रय ही यहां पड़ी हूं।

रानी उसको नम्रता पूर्वक बातों का उत्तर देने के बदले नाक मुंह चढ़ा तेवर बदल कर क्रोध भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी। ज्यों ही गर्भ के चिन्ह पाये, आग बबूला होगई और बड़े कोप से बोली—क्या तू गर्भवती है या तुझको कोई रोग होगया है?

अञ्जना ने लज्जा से मुख नीचे कर लिया और कुछ उत्तर न दिया।

रानी—(उसके उदर की ओर इशारा करके) अरी यह क्या हुआ है? तेरा पति तो युद्ध में गया हुआ है और यह कहां से? तू तो निर्लज्ज निकली।

इन शब्दों के सुनते ही अञ्जना चकित सी रह गई, मुख श्वेत होगया, कोमल चित्त पर भारी चोट लगी, सिर पर शोक का पर्वत गिरा, नैनों में आंसू भर आये, धड़कते हुए मन को संभाल हाथ जोड़कर बोली—

सुनो सास मेरी बिनती मैं निर्दोषन नार।
नहीं और को जानती बिना एक भर्त्तार॥
कृपा की जगदीश ने जा की महिमा अपरम्पार।
स्वामी आये गृह विषे कर कुछ सोच विचार॥
तीन दिवस तक यहां रहे करते हित से प्यार।
गये ऋतुदान दे युद्ध में प्रीतम प्राणाधार॥

माता जी! जिस समय वह लौट कर रामनाथ को जाने लगे उस समय मैंने बहुत विनती की कि आप अपनी माता से मिलते जायें, जिससे उनको आपके आने में सन्देह न हो, नहीं तो मेरी ओर से उनको सन्देह हो जावेगा। परन्तु उन्हों ने यही कहा कि इस समय हमारे जाने से उनके (माता पिता के) मन में विचार उत्पन्न होगा, कि हम युद्ध से डर कर लौट आये,

हैं, इस लिये हमारा इस अवस्था में उनके समीप जाना अच्छा नहीं। (अंगूठी दिखाकर) यह अंगूठी अपने हाथ से उतार कर मुझको दी, सो आपको दिखा कर उनके आने का निश्चय कराती हूं। अभी अञ्जना यह कह ही रही थी कि रानी फिर क्रोधित हो बोली—

झूठ न बोल री पापिनी ऐसा नहीं कुमार।
युद्ध माहीं वह सूरमा है जिसकी तू नार॥
यह अनरथ तैं क्या किया है तुझको धिक्कार।
काहे मरी न नीचनी धिक् जीवन संसार॥
खोटा कर्म्म यह तैं किया कुछ न किया विचार।
हूं किसकी मैं पुत्री किस स्वामी की नार॥
भयो गर्भ किमू और से धरया नाम कुमार।
जा दूर हो मेरी आंख से चञ्चल चपला नार॥

धूर्त्ता! जब से तेरा विवाह हुआ उसने (पवन ने) तेरा मुख तक तो देखा ही नहीं! वार्त्तालाप करना तो एक ओर रहा, अब पथ में से लौटकर तेरे मिलने को आया। घड़ी नहीं! दो घड़ी नहीं! तीन दिन यहां रहा और बिना हमारे मिले चला गया! भला कोई भी बुद्धिमान तेरी इस बात को मान सकता है, कि पवन ने ऐसा किया हो? हाय! तू बड़ी चालाक है। इस प्रकार कहते हुये लज्जा तो नहीं आती। अंगूठी दिखाकर पतिव्रता बनती है। सुशीला और पतिव्रता होने का दम भरती

है। तेरी सारी कुत्सता प्रगट हो गई, जा! मेरी आंखों से दूर हो, दुष्टा तुझको मृत्यु भी न आई।

पाठकगण! रानी के मुख से कठोर शब्द बाण की न्याईं निकल २ कर अञ्जनादेवी के पवित्र मन को जो सामने उसके शिर झुकाये एक अपराधी के समान बैठी है, छेद रहे हैं, और उसकी आंखों में अन्धकार फैलता जाता है, कान जिन्हों ने ऐसे कठोर शब्द न सुने थे अपनी शक्ति को खो रहे हैं, मन में विधाता को रो २ शिकायत कर कह रही है "हाय, अब क्या होगा! क्या करूं!! किधर जाऊं!!!"

जब रानी का क्रोध कुछ कम हुआ तो अञ्जना ने एक बार कुछ यों ही सी ऊपर दृष्टि कर देखा तो अपनी दाईं ओर बसन्त-माला को पाया।

अहा! इस समय इसका पतिधर्म और सुशीलता कह रही थी कि बस तेरा संसार में रहकर मुख दिखाना अच्छा नहीं! लोग क्या कहेंगे? हाय! इस विचार के उत्पन्न होते ही शरीर की सब शक्तियों ने अपने से बाहर होकर कुछ काल के लिये अपना २ काम छोड़ दिया और यह अचेत होगई।

जब कुछ सुध आई तो हाथ बांध कर बोली—

अञ्जना—माता जी! मैं निरपराध हूं, स्वामी जी के आने पर आप पर यह सब प्रगट हो जायेगा, इस समय क्षमा करो।

अञ्जनादेवी की नम्रता रानी के मन को शीतल करने के बदले उलटा क्रोध की अग्नि पर तेल का काम देगई और वह लाल आंखें निकाल क्रोधित हो बोली—

रानी—तेरे मन में विचार होगा कि यहां रह कर इनके वंश को कलंक लगा पवन के नाम को दूषित करूं। भला मैं ऐसा कब करने दूंगी। (दासी की ओर इशारा करके) जाओ शीघ्र पातकी रथ लाओ, मैं इसका अभी झगड़ा निपटा देती हूं।

अञ्जना—(कांपती हुई) माता जी! जब तक स्वामी जी युद्ध से लौट नहीं आते मुझको यहां रहने की आज्ञा दो, मैं आपकी दासियों के तुल्य टहल सेवा करूंगी। माता पिता के घर जाने से मेरा अपमान होगा।

रानी—खूब कही! बड़ी चतुर है माता पिता के घर जाने से तेरा अपमान होगा! अरी निर्लज्ज! यह उस समय सोचा होता, तेरे यहां रहने से जो हमारे वंश की निन्दा होगी उसको तू नहीं विचारती। जा दूर हो! बहुत बकबक मत कर। इतने में दासी ने आकर कहा—"माता जी पातकी रथ द्वार पर खड़ा है, और काले वस्त्र (अञ्जनादेवी की ओर इशारा करके) इसके लिये लाई हूं।" यह बोली और अञ्जना के आगे रखकर पहनने को कहा।

हाय! जिस समय दासी ने काले वस्त्र लाकर अञ्जना के आगे रक्खे और पहनने के वास्ते कहा तब वह बहुत ही घबराई, जिह्वा से तो कुछ बोला नहीं जाता था, परन्तु आंखों से आंसू टप २ गिर रहे हैं, या ग्रीवा फेर २ कर इधर उधर देख रही है। मानो यह चाहती है कि कोई उसकी दशा पर दया कर रानी के क्रोध की अग्नि को शांत कर उसको समझावे कि यह निरापराध है। परन्तु शोक! यहां कोई भी ऐसा नहीं था जो

इस समय आगे होकर रानी को समझाता, अथवा यही कहता कि पहिले पवन से इस बात की सत्यता जान लीजिये और पुनः अञ्जना को दण्ड दीजिये।

पाठकगण! यहां सिवाय उस दुष्टा दासी या विचारी बसन्तमाला के और कोई नहीं।

हाय! काले वस्त्र देखकर बसन्तमाला अत्यन्त दुखी होगई और घबराकर रानी के पांव पर दौड़ कर गिर पड़ी और कहा—

बसन्तमाला—माता जी! ऐसा अनरथ न करो, अञ्जना निरापराध है। जब तक पवन जी नहीं आते, सत्य असत्य का निर्णय नहीं होता इसको यहां रहने दो। बाहर जाने से न केवल इस ही को अपयश होगा। वरन् आपका नाम भी कलंकित होगा और पवन जी सुनकर बहुत दुखित होंगे, उस समय सिवाय पश्चाताप के और कुछ न बन पड़ेगा। बसन्तमाला की बातें सुनकर रानी का तमोगुण और भी भड़का और क्रोधित होकर कहा—

रानी—चल दूर हो, दुष्टा! यह कहा और प व से झटक कर पीछे फैंक दिया और सुखपाल में बैठ अपने भवन को चली गई और राजा से एक पत्र महीन्द्रराय को इस विषय का लिखवा कर उसी समय भेज दिया कि जिसको देख कर अपनी दुखी बेटी की दशा पर त्रास खाने के बदले उसके लहू का प्यासा होजावे॥

दशम अध्याय

देश निकाला।

ग्री ष्म ऋतु है और दिन के पिछले पहर का समय है, जबकि अञ्जनादेवी रोती बिलबिलाती पातकी रथ में बैठ बसन्तमाला को सङ्ग लिये रत्नपुर से चली।

हाय! इस समय के रुलाने वाले दृश्य (सीन) को देखकर बहुत से स्त्री पुरुष एकत्रित होगये, परन्तु इन में से ऐसा कोई भी नहीं, जिसने आंखों से आंसू बहा इस पर अन्याय होने की साक्षी न दी हो। यद्यपि प्रत्यक्ष में हर एक का मुख रानी के भय से बन्द है, परन्तु अपनी आत्मा में सब रानी के उपद्रव की पुकार ईश्वर से कर रहे हैं। इन लोगों के सामने अञ्जनादेवी नीचे सिर झुकाये शोकातुर दृष्टि से देखती हुई जा रही है और कई प्रकार के विचार मन में आरहे हैं, आप ही उनकी पुष्टि करती है और फिर थोड़ी देर के पश्चात् निषेद करने लग जाती है, कभी सोचती है कि और स्थान में जाने से माता पिता के घर जाना अच्छा है, क्योंकि वह मेरी इस अवस्था पर अवश्यमेव दया कर

मेरे दुःख में साथी होंगे, परन्तु जब वह मुझ से इन काले वस्त्रों का कारण पूछेंगे तो क्या उत्तर दूंगी। (शरीर पर दृष्टि डालकर) हाय! अब तो उनके सन्मुख जाने ही के योग्य न रही। हाय! कलंक भी तो वह लगाया गया है कि जिसके बताने से लज्जा आती है, ऐसे जीवन से मृत्यु अच्छी है, क्योंकि संसार में वही स्त्री धन्य है जिसका जीवन निष्कलंक व्यतीत हो, नहीं तो ऐसे अपमान से जीना न जीने के तुल्य है, बस अब मेरा मरना ही अच्छा है (अंगूठी को देखकर) यही हीरा मेरे प्राण हरने के लिये यथेष्ट है (आप ही) नहीं! नहीं! यह भी मेरा विचार ठीक नहीं, ऐसा काम करने से बहुत कलंकित हो जाऊंगी। यद्यपि स्वामी जी अपनी माता की बात पर निश्चय न करेंगे, परन्तु संसार को कौन समझाएगा और यह कलंक जो मेरे माथे पर लगाया गया है सदैव कालिमा का टीका रह जायगा। हाय! मैंने पिछले जन्म में कैसे दुष्कर्म किये थे जिनके बदले मुझको आज यह दिन देखना पड़ा। अच्छा! माता पिता के घर जाकर क्या करूं किसी और ही स्थान में जाकर अपने जीवन को व्यतीत करूंगी (थोड़ी देर सोचने के पश्चात्) "हां" यही ठीक है अब उनके पास न जाऊंगी (फिर आप ही) नहीं! नहीं! यह भी ठीक नहीं ऐसा करने से सत्य असत्य का निर्णय क्योंकर होगा। माता पिता के गृह में ही रहना अच्छा है क्योंकि मैं निरापराध हूं (आप ही आप) परन्तु उसका मेरे पास परिचय ही क्या है, यही एक अंगूठी! जिसे रानी जी ने यह कहकर निषेध कर दिया है कि उनकी नहीं है!

और मैं छल करती हूं। लाखों सौगन्धें खाऊं परन्तु मेरी बात का ऐसी दशा में कौन विश्वास करेगा।

यह कहा और टप २ आंसू आंखों से गिरने लगे। वसन्तमाला जो सिर झुकाए उसकी आतुर दशा पर सोच रही थी, यह देखकर कहने लगी—

वसन्तमाला—अञ्जना! क्यों रोती है, सखी! रोने से तो कुछ लाभ नहीं! धैर्य धर! ईश्वर पर निश्चय रख वही सब के दुखों को हर कर सुख का देने वाला है।

अञ्जनादेवी—बहिन! तुम मेरे रोने का ध्यान न करो अभी शोक का पर्वत गिरा है, नवीन दुख है अब एक ही बार तो मैं मन को पत्थर नहीं बना सकती, आप सम्भलते २ सम्भल जायेगा। जो भाग्य में लिखा है, अवश्यमेव भोगना पड़ेगा। वसन्तमाला! कह तो मन में यह विचार था कि कब स्वामी जो आवें और मैं उनको यह समाचार सुनाऊं, और कहां आज अपनी यह दुर्दशा देख रही हूं। बता रोऊं न तो क्या करूं? मैं नहीं जानती अभी क्या २ दुःख मेरे भाग्य में लिखे हैं। माता पिता मेरे साथ क्या बर्ताव करेंगे? हाय! महीन्द्रपुर का नाम याद आते ही कलेजा मुंह को आता है।

वसन्तमाला—धैर्य रख! घबराना अच्छा नहीं तू तो स्वयं ही बुद्धिमान है। माता पिता के गृह जाने से कोई दोष नहीं, वह तेरी इस दशा पर अवश्य ही पश्चाताप करेंगे, और कोई ऐसी वैसी बातें कहने नहीं पायेगा।

पाठकगण ! अञ्जना तो अपनी विपदा के दुखड़े रोती हुई महीन्द्रपुर के पास पहुंची है, जिनको सुन कर हमारा मन भी व्याकुल हुआ जाता है, इनको इसी ठौर छोड़ कर हम आगे बढ़कर देखें कि राजा प्रहलाद विद्याधर का पत्र यह पहुंचा है या नहीं, और इसके माता तथा पिता इस विषय में क्या सोच रहे हैं।

हाय ! रानी बेगमोहनी तो अञ्जना से भी बढ़कर व्याकुल हो रही है, वह देखो राजा महीन्द्रराय चौकी पर शोकमय मूर्ति बनाए हाथ में एक पत्र लिये (कदाचित् यह वही पत्र प्रहलाद विद्याधर का है) पढ़ रहे हैं, और रानी पलङ्ग पर बैठी कैसी चुपचाप राजा के मुख की ओर देख रही है और नाना प्रकार के विचार इसके चित्त में उत्पन्न हो दुखित कर रहे हैं और कुछ समझ में नहीं आता कि क्या भेद है ?

रानी—(घबराहट से) महाराज ! हाय ! अञ्जना को क्या होगया !! वह बड़ी बुद्धिमान थी !!!

राजा—प्रिया जी ! मेरे विचार में कुछ नहीं आता, ईश्वर जाने क्या बात है जो राजा विद्याधर अञ्जनी के विरुद्ध इतना कड़ा लिखते हैं।

रानी—नाथ ! फिर इस पत्र को पढ़ो और राजा के हस्ताक्षरों को पहिचानो किसी शत्रु का लिखा हुआ तो नहीं है। अञ्जनी तो इस कलंक के लायक न थी।

राजा—(पत्र को पुनः देखकर) प्रिये ! यह देखो (पत्र को आगे करके) उसी के हाथ का तो लिखा हुआ है। राजा प्रहलाद

विद्याधर कोई निर्बुद्धि पुरुष तो नहीं उसने भी तो भले प्रकार जानने के पश्चात् ऐसे लेख का साहस किया होगा वरन् वह कभी भी ऐसा न लिखता। उसको अपनी हानि लाभ का विचार नहीं है? हाय! अब तो मैं किसी प्रकार अञ्जनी का मुख नहीं देख सकता और न उसको रखने के लिये उद्यत हूं। (आंसू बहाकर) और तुम को भी यही कहता हूं कि उसको कभी भी यहां न रहने देना और न उस से कोई बात करना, उसने तो हमारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिलादी! यह कहा और आंसू पोंछता और ठण्डे श्वांस लेता हुआ बाहर चला गया। इन बातों को राजा के मुख से सुन रानी का रङ्ग पीतवर्ण होगया दिल बैठ गया सिर पर शोक का पर्वत गिर पड़ा और सहस्रों ठण्डे श्वांस निकलने लगे। दुःख वा विपद का बादल छागया और आंखों से अश्रुधारा बहने लगी और अञ्जना के बालकपन की बातें स्मरण आ उसके चित्त को व्याकुल करने लगीं!

हाय! अञ्जना की भोली २ बातें सखी सहेलियों के साथ हँस २ कर खेलना यह सब बालकपन का चित्र रानी की आंखों के आगे फिर रहा था कि यकायक यह विचार मस्तक से उतर हृदय में आ जिह्वा से निकला, हाय! आज उसी प्यारी अञ्जनी की जिसको एक पल भर न देखने से राजा घबरा जाता था, उसे आज देखना तक नहीं चाहता। यह कहा तो शिर चक्कर खागया और आंखों के आगे एक दम अन्धेरा छागया, तत्पश्चात् बेसुध होकर गिर पड़ी! दासी ने भाग कर दोपट्टे के अञ्चल से पवन की और गुलाब केवड़ा छिड़का तो आंखें खोल

लेटे २ मन ही मन में कहने लगी "ऐं! क्या यह सत्य है कि अञ्जनी दुराचारिणी हो गई?" हाय! मैं उस प्यारी पुत्री के वास्ते कैसा मन्द शब्द जिह्वा पर लाई हूं मैं तो उसको अपने प्राणों से भी प्यारी जानती थी। हाय! मेरी यह जिह्वा जल जाय जिससे यह शब्द निकला, वह इस योग्य नहीं है। पतिव्रता और सुशीला पुत्री है, जो बालकपन में भी ईश्वर की भक्ति में लवलीन रहती थी, लोग उसको लज्जा की देवी कहते थे। शोक! अब उसको क्या होगया? इतने में एक दासी ने आकर धीमे स्वर से कहा अञ्जनादेवी आई है।

रानी—(आश्चर्य्य से) ऐं क्या कहा? अञ्जनी आई! कहां? यह कहा और उठ कर बैठ गई और दासी से कुछ पूछना चाहती थी कि अञ्जनी भाग कर गले जा लिपटी और फूट २ कर रोने लगी, यद्यपि पहिले तो रानी भी उसकी यह दशा देख रो पड़ी, परन्तु पश्चात् जब मन में कुछ विचार आ गया तो बोली—

रानी—अञ्जनी! (उसके वस्त्रों की ओर इशारा करके) यह क्यों? तुझ से तो ऐसी आशा न थी! तू क्यों ऐसी निर्लज्ज होगई? धिक्कार है तेरे इस जीवन पर! तुझको मृत्यु भी न आई। यहां आने से विष खाकर मर जाती तो क्या ही अच्छा होता, हाय! मैं ऐसी सन्तान होने से बांझ क्यों न रही, जो आज का दिन तो देखना न पड़ता; दुष्टा! तू ने कुछ भी विचार न किया, पिता और माता की प्रतिष्ठा को भी मिट्टी में

मिला दिया। जा! जहां तेरा जी चाहे चली जा!! परन्तु हमारे देश में न रहना।

इन बातों को सुनकर अञ्जना के शरीर में सन्नाटा सा छा गया, लहू जहां आकर्षित था वहीं जम गया, आंखें पथरा गईं, मुख यद्यपि पहिले ही से पीला पड़ गया था परन्तु केवल एक यहां की आशा शेष थी, जिसने उसको अभी तक डरावनी सूरत नहीं बनाई थी जैसाकि अब दिखाई देता है, वही मोटी २ आंखें जिनको देखकर मृग भी लज्जा से मुख छिपाते थे भीतर को घुस गई हैं, वही मुख जिसकी किसी दमकते हुये कुन्दन से उपमा दी जाती थी, इस समय महा मलीन हो रहा है हां अस्थियां और त्वचा अवश्य हैं; उसका चिल्ला चिल्लाकर ज़ोर ज़ोर से रोना भी बन्द होगया है, कदाचित् उसका कारण यह हो कि अब संसार में उसको अपना कोई साथी दिखाई नहीं पड़ता, जो इसके रुदन को सुनकर दया करे, इसी लिये उन्हीं ठण्डे २ श्वांसों ने जो बाहर निकल रहे थे, अन्दर प्रवेश कर परमेश्वर के राज्य में जो हिन्दू धर्मानुसार हर एक जीव के अन्दर उपस्थित है, अञ्जनी की दाद की फरयाद करनी आरम्भ करदी है; या यह कहिये कि इन दुखित बातों का जिनका उसको स्वप्न में भी विचार न था सुन कर उसके मन को भारी चोट पहुंची है, और यही कारण है कि मौन होकर खड़ी रह गई है, चाहे कुछ ही क्यों न हो, देर तक अञ्जनी खड़ी हो माता की ओर देखती रही, और आंखों से गर्म २ आंसू गिराकर बेसुध होने से बच गई। अन्त को ज्यों त्यों कर बड़ी नम्रता से बोली—

अञ्जनी—माता जी ! मैं निर्दोष हूं। भला मैं आपको छोड़ कर कहां जा सकती हूं ? मेरा और सहायक कौन है जहां विपत्ति के दिन काटूं। स्त्री का अधिकतर अवलम्बन पति, फिर माता पिता और सास श्वसुर पर होता है, हाय ! मैं ऐसी अभागिनी हूं कि पति के परदेश चले जाने से सब कोई शत्रु होगये। माता सत्य कहती हूं कि सास की बातें सुन कर मैं ऐसी न घबराई थी जैसीकि अब। मुझको निश्चय था कि आप अवश्य सत्य का निर्णय कर मेरी आतुर दशा पर दया करेंगी। परन्तु हाय ! ग्रह गति ने आपके कोमल चित्त को भी पत्थर बना दिया।

यह कहा और पृथ्वी पर बेसुध हो गिर पड़ी ! रानी ने शीघ्रता से होश में लाने का यत्न किया और रो २ कर आप बेसुध होगई।

जब अञ्जनी को कुछ सुध आई तो बोली, माता जी जब तक स्वामी जी लौट कर नहीं आते मुझे यहां रहने की आज्ञा दीजिये, उनके आने पर आपको सत्य असत्य का ज्ञान हो जायगा, उस समय जो कुछ मन में आये सो कीजियो।

रानी—अञ्जनी ! मेरा कुछ वश नहीं। बेबस हूं। यदि कोई और बात होती तो अपनी जान पर खेल जाती। परन्तु हाय ! तुमने वह काम किया जिसको कहते हुये भी लज्जा आती है। वही तेरा पिता जो तुझ पर प्राण निछावर करने को हर समय उपस्थित रहता था, आज तेरा नाम सुनने से दुःखी हो जाता है। यदि तुझको यहां रहने की इच्छा होती तो इन बातों से

घृणा करती । जा यहां से शीघ्र चली जा, कहीं मेरी भी दुर्दशा न कराना ।

अञ्जना—हाय ! यह मेरे ही कर्मों का फल है, जो आप जैसी शीलवन्ती का चित्त भी पत्थर होगया और का क्या कहना ।

रानी—(बाहर को ओर देखकर) बस बहुत बातें न बना शीघ्र चली जा, यदि स्वामी जी आगये तो मेरी भी शामत आ जायेगी ।

रानी के मुख से यह बात निकलने की देर थी, कि दो तीन दासियों ने रोती हुई अञ्जना को घर से बाहर निकाल दिया । यद्यपि उसने बहुत यत्न किया कि एक बार फिर अपना भाग्य लड़ाऊं, परन्तु शोक ! दासियों ने कुछ भी न सुना, और एक उन में से बोली—

दासी

कहे दासी सुन अञ्जना, यहां तेरा क्या काम ।
किया ससुर मां बाप को, जग में तैं बदनाम ॥
उत्तम कुल महाराज का, धूल मिलाया नाम ।
चल पापन दुराचारिणी, और न कर बदनाम ॥

दासी की यह बात सुन कर अञ्जनादेवी के मन को बड़ा कष्ट हुआ और तो कुछ न बन पड़ा रोकर इतना कहा—

बोल कुबोल न बोल री, पतिव्रता मैं नार।
कड़े वचन क्यों बोलती, दासी जीभ सँभार॥
विपद विहूनी मैं फिरूं, निरदोषन हूं नार।
कर्म रेख प्यारी न टरे जो लिखिया कर्तार॥

माता की अन्तिम आज्ञा सुन कर अञ्जना रोती हुई द्वार से निकल कर थोड़ी ही दूर गई होगी, कि एक पुरुष जिस की आयु चालीस पचास वर्ष से न्यून नहीं और जो उत्तम वस्त्र धारण किये हुए है, मिला। जिसको देखते ही अञ्जना चिल्ला उठी और बेसुध हो उसके गले से लिपट रुदन करने लगी, जिसका विलाप सुनकर वह पुरुष भी पीड़ित हो रुदन करने लग पड़ा है, एक हाथ तो उसके सिर पर है और दूसरा कमर पर है, वह कह रहा है—"क्यों रो २ कर व्याकुल होती है अब रोने से तो कुछ लाभ नहीं" और साथ ही इधर उधर भी देख लेता है, जिससे जान पड़ता है कि किसी का भय भी इसे अवश्य है।

पाठकगण! आप आश्चर्य करेंगे कि यह पुरुष कौन है जो अञ्जनादेवी की विपत्ति पर आंसू बहा रहा है? आईये हम आपको बतलाते हैं यह अञ्जना का भाई है जो अकस्मात् इसको इस स्थान पर मिल गया है। सुनिये! क्या कह रहा है।

प्रसन्नकीर्ति—अञ्जना! तेरी विपत्ति को देखकर मेरे मन को बड़ा दुःख प्राप्त हुआ है, मानो शोक समुद्र में डूब रहा हूं

परन्तु इस दशा में तेरी किसी प्रकार भी सहायता नहीं कर सकता, क्योंकि तुझ से अति ....अपराध हुआ है, जिसके कारण तुझ से बातें करने में भी लज्जा आती है। (मन में) हाय! कहीं पिता जी देख लेंगे तो क्या कहेंगे।

अञ्जना कुछ कहने को ही थी कि प्रसन्नकीर्ति शीघ्रता से अपने भवन की ओर चला गया, और अञ्जनीदेवी आश्चर्य से मूर्त्तिमान रह गई। वही कल्पनायें जो उत्पन्न हो कुछ धैर्य्य देने लग पड़ी थीं निराशा में बदल गईं, दिल घबरा गया, मन में कई प्रकार की कल्पनाये उत्पन्न होने लगीं, संसार मिथ्या भाषने लगा, बेसुध होगई, सिर घूमते हुये चाक की न्याईं घूम गया, तो सिर को हाथ से पकड़ कर अब एक दीवार के आश्रय खड़ी होगई। थोड़े काल के मौन पश्चात् पहले पहल जो शब्द इसके मुख से निकले वह यह हैं—ऐ ईश्वर! मैंने ऐसा कौन पाप किया है कि जिसके बदले अपने भी बेगाने होते जाते हैं। हाय! इस संसार में कोई मेरा सहायक दीख नहीं पड़ता, ईश्वर! यह क्या भेद है? समझ में नहीं आता! आप पर भी दोष नहीं लगा सकती, क्योंकि न्याय आपका ही एक गुण है तो फिर यह क्योंकर (थोड़ा काल सोचने के पश्चात्) शोक! यह मेरे ही पिछले कर्मों का फल है। किसी को क्या दोष दूं।

पाठकगण! इस समय बहुत सी स्त्रियां और बालिकायें अञ्जनादेवी के आस पास खड़ी हैं। परन्तु सब की सब आंसू बहा उसकी इस दशा पर शोक कर रही हैं, जिन्हों ने उसका

बालकपन देखा हुआ था, वह तो आश्चर्य से शोक कर अंगुलियां मुंह में डाल विधाता को कोस कर बालकपन की श्लाघा कर रही हैं, परन्तु जिनको अभी इसके देखने का अवसर ही नहीं मिला, अञ्जना के मुख पर से अञ्चल उठा मुख मूर्ती को देख हाथ मल २ कर शोकातुर हो रही हैं, और नाना प्रकार की बातें कर उसको धैर्य दे रही हैं।

हाय ! इस समय अञ्जनादेवी के मन में सहस्रों प्रकार के विचार उत्पन्न हो २ कर मन को व्याकुल करके रह जाते हैं, और यह बेचारी विपता की मारी अधिकतर सुनने की शक्ति न रख कर शनैः २ पाओं रखती हुई आगे को चली जा रही है ॥
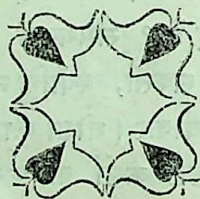
एकादशम अध्याय

हाय ! अब किधर जाऊँ ?

वही दिन है और उस दिन का पहिला पहर व्यतीत हो चुका है, जब कि अञ्जनादेवी शोक से ग्रीवा को झुकाये और फिर आप ही शिर उठाये महेन्द्रपुर के स्त्री पुरुषों पर शोकातुर दृष्टि डालती और रोती हुई वसन्तमाला को साथ लिये नगर से बाहर निकल उस पगडण्डी से जो खेतों में होकर उत्तर को जाती है जा रही है। अभी दो तीन कोस ही गई होगी कि तीन पथ जोकि तीन ओर जाते थे दीख पड़े, इनको देखकर अञ्जना अत्यन्त व्याकुल हुई और मन में कहा कि अब कौन से पथ पर चलूं, पहिले दायें ओर को देखती रही और फिर बाईं ओर को, परन्तु इन दोनों में बहुत से पथिकों के आने जाने के चिन्ह देखकर और अपने वस्त्रों पर दृष्टि डालकर न जाने किस सोच में पड़ गई कि पलक तक नहीं झपकती और व्याकुल होकर खड़ी है, कुछ काल पश्चात्

आकाश से दृष्टि मिला यह कहा—हाय ! अब किधर जाऊं ?
फिर ठण्डी श्वास लेकर यों कहने लगी ।

दिया सास ससुर ने त्याग पति ने सुध बिसारी ।
करें सभी धिक्कार नगर के नर और नारी ॥
बिना आप भगवान कौन मेरा हितकारी ।
होय निराश उदास आई मैं शरण तिहारी ॥
कौन करे हितकार्य्य प्रभु जब तुम रिसयाओ ।
मेरे औगुण हैं बेअन्त प्रभुजी चित न लाओ ।
किस पै करूं पुकार नहीं कोई और ठिकाना ।
था मात पिता पर ज़ोर सोई मैं झूठा जाना ॥
भाई ने दीनी तराह देखकर विपत का बाना ।
हाय कहैं दासी बुरयार सुना मैं अपने काना ॥
और न दो सन्ताप प्रभु मैं अति दुखियारी ।
नहीं जीने की चाह मुझे अब मौत पियारी ॥
काहे करो अब देर जल्द यम दूत पठावो ।
हो कृपालु दयालु प्रभु मेरो दुःख मिटावो ॥
हैं ऐसे मन्द भाग्य मृत्यु न मेरी आवे ।
क्या जाने क्या रंग अभी विधना दिखलावे ॥

है मुझको विश्वास नहीं प्रभु अन्यायकारी।
होनी है बलवान उसी की खेल है सारी॥
दोष नहीं कुछ सास ससुर को न पिता और माई।
दास दोष है पूर्व कर्मा विधना विध बनाई॥

यह कहा और इन दोनों रास्तों को छोड़ और सामने जहां से कोई भी जाता दिखाई नहीं देता और न ही जाने वालों का अधिक चिन्ह दीख पड़ता है स्वीकार किया।

हाय! प्यारी अञ्जना! तू कहां को जा रही है? इस ओर तो कोई ठिकाना नहीं, जहां बैठकर अपना शोक दूर करेगी या किसी को अपने दुःख का सहायक बनायेगी! तेरा विवाह क्या हुआ तू तो दुखों में ही लिप्त होगई; तुझे संसार के सारे दुःखों ने आ घेरा! दिन प्रति दिन विपत्ति का बोझा तेरे हृदय को आ दबाता है।

शोक! दुःख का तो एक दिन पर्वत दिखाई देता है। तुझ को तो तेरह वर्षों से इसी का सामना है। पहिले बारह वर्ष तो स्वामी जी के वियोग में व्यतीत हुए और तेरहवां सब से बढ़कर अशुभ निकला। अञ्जना! बतला तो सही अब कहां को जायेगी? बन की ओर क्यों जा रही है? इस ओर तो भयानक दुखदाई पशु फिरते होंगे? जिनको देखकर तेरा नन्हा सा दिल घबरा जायगा! क्योंकि तूने पहिले कभी उनको नहीं देखा! देवो! यह रास्ता छोड़ दे और दायें हाथ का रास्ता पकड़ जो बस्ती को जा रहा है। शोक! यह कुछ नहीं सुनती

और बसन्तमाला को उसी ओर जाने के लिये कह रही है। यद्यपि वह बहुत समझाती है, और इस ओर के जाने में कई प्रकार की विपत्तियां बतला प्राण का भय जतलाती है, परन्तु यह एक नहीं मानती! क्या इसको बस्ती से घृणा है? जो उसको छोड़ बन को जा रही है! हां! ऐसा ही जान पड़ता है, क्या आप भूल गये? सास ससुर का खोटा वर्ताव, माता पिता की असावधानता, दासियों के कठोर वचन और नगर की स्त्रियों की बातों को सुनकर उसके मन ने बस्ती से बन को ही अच्छा जाना है, और यह सच भी है जहां कोई अपना सहायक और शोक निवर्तक न हो वहां जाने से दुःख के बिना और कुछ प्राप्त नहीं होता। इस समय इसका कोई भी सहायक नहीं, जो इसकी दुःखित अवस्था में देख आंसू बहा इसके उदासीन मन को धैर्य दे, या यह ही कहे कि तृषा ने तुझको व्याकुल कर रक्खा है, इस नदी से जो पास ही बह रही है जल पी ले। नहीं! नहीं! वह देखिये बसन्तमाला जिसने संसार के सब पदार्थों को छोड़ आनन्द से मुख मोड़ बालकपन ही से इसका साथ दे रक्खा है, बराबर कह रही है, परन्तु अञ्जना यही उत्तर देती है कि मन नहीं चाहता!!

पाठकगण! अञ्जना अभी पांच सात कोस गई होगी कि पर्वतों की ऊंचो २ चोटियां दिखाई देने लगीं, धूप का रङ्ग भी बदल गया, सूर्य्य की तीक्ष्ण किरणें भी मध्यम पड़ गईं और अब उनका रङ्ग पीला दीख पड़ता है, जिनको देखते ही घबरा कर बसन्तमाला ने अञ्जनादेवी से कहा—

बसन्तमाला—सखी ! सूर्य्य अस्त हुआ चाहता है और सुनसान वन चारों ओर दिखाई दे रहा है, ज़रा शीघ्र २ चलो ताकि आश्रय का स्थान देख रात व्यतीत करने का यत्न करें।

अञ्जना—प्यारी ! सूर्य्य के अस्त होने की तो कुछ चिन्ता नहीं, मैं तो अपने भाग के चन्द्रमा को रो रही हूं जो आज कई वर्षों से अस्त हो चुका है, जिसके अस्त होने से हर एक का चित्त मेरी ओर से फिर गया है। इस जङ्गल को देख क्यों घबराती है मैं तो इसे बस्ती से अधिक सुखदाई जानती हूं, क्योंकि मेरे मन को दुखाने वाला तो वहां कोई नहीं होगा (रोकर) हाय ! शीघ्र चल कर किसके पास जाना है, सखी ! जहां रात्री पड़ गई वहीं हमारा ठिकाना है।

बसन्तमाला—सखो ! जो कुछ तुमने कहा ठीक है, बहिन ! समय के वर्ताव पर जितना शोक प्रकट किया जावे उचित है, परन्तु गिरगट के समान इसके बदलते हुए रङ्ग इस बात को सिद्ध कर रहे हैं, और दुःखी पुरुषों को अच्छे प्रकार निश्चय दिला रहे हैं कि यदि कल का दिन आज नहीं रहता, तो इस में भी कोई सन्देह नहीं कि आज की दशा भी कल तक न रहेगी, कभी तो भाग अच्छे उदय होंगे, कभी तो दिन फिरेंगे।

अञ्जना—(शोकमय स्वर से) बसन्त ! क्या करती हो यह वह भाग्य नहीं जो कभी पलटे, ग्रह गति को मैं आप मानती थी, और जानती थी कि दुःख सुख सदैव काल नहीं रहता, परन्तु अब निश्चय होगया कि यह सब मन के ढकोसले हैं, और यह सब बात मिथ्या और झूठ हैं, सखो ! सोचो तो सही, जब से

विवाह हुआ क्या सुख पाया ? आज तेरह वर्ष से बराबर यही गत हो रही है ! बदलने की आशा कहां !

बसन्तमाला—(बात काट कर) अब तो सूर्य्य कहीं दीख नहीं पड़ता, हां ! रात का अन्धेरा चारों ओर फैल बन को भयानक बना रहा है।

अञ्जना—(आकाश की ओर दृष्टि करके) शोक ! मैंने तो अभी सन्ध्या करनी है। यह कहा और एक बड़ के वृक्ष के नीचे सन्ध्या करने बैठ गई और बसन्तमाला ने घास पात बिछाकर बिछौना किया और कुछ जङ्गली फल जो उस समय मिल सके लाकर आगे रक्खे। शोक ! बसन्तमाला तो अञ्जना को उन फलों के खाने के वास्ते प्रार्थना कर सौगन्धें दे रही है और यह बिचारी फूट २ कर रो रही है !!!

पाठकगण ! परमेश्वर करे कि विपत्ति के दिन किसी के भाग में न हों। देखिये वही राजा की पुत्री है, जिसने अपना बालकपन का समय आनन्द से व्यतीत किया था, सहस्रों दासियां हाथ बांधे खड़ी रहती थीं, नाना प्रकार के भोजन थाल में चुने जाते थे, कीमखाब और मखमल के तोशक बिछा कर सलवट का ध्यान किया जाता था, थोड़ासा कष्ट प्रतीत होने से सारे भवन में हाहाकार मच जाता था और सहस्रों अथवा लाखों रुपयों का दान किया जाता था, आज वह समय है कि साधारण भोजन से भी आतुर है, सुनसान बन में इस अवस्था पर जबकि पांच छः मास के गर्भ से है, और यह वह समय है जिसको वैद्यों और डाक्टरों ने स्त्रियों के लिये अति विकट कहा

है बैठी है; और तीन दिन पश्चात् यह थोड़े से जङ्गली फल प्राप्त हुए हैं और उन मखमली तोशकों के बदले घास पात का बिछौना हो रहा है, बिचारी रोए न तो क्या करे ? बड़ी कठिनता से एक दो फल खाकर जल पान किया, दिन भर की थकावट के कारण लेटना पड़ा।

हाय ! लेटते ही कई प्रकार के विचार उत्पन्न हो मन को और भी बेचैन करने लगे तो घबराकर उठ बैठी, और दिल में कहने लगी "मुझको क्या होगया, मैं क्यों कलंकित की गई मेरी कैसी दुर्दशा हुई !! लोग क्या विचार करते होंगे !! माता के मन में क्या आती होगी" ?

शोक ! इस विचार के आते ही चित्त मलीन होगया, शरीर में सन्नाटा सा छा गया। शिर आकाशवत् चक्कर खाने लगा, एक हाथ से उसको व्याकुल चित्त होकर पकड़ कर रह गई। इतने में यह विचार मस्तक से उतर हृदय में आ जिह्वा से निकला—हाय ! कैसी २ विपत्तियों के पश्चात् स्वामी जी का दर्शन प्राप्त हुआ था, मन में कहती थी कि अब विपता के दिन व्यतीत होगये हैं और आगे को प्रसन्नता पूर्वक आनन्द से आयु व्यतीत होगी, परन्तु मेरे ओछे भागों ने और ही रङ्ग दिखाया।

निदान इसी प्रकार कभी तो घबरा कर लेट जाती और कभी उठ बैठती, अन्तिम इन्हीं कल्पनाओं में प्रातःकाल होगया तो स्नान कर नित्य कर्म से निश्चिन्त हो आगे को चल पड़ी। हाय ! यह तो उन घने वृक्षों की ओर जा रही है, जिनके बीच

में से एक पगडरडी पशुमुखा वन में से होती हुई उन ऊंचे पर्वतों को जाती है जो दूर से दिखाई दे रहे थे। अभी चार पांच कोस ही गई होगी, कि वृक्षों और जङ्गली झाड़ियों के झुण्ड के कारण एक अन्धेरे पथ से जाना पड़ा, यद्यपि बसन्तमाला ने बहुत यत्न किया और बुद्धि के घोड़े दौड़ाये, परन्तु इस पथ के बिना और कोई भी दीख न पड़ा तब घबरा कर बोली।

बसन्तमाला—बहिन ! यहां से लौट कर किसी और तरफ को जाना अच्छा है, क्योंकि ऐसे भयानक मार्ग में चलना उचित नहीं। एक तो हमको मालूम नहीं कि यह मार्ग कहां को जाता है, दूसरे प्रकाश भी बहुत कम है तीसरे यदि इसको समाप्त करने से पहले रात्री हो गई, तो इस अवस्था में जैसे कि अब प्रतीत हो रहा है रात कहां व्यतीत करेंगे ?

अञ्जना—सखी ! हमारा तो कोई ठिकाना नहीं, जहां दाना पानी ले जायगा वहीं चली जाऊंगी, रात्री की चिन्ता न कर जहां देखूंगी वहां पड़ रहूंगी (ऊपर दृष्टि करके) अभी दिन बहुत बाकी है, सन्ध्या तक आठ दस कोस भली प्रकार से चली जावेंगी, (पथ की ओर देखकर) यह ऐसा विकट रास्ता तो थोड़ी दूर तक ज्ञात पड़ता है (फिर गूढ़ दृष्टि से देखकर) दो तीन कोस से अधिक न होगा, अब पीछे लौटना ठीक नहीं। पाठकगण ! यह भयानक और विकट रास्ता देख कर अञ्जना ज़रा भी न घबराई और ईश्वर पर भरोसा रखती हुई ऐसे जा रही है जैसे शूरवीर सिपाही शत्रु के पीछे। यद्यपि कई प्रकार के जङ्गली पशु भयानक बोलियां बोल रहे हैं, जिनको सुनकर एक

युवक शूरवीर भी धैर्य छोड़ दे, परन्तु यह (अञ्जना) बड़े उत्साह के साथ आगे को पांव रखती हुई जा रही है। यद्यपि झाड़ियों के तीक्ष्ण कांटे चुभ कर पांव से लहू बह रहा है, और पीड़ा दुखित कर रही है, परन्तु यह इन बातों की कुछ भी परवाह न करती हुई यही कहती जा रही है कि ईश्वर तेरी मङ्गल इच्छा पूर्ण हो।

ऐसे भयानक और विकट मार्ग को समाप्त कर अब एक ऐसे स्थान पर पहुंच गई है जो पहिले से बहुत चौड़ा है, परन्तु दायें बायें दूर तक वन ही वन दिखाई देता है, और सामने दो चार कोस के अन्तर पर एक झोंपड़ी दिखाई देती है, जो सम धरती से ऊंचे स्थान पर है, जिसको देखकर अञ्जनादेवी को कुछ धैर्य हुआ कि यहां पर कोई न कोई अवश्य ही रहता होगा। आज की रात हमें यहाँ ही काटनी पड़ेगी।

हाय! ग्रह नक्षत्र को इसकी इतनी भी धैर्यता न आई, अचानक काले बादल उठे और घटाटोप अन्धेरा छा गया। अन्धेरा भी कैसा है, हाथ को हाथ दिखाई नहीं देता, प्रत्येक ओर से भय ही भय प्रतीत होता है सारा वन भयानक दिखाई दे रहा है। वन के पशु नाना प्रकार की भयभीत बोलियां बोल २ कर कोलाहल मचा रहे हैं, परन्तु अञ्जनादेवी वसन्तमाला के धैर्य को बढ़ाती हुई बड़ी दृढ़ता के साथ जा रही है, अब अन्धेरा इतना बढ़ गया है कि एक दूसरी आपस में दृष्टि गोचर नहीं होती! हाय! सिंह भी कहीं पास ही गरजता सुनाई दे रहा

है। बादल की गरज और बिजली की कड़क से दिल धड़क रहा है। इस समय बसन्तमाला घबरा गई और बोली—

बसन्तमाला—बहिन ! कहां हो, मुझको तो कुछ नहीं दिखाई देता।

अञ्जनादेवी इस शब्द को सुनकर समझ गई कि अन्धेरे को देखकर डर गई है, झट उसका हाथ पकड़ कर अपनी बगल में दबा लिया और बोली—

अञ्जना—बसन्त ! घबराओ मत धैर्य रखो (आकाश की ओर देख कर) बादल फटने को देर है, अभी थोड़ी देर में प्रकाश हो जावेगा (मन में) हाय ! वाह री प्रारब्ध ! पहिले तो केवल अन्धेरा ही सता रहा था, या भयानक पशुओं के शब्द सुनाई दे दिल हिला रहे थे, अब धरती भी खुरदरी आ गई है। यदि एक पग सम भूमि पर पड़ता है तो दूसरा गढ़े में पड़ सिर को झुका कमर को लचकाता है, यदि टटोलते टटोलते वहां से बचा भी लिया तो बन की झाड़ियों ने अपना ही आहार बना लिया। यह दशा देख अञ्जना के आंसू निकल पड़े, और न जाने क्या मन में विचार आया कि ठण्डी स्वांस ली और बोली "अच्छा ! ईश्वर जो तेरी इच्छा !!" तब बसन्तमाला ने कहा—

बसन्तमाला—अञ्जना ! मैं सुनती थी, नहीं ! नहीं ! निश्चय जानती थी कि तेरा पिता बड़ा बुद्धिमान और शील स्वभाव राजा है, और इसी प्रकार तेरी माता को, परन्तु इस समय तो मैंने उन से बढ़कर कोई भी निर्दय नहीं देखा।

हाय! उन्हों ने जब अपनी पुत्री का कुछ विचार न किया तो दूसरे पर क्या खाक दया करेंगे!! बसन्तमाला की बातें अञ्जना के कोमल मन पर बाण के समान लगीं और बड़े क्रोध से बोली—

पिता मेरा सखी! अति गुणी और बड़ा बुद्धिमान।
दया धर्म को पालता करता हरि का ध्यान॥
राज काज में चतुर है महतरु देखे जो।
गुण औगुण पहचान कर दण्ड दे निर्पक्षी हो॥
जो मम हाल न परखिया तिसका और है भेद।
पूर्व कर्म मेरे अति बुरे जिन दिखलाया खेद॥
माता शील स्वभाव है पतिव्रता जिस नाम।
कण्ठ में जिसके बस रहा प्यारी इक ईश्वर का नाम॥
कठोर बचन नहीं जानती सब से करती प्यार।
नगर निवासी हित करें क्या पुरुष क्या नार॥
बसन्तमाला मत बोल री मुख से बात अयोग।
माता पिता के बस नहीं विधना लिख संयोग॥

"बसन्तमाला! क्या कहा? कुछ सोच कर बात किया कर, सखी! माता पिता कभी नहीं चाहते कि अपनी संतान दुःखी देखें, संसार में ईश्वर के पश्चात् वही हैं! इनका ऋण तो

कभी उतारा नहीं जा सकता, भला सोच वह माता जिसने वर्षों दूध पिलाया, रात दिन गोदी में खिलाया, बड़े लाडचाव से पाला. पढ़ाया, लिखाया, हमारी प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता जानी, थोड़ा सा दुःख होने से आप दुःखी होगई, हमारे लिये अपने सारे आनन्द छोड़ दिये, अति शोक है कि ऐसी दयालु माता के बेअन्त दया भावों को भूल उसको निर्दई और बेतरस कहें ? बसन्त ! उसका कुछ दोष नहीं, यह मेरे मन्द कर्मों का फल है, शोक......अभी यह कह ही रही थी कि धम से एक गढ़े में "जो लगभग तीन गज़ के गहरा और ४-५ गज़ के लम्बा है" (जहां किसी समय में कूंआ था) गिर पड़ी और बसन्तमाला के ऊपर गिरने से और भी चोट पहुंची। सिर की बड़ी चोट लगी। हाथ पांव कांटों से छिद गये, अचेत हो कुछ काल तो पड़ी रही जब सुध आई तो सर्प और बिच्छुओं को रीङ्गते हुए देखना और लहू के प्यासे पशुओं के डरावने शब्दों का कानों में प्रवेश करना जलती अग्नि में तेल का काम देगया।

हा ! ऐसे भयानक दृश्य को देख कर कौनसा शूरबीर है जो धैर्यता से काम ले ! परन्तु नहीं ! धर्म के पालन वाली सुशीला अञ्जना तनिक भी नहीं घबराई और बड़े धैर्य से बसन्त-माला से कहने लगी।

अञ्जना—बसन्त ! विपत्ति के दिन इसी को कहते हैं जब दुःख पर दुःख और खेद पर खेद हो, परन्तु इस दशा में घबराना उचित नहीं। हां ! इन बातों को देख पापों से डरना चाहिये. यह संसार मिथ्या है; यहां किसी ने नहीं रहना, कोई

दस दिन आगे कोई दस दिन पीछे, अवश्य मरना सब ने ही है, सो जब एक दिन मरना ही है तो हमको इन पशुओं से क्या डर ? मृत्यु का क्या भय ? यदि हमारी मृत्यु इन्हीं के हाथ से होनी है, तो बचाने वाला भी कोई नहीं ! प्यारी ! घबराओ नहीं, धैर्य पकड़ो, और यहां से निकलने का यत्न करो। दोनों ने बहुत कुछ यत्न किया और बुद्धि के घोड़े दौड़ाये, परन्तु शोक ! अपने मनोरथ को न पहुंचीं, और हार कर बैठ गईं। हाय ! इस समय अञ्जनी के मन में सहस्रों प्रकार के विचार उत्पन्न हो उसके उदासीन चित्त में चुटकियां लेने लगे, कभी तो सखी सहेलियों से खेलना, फुलवाड़ी की सैर करना, माता का उसको थोड़े से दुःख में देख व्याकुल हो जाना और कभी स्वामी जी का एक तुच्छ बात पर निश्चय कर प्रतिज्ञा कर पछताना, यह सब बातें बिजली के समान मस्तक से मन और मन से मस्तक में फिरने लगीं। बहुतेरा मन को सम्भाला, कई प्रकार के विचारों से टाला। परन्तु अब वह बल नहीं रहा जो इन बातों को अन्दर ही अन्दर रोके रखे, बेबस जिह्वा से निकल ही गया !

माता ! देख तेरी वही अञ्जनी है जिसके पाओं में ज़रा सा कंकर चुभने से तू दासियों को मार २ कर सत्यानाश कर देती थी, कि भले प्रकार झाड़ू न देने के कारण इसको दुःख हुआ है। जीवन से दुःखित हो रहा है, वृक्षों के कांटों ने हाथ पांओं ज़ख़्मी कर रक्खे हैं और जङ्गली पशु भयानक बोलियां बोल कर डरा रहे हैं ! भूख प्यास दुःख दे रहा है, अब कोई दम

की पाहुनी है और इसी गढ़े में तड़प २ कर मर जायगी, और शरीर को भी वन के पशु पत्ती खा जायेंगे।

हाय! इस पद के मुख से निकलते ही अञ्जना व्याकुल हो गिर पड़ी। वह देखिये कैसे हाथ पांव फैलाये बेसुध पड़ी है, और बायें ओर बसन्तमाला बैठी रो रही है !!

"बसन्तमाला—क्या हुआ? क्यों कुछ आशा है कि बस समाप्ती होगई !! हाय एक हाथ में तो नाड़ी की क्रीड़ा देख रही है, दूसरा मुख के समीप रख ठण्डे और गरम श्वांस की परीक्षा कर रही है !! मन को कुछ धैर्य आया तो ऊँचे स्वर से बोली! अञ्जनो! क्यों घबरा गई? (शिर हिला कर) सखी! मुख से तो बोल !! आह! इस समय एक ठण्डो श्वांस उस मूर्छित शरीर से निकली और साथ ही यह कहती सुनाई दी। स्वामी जी यदि आप अपने माता पिता को मिल कर जाते तो आज का दिन मुझको देखना न पड़ता। हाय! कैसी अभागी हूं कि भले प्रकार आपका दर्शन भी न हुआ, और दुःख का पर्वत टूट पड़ा। आशा थी कि आपके दर्शन होने से यह सब कष्ट भूल जाऊंगी, और वह कलंक जो मेरे ऊपर झूठा लगाया गया है दूर हो जावेगा। आह! मन की बातें मन ही में रहीं, और यमराज का संदेशा आ पहुंचा! अब कोई उपाय यहां से निकलने का दिखाई नहीं देता! हां मन को इतना धैर्य है कि यदि लोग कुछ ही क्यों न विचार करें, परन्तु आपको तो भले प्रकार विदित है कि जिस बात का मुझ पर दोष लगाया है सर्वथा झूठ और मिथ्या है"।

यह कहा और ठण्डी स्वांस ले चुप होगई। बसन्तमाला कुछ कहने ही को थी कि आंधी जोर से चलने लगी और कड़ कड़ का शब्द सुनाई दिया। और कुछ भारी वस्तु उस गढ़ में गिरी। बसन्तमाला के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि सिंह कूदा है यह सोच कर वह तो अंजना के साथ लिपट गई और बड़ आश्चर्य से उस ओर देखने लगी। जब बिजली का चमत्कार पड़ा तो बसन्तमाला की सब आश्चर्यता जाती रही और ज़ोर से बोल उठी "अंजना! देख उस परमात्मा की महिमा कैसी निराली है, जिसको मैं सिंह समझे बैठी थी वह तो एक वृक्ष की डाल है"। यह कहा और अंजना का हाथ पकड़ बड़ी नम्रता से दोनों ने ऊपर आ ईश्वर का धन्यवाद किया और ए लो बादल भी फटने लग गये हैं उजाला भी अन्धकार को हटाये चला जाता है, और यह दोनों आगे को पग उठाये चली जाती है, थोड़ी सी दूर जाने पर एक दीपक जलता दिखाई दिया। जिसको उन्हों ने अपना सहायक बना उसी ओर का रास्ता लिया है और अब कैसी शीघ्रता से जा रही हैं।

द्वादश अध्याय

हाय यह क्या भेद है ?

रा

मनाथ के उत्तर में अभी एक जहाज़ ने लंगर किया है। जिस में से बहुत से सिपाही सैनिक वस्त्र धारण किये उतर रहे हैं। परन्तु एक युवक जो सबसे पहिले बड़े आन बान से उतरा है हाथ में छड़ी को घुमाता हुआ जहाज की ओर देख रहा है, मानों इन सब की बाट निहार रहा है।

इसके राजवत वस्त्र धनाढयों का सा ढंग और सज धज बतला रही है कि अवश्य यह कोई अफ़सर अथवा राज पुत्र है।

जब सब उतर चुके तो उन में से एक पदाधिकारी ढाल हाथ में लिये आया जिसको एक युवक अफसर कह रहा है।

वही अफ़सर—देखो हम मन्त्री को लेकर आगे चलते हैं सावधानी के साथ सेना को लेकर पड़ाव दर पड़ाव आना।

यह कह कर घोड़े पर सवार होगया, पहिले तो इसने घोड़े को सरपट डाल दिया, परन्तु तत्पश्चात न जाने क्या सोचकर बाग इतने ज़ोर से खेंच ली है कि घोड़े की गरदन भी दोहरी हुई जाती है, और यह रोके चला जाता है। यद्यपि इस का घोड़ा बहुत चाहता है कि अपनी शीघ्र गति के कर्तव्य दिखाये, परन्तु यह अफ़सर उनको इस बात की आज्ञा ही नहीं देता, और सिर झुकाये दिल ही दिल में कहने लग जाता है, हाय ! आज रात कैसा भयभीत स्वप्न देखा है ईश्वर करे यह झूठ हो।

उस प्राणप्यारी को तो मैंने अभी भले प्रकार देखा भी नहीं (स्वयं ही) कहीं वही बात तो नहीं हुई जिस से वह डरती थी ? नहीं ! नहीं ! मैं समझ गया जिस समय मैं चलने को था उसने कहा था कि मैं गर्भ की आशा रखती हूं सम्भव है कि अब वह प्रसूता होने के कारण दुःख में हो (घोड़े को रोक कर कुछ काल सोचने पश्चात) निस्संदेह ! यही ठीक होगा प्रसूता स्त्री को इस समय बहुत कष्ट उठाना पड़ता है, (फिर कुछ सोच कर) एं ! इस बात को तो डेढ़ वर्ष व्यतीत होगया है यदि प्रिया जी का विचार सत्य था और ईश्वर करे कि ऐसा ही हो तो इस समय बालक भी सात आठ मास का होगया होगा, (थोड़े मौन पश्चात) अब यह क्या भेद है कुछ समझ में नहीं आता। यह कहा और ठण्डे स्वास ले सोचता हुआ शनैः शनैः घोड़े को रोके जा रहा है।

पाठकगण ! आप समझ तो गये होंगे कि यह अफ़सर पवन ही हैं जो लंका से लौट कर आया है। इस की यह दशा देख मन्त्री आश्चर्य हो बोला।

मन्त्री–महाराज ! ऐसा कौनसा वक्र विचार उत्पन्न हुआ है कि जिसने चलते २ ऐसा चिन्तित कर दिया कि घोड़े को थाम कर सोचना पड़ा क्या कुशल तो है ?

पवन–क्या बताऊं, बहुतेरा सोचता हूं पर विधाता के लेख समान कुछ समझ में नहीं आता, कि क्या भेद है !

मन्त्री–यदि कोई गुप्त बात न हो तो इस दास को भी इस से सूचित कर दीजिये ।

पवन–हाय ! क्या कहूं उस दृश्य (सीन) को जो कल रात स्वप्न में देखा कथन करने से कलेजा मुंह को आता है, अञ्जनादेवी अति व्याकुल हो धरती पर मूर्छित पड़ी है और रो रो कर कह रही है, " हे प्राण प्यारे ! तेरी दासी अब कोई घड़ी की पांहुनी है, अब कृपा करके दर्शन दो जिस से यह आशा दिल में न रह जाय कि अन्तकाल में आपका दर्शन न हुआ" हाय ! जिस समय से यह स्वप्न देखा है सहस्रों प्रकार की कल्पनायें उत्पन्न हों मानों बिना जल के समान तड़पा रहीं हैं, और कुछ समझ में नहीं आता कि क्या भेद है ।

मन्त्री–निस्संदेह ! ठीक ! आपका चिंता में होना व्यर्थ नहीं । वास्तव में यह भयभीत स्वप्न हैं, आपके मुखारविन्द से सुनकर मेरा हृदय भी कांप उठा है, पर इन स्वप्नों का विश्वास भी कुछ नहीं ।

पवन–यह तो मैं भी जानता हूं, कि इनका भरोसा कुछ नहीं । पर दिल को चैन नहीं आता, जब तक कि स्वयं उसको देख नहीं लेता धैर्य नहीं आता ।

यह कहा और घोड़ों को सरपट डाल पड़ाव २ चलते यह रत्नपुर पहुंचे।

जब पवन ने अञ्जना के भवन को बन्द पाया तो दिल में विचार आया कि बालक के उत्पन्न होने के कारण माता उस का पृथक रखना उचित न जानकर अपने भवन में लेगई होगी, कुछ विचार करके ! अवश्य ऐसा ही हुआ होगा। भला चिरकाल पश्चात उसको यह शुभ दिन मिला, यहां क्योंकर रहने देती थी।

यह कहा और भवन में आते ही रानी केतुमति (माता) के पाओंपर जो किसी विचार की धुन में सिर झुकाये बैठी कुछ सोच रही थी। शिर को रखा, पहिले तो वह झिझक गई पर पश्चात पवन को देख गद् गद् हो मस्तक चूमा और कलेजे से लगा ईश्वर का धन्यवाद किया और बोली।

रानी—पुत्र तेरे वियोग में परमेश्वर जानता है जो हमारी दशा हुई है, दिन रात तेरा कथन मेरी ही चिन्ता दिलको सता रही थी, हर समय तेरा ही स्मरण था ईश्वर का धन्यवाद है जो आज तेरा मुख देखा ! कलेजा ठण्डा हुआ, दिल की चिन्तायें दूर हुईं। कहो तुम क्या इस समय तक लंका में ही रहे ?

पवन—माता जी क्या कहूं जब खर और दूषण को छोड़ा लंका में लौट आये तो भीलों ने झगड़ा आरम्भ कर दिया उधर से छुटकारा हुआ तो और ही बखेड़े पड़ गये, संक्षेपतः इसी हेर फेर में डेढ़ वर्ष बीत गया।

देखने को तो पवन अपनी माता के प्रश्नों का उत्तर शीघ्र शीघ्र दे रहा है परन्तु उसका घबराया हुआ दिल दिली मनोरथों

को अन्दर बन्द कर आंखों से काम ले रहा है । बहुतेरा इधर उधर देखता है पर अंजना और बसन्तमाला को अब तक न देखकर बेचैन हुआ जाता है, और शीघ्रता से अपने दिल को सम्भाल कर माता के प्रश्नों का उत्तर दे रहा है, थोड़े काल पश्चात रानी उठकर दूसरे कमरे में गई तो पवन ने उस समय को दुर्लभ जान दासी से पूछा ।

पवन—प्रिया जी तथा बसन्तमाला कहां हैं । जरा उनको भी समाचार देदो ।

दासी—(ठण्डा स्वास ले शिर झुका चुप) ।

पवन—(आश्चर्य से उसकी ओर देख कर) क्यों ! कुशल तो है ?

दासी—(भरभराते स्वर में) महाराज ! उनको तो एक वर्ष हुआ है कि यहां से—

आह ! इस बात को सुन कर पवन आश्चर्यवत रह गया, दिल धड़का, कलेजा फड़का, शरीर में सनसनाहट उत्पन्न हो गई । आंखें दासी की ओर देखते २ पथरा गईं, लहु जहां उबल रहा था बरफ के समान वहीं जम गया, दासी उसकी ऐसी चिन्तित दशा देख घबड़ा गई और भाग कर रानी को इस बात से सूचित किया ।

दासी से पवन का वृत्तांत सुन कर रानी के दिल में विचार आया, कदाचित पवन ने दासी की बात समझी नहीं । और असल भेद को उसने जाना नहीं । इस कारण चिन्ता में पड़ गया है, यह सोच ! आकर कहने लगी :—

रानी—बेटा ! क्यों सिर झुकाये बैठा है, मैंने तो जान बूझ कर पहिले ही इसी कारण प्रगट नहीं किया था कि सुन कर तुझ को क्लेश न हो। दिल में कुछ विचार न हो, उस निर्लज्ज ने तो हमारी कीर्ति का कुछ भी ध्यान न किया, लज्जा को हटा अन्य पुरुषों से जब पूछा तो तेरी अंगूठी दिखा मुझ को भरमाने लगी। कई प्रकार की बात बना परचाने लगी, पर मैंने उसी समय पातकी रथ में बिठा नगर से निकाल दिया, दूसरों के आक्षेप से अपनी कीर्ति को बचा लिया, बेटा इस बात की चिन्ता न कर, अच्छा हुआ जो समय पर सूचना हो गई अब यहां से महेन्द्रपुर गई है।

पाठकगण ! पवन जी दासी की बात जिसको दुःख का संदेसा कहा जावे तो अनुचित न होगा सुन कर व्याकुल हो ही रहा था अब रानी के मुख से यह बातें निकल २ कर उस के दुःखित दिल पर तीक्ष्ण नश्तर का काम दे रहीं हैं दुःख और कष्ट इसके शरीर में घुसने लग गया है, मन व्याकुल हो रहे थे, मस्तक चक्कर खा रहा है, ऐसी बातें सुन कर अत्रन शक्ति उड़ गई है, दिल निर्बल हो रहा है, और नीचे बैठा जा रहा है, आशायें टूटी हुई सन्मुख आ खड़ी हुई, उधर व्याकुल चित्त ने अंजना को भयभीत दुखित मूर्ति जो स्वप्न में देखी थी शीघ्रता से आगे रख दी है जिसको देखते ही सारा शरीर कांप उठा और शोक का धुआं रल की भाफ के समान कलेजे से निकल कर सिर को चढ़ा तो उठ खड़ा हुआ और अति शोकमय स्वर में कहा:—

मिथ्या है सब बात नहीं सांच रती एक।

दुःख का कारण तु भई ईश्वर राखे टेक ॥
तीन दिवस तक मैं रहा कहती रही कर जोड़ ।
मात पिता से तुम मिलो शंका करे न और ॥
समय जो मिला न कुछ मुझे गया युद्ध तत्काल ।
निश्चय कारण आपके कर भूषण दिया निकाल ॥
हुआ निष्फल मेरा यत्न धूल मिलाया नाम ।
दुख दिया उसे अति घना आप हुई बदनाम ॥
हाय डरती थी जिस बात से वही बना संयोग ।
राय महेन्द्र की सुता तुझे मिला दुख अयोग ॥

हाय ! क्या २ आशायें थीं; पर आज सब धूल में मिल गईं; (बाहर की ओर देख कर) हाय ! उस निरअपराध को जो दुःख पहुंचा यह सब मेरे ही कारण, (माता की ओर देख कर) हाय माता, तू कैसी कठोर हृदय है तुझको तनिक भी दया न आई, यह कहा और ठण्डे स्वांस लेकर मन्त्री को साथ ले वहां से अंजना की खोज में निकल पड़ा ।

त्रियोदश अध्याय

शूरवीरता में कम न होगा।

प्रातः काल का समय है। सूर्य उदय हो रहा है उसकी लाल पीत किरणें पशुमुखा बन के ऊंचे वृक्षों पर पड़ इनके जीवन को बहार दिखला रही हैं और पक्षी गण उड़ २ कर वृक्षों की टहनियों पर बैठ प्रसन्नता से चहचहाते हुए अपनी चोंचों से परों को सुथरा कर रहे हैं, पंजे फैला २ कर अंगड़ाईयां ले रहे हैं और कई उड़ २ कर अपने आहार की खोज में जा रहे हैं। परन्तु गिद्धनी एक पीपल की ऊंची चोटी पर बैठी हुई गर्दन फेंक २ कर इधर उधर अपने आहार की ढूंड कर रही है। और अंजना देवी एक कुटिया के बाहिर जो एक पर्वत की सम भूमि पर है और जिसके चारों ओर वन ही वन दिखाई देता है बैठी हुई अपने दायें हाथ को उलटा पलटा कर कुछ सोचती हुई इधर बड़े अचम्भे से देख रही है, इसके मुख की अति उदासीनता से प्रतीत हो रहा है कि यह किसी वस्तु के खोये जाने के

कारण ऐसी आश्चर्यता में है और यह ठीक है, सुनिये बसंत-माला से कह रही है ।

अंजनी—बसन्ती ! कहीं अंगूठी तो नहीं देखी ?

बसन्तमाला—(आश्चर्य से) ऐं ! कौनसी ?

अंजना—वही जो स्वामी जी दे गये थे ! और कौन ?

बसन्तमाला—वह तो तुम्हारे हाथ में थी क्यों, नहीं मिलती ?

अञ्जना—हाय ! यह क्या हुआ वही एक जीवन का सहारा था, उसी को देखकर कुछ धैर्यता होती थी, उसका खोया जाना मेरी सारी आशाओं का खोया जाना है. अब क्या करूं ।

यह सुन कर बसन्तमाला बड़ी उदास हो चिरकाल तक खड़ी सोचती रही तत्पश्चात कहने लगी । रात को कहीं इधर उधर गिर गई होगी आओ खोज तो करें ।

यह कहा और दोनों दूर तक सिर झुकाये हुए देखती हुई चली गईं, झुकते २ कमरें थक गईं वरन लकड़ी के समान अकड़ गईं परन्तु अंगूठी का कुछ पता न मिला। तब निराश हो लौट कर उस कुटिया को आईं । अञ्जना ठंडा स्वांस ले कहने लगी । हाय वाहरी प्रारब्ध वाहरे लेख ! यही सहारा था वह भी जाता रहा ! यह कहा और उच्च स्वर से रोने लग पड़ी ।

ज्यूं हीं उसके रोने की आवाज साधू ने सुनी जो इस कुटिया में ईश्वर के ध्यान में मग्न बैठा था झट बाहर निकल आया । हा ! हा ! इस जटा जूट लम्बे श्वेत दाढ़ी वाले साधू को देखते ही अञ्जना देवी हैरान सी रह गई और बड़े आश्चर्य से एक

बार उसकी ओर दृष्टि कर नीचे सिर झुका सोच में पड़ गई तब ऋषि ने कहाः—

साधू–बेटी ! कुछ चिन्ता न करो केवल इतना बतलादो कि तुम कौन हो, और इस सुनसान उजाड़ बनमें क्यों कर आना हुआ।

अञ्जनादेवी उसकी पितावत मीठी मीठी बातें सुन हाथ जोड़ कर बोली।

राजा महेन्द्र नगर का राय महेन्द्र नाम।
ता राजा की मैं सुता अञ्जनी मेरा नाम ॥
प्रहलाद विद्याधर सुसर पवन नाम भर्तार।
नाम नगर है रत्नपुर सास दिया निकार ॥
कलंक लगायो अति बुरा कर न सकूं बखान।
बिपत काल फिरूं काटती आई तव स्थान ॥
पिता कहुं सत्य आप से हूं निरदोषन नार।
निश्चय सब हो जायगा जब घर आवें भर्तार ॥

अञ्जना के दुख सुन कर साधू के दिल में दया आई, ग्रह गति को बुरा भला कह सहायक वन कहने लगा।

साधू—बेटी कुछ चिन्ता न करो जब तक दिल चाहे यहाँ निश्चिन्त रहो पर हां इतना अवश्य होगा कि बन के फलों के अतिरिक्त यहां और कुछ प्राप्त न होगा।

पाठकगण ! अञ्जना ने इस बात को दुर्लभजान साधूका धन्यवाद किया और वहां रह अपने विपत के दिन काटने लगी।

जब अंजना देवी को यहां रहते कुछ काल व्यतीत हुआ तो प्रसूत काल भी आगया और इसी कुटिया में हमारे जनरल बहादुर ने जन्म लिया।

चैत्र मास बदि अष्टमी पुष्प नक्षत्र जान !
दिन मंगल परभात को जन्म लिया हनुमान ॥
काले केश सुहावते मस्तक चंद्र समान ॥
बड़ा पराक्रमी भासता नैन मृग सम जान ॥
देख अञ्जना बारम्बार मुख प्रभु का करती ध्यान।
कठिन समय सहायता कर इसकी भगवान ॥
कोई नहीं बिन आपके हो जिसका मुझको मान।
दास हूं तेरे द्वार की दीन बन्धू भगवान ॥

हम अपने पाठकगण के अवलोकनार्थ हनुमान जी की जन्म कुण्डली जो इस साधु ने तयार की थी उसे नीचे लिखते हैं।
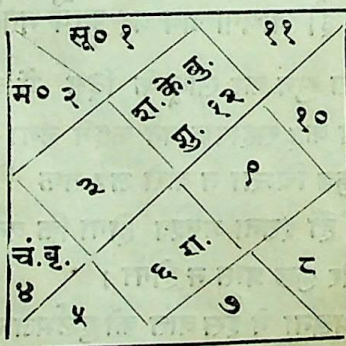
इस जन्म कुंडली को भोजपत्र पर लिखकर साधू चिर-काल से देख रहा है, कभी तो ज्योतिष के ग्रन्थों पर दृष्टि डाल लेता है, और कभी दिल ही दिल में सोचने लग जाता है। जब इसी प्रकार करते कुछ काल व्यतीत होगया तो वसन्तमाला ने विनती करके कहा।

वसन्तमाला—महाराज मुझ को भी कुछ बताइये।

साधू—(प्रसन्न होकर) बेटी यद्यपि अंजना का दुःख देख मुझ को भी कष्ट होरहा है, और कई प्रकार की कल्पनायें उत्पन्न हो रही हैं, परन्तु इस होनहार बालक की कुंडली देख उससे बढ़कर आनन्द होरहा है। यह बालक महावीर होगा वीरता में सिंह को पछाड़ेगा, विद्या में निपुण हो धर्म्म के पालन में दृढ़ रहेगा अपने बेगानों की दृष्टि में प्रिय, पाखण्डी और अधर्मियों के वास्ते काल का दूत होगा संक्षेपतः जो गुण इस में पाता हूं एक से एक उच्च देखता हूं, ईश्वर इस की आयु दीर्घ करें।

बसन्तमाला साधू की बातें सुनकर शीघ्र से अंजनादेवी के पास गई और सारा वृत्तान्त उसको कह सुनाया, जिस को सुनकर उस का वह मुख जो चिरकाल के दुख और कष्टके कारण हंसना भी भूल गया था इस समय कुछ खिला हुआ दीख रहा है, और बालक की ओर देख २ कर दिल में कह रही है।

वह दिन कब प्रभु आयगा जब घर आवन भर्तार।
नाम कर्ण करूं कर खुशी गाकर मंगलाचार।

करें सभी वह हित मुझे जो करते धिक्कार ।
लोगन माहीं ऊजली कब करयो कर्तार ॥

बालक को देख २ कर कई प्रकार की कल्पनायें उत्पन्न हो, आंखों से आंसू निकल पड़े तो बसन्तमाला ने कहा।

बसन्तमाला-सखी ! मैं बड़े आश्चर्य में हूं कि तू इतनी बुद्धिमान होकर भी नहीं सोचती कि तेरा इस समय शोकातुर होना क्या फल लायेगा। क्या इस का प्रभाव दूध पर पड़ कर बालक के वास्ते हानिकारक न होगा । हाय ! सत्य है हाथी के दांत खाने के और तथा दिखाने के और। प्यारी! क्या तू अपने वचन को भूल गई जो प्रायः कहा करती थी कि जो दुःख सुख शरीर का भोग जान ईश्वर पर भरोसा रखता है वही संसार में प्रसन्न रहता है ।

अंजना—बसंत ! मैं सब कुछ जानती हूं, बहुतेरा यत्न कर व्याकुल दिल को संभालती हूं पर क्या करूं यह मेरे बस में नहीं रहता।

आह ! जिस समय यह बालक धरती पर लेटे २ अपने आप कभी हाथ पाओं को फैला और कभी समेट कर नाक मुंह चढ़ा रोने लग जाता है तो अंजना इसकी इस अनाथ दशा में घास के बिछौने पर लेटा देख बेचैन हो शीघ्र ही गोद में ले लेती है। जब इसी प्रकार ग्यारह मास व्यतीत हो गये तो एक दिन दोपहर के समय वर्षा हो रही है, और अंजना देवी बालक को लिये कुटिया में न जाने क्या कर रही है, जो

एक ही स्थान में बैठे कुछ तंग होगया है, जो जोर से चिल्ला २ कर रो रहा है। यद्यपि अंजना खड़ी हो और इधर उधर टहल कर भी उसको बहलाती है परन्तु यह बालक रो ही रहा है।

वर्णी धर्मी तो बालक को लेकर कुटिया के बाहर आ खड़ी हुई, और उन जंगली वृक्षों तथा स्वयं उत्पन्न हुए पौदों को जो कुटिया के इरद गिरद दूर तक फैले हुए दिखाई देते हैं, उंगली के इशारे से बालक को दिखा उस का दिल बहला रही है। आह इन स्वयं उत्पन्न हुये पौदों के रंग बिरंगे के फूलों और हरियावली के लुभावने दृश्य को देख अञ्जना को अपने उद्यान की शोभा जो बालकपन में क्रीड़ा के समय देखा करती थी याद आगई, आंखों से आंसू बह निकले और चित्त में कई प्रकार की कल्पनायें उत्पन्न हो कर निर्बल करने लगीं, तब उसने साहस के साथ आन्तिरिक वेदनाओं को रोक कर उधर से दृष्टि को हटा अकाश का श्याम वर्ण और उस में भिन्न २ बादलों के टुकड़ों को देखना आरंभ कर दिया है, जिनको वायु ने छोटे बालकों के समान अपना खिलौना बना रखा है, कभी तो वह टुकड़े मिल कर एक हो जाते हैं, और कभी वायु का एक झोंका लगने से पृथक् पृथक् दीख पड़ते हैं, हां बड़े २ बादल वायु के लगने से हाथी और घोड़ों के आकार में हो जाते हैं गिद्ध उड़ते २ ऐसे ऊंचे चले गये हैं, कि काली टिकिया के बिना कुछ प्रतीत भी नहीं होता, परन्तु जब वह श्वेत बादलों के नीचे आजाते हैं तो मानों बादलों के साथ जुड़ जाते हैं।

इसी प्रकार अञ्जनादेवी मन बहला रही थी कि अकस्मात एक चमकीली वस्तु जो सूर्य के सदृश प्रतीत होती है, इस ओर को आती हुई दिखाई दी। टिक टिकी बांध देखती रही, पश्चात् ज्ञात हुआ कि कोई विमान आ रहा है, तब यह शीघ्र ही वहीं बैठ गई और सिर नीचे झुका लिया परन्तु इस को बैठे देख बालक चिल्ला उठा और ऊंचे स्वर से रोने लग पड़ा।

पाठकगण ! इस विमान में एक पुरुष श्वेत डाढ़ी उत्तम श्वस्त्र धारण किये एक स्त्री से बातें करता हुआ आ रहा था, कि अचानक उस की दृष्टि अञ्जना पर पड़ी और बालक के रोने की आवाज़ कानों में पहुंची, न जाने इसके मन में क्या विचार आया कि विमान को थाम कर अपने साथ बैठी स्त्री से कह रहा है।

वही पुरुष-प्रिया जी ! आपने कुछ देखा ?

स्त्री-नहीं ! स्वामी जी मैंने कुछ नहीं देखा ! क्या है ?

वही पुरुष--(उंगली के इशारे से) वह देखो कुटिया के आगे एक स्त्री सिर झुकाये शोकातुर मूर्ति बनी बैठी है, और कदाचित वह उसका बालक है जो पास ही बैठा रो रहा है।

स्त्री—(गरदन फेर कर पीछे को देख कर) हां (बे परवाही से) किसी साधू की बेटी होगी ! पें ! इस के काले वस्त्र क्यों हैं ?

वही पुरुष--इसी बात को तो मैं सोच रहा हूं, यदि साधू की बेटी होती तो ऐसे काले वस्त्र कदापि न पहनती, इस में

अवश्य कुछ भेद है। यह कह कर विमान को वृक्षों की आड़ में धरती पर उतारा और आप अंजना के पास जाकर बोला।

वही पुरुष--देवी! तू कौन है और इस सुनसान उजाड़ बन में क्यों रहती है?

अंजनादेवी--अपने ही ध्यान में सिर झुकाये बैठी कुछ सोच रही थी इस अकस्मात शब्द को सुनते ही चौंक पड़ी और शीघ्रता से सिर उठा ऊपर की ओर देखा, तो तत्काल उसके गले से लिपट फूट २ कर रोने लग पड़ी, यह पुरुष भी इस के मुखको देखकर संदेह में पड़ गया है, और बहुतेरा दिल में सोचता है पर कुछ समझ में नहीं आता कि यह कौन है और क्यों रो रही है। अन्त में जब कुछ काल इसी प्रकार व्यतीत हुआ तो धैर्य की बातें कर प्यार दिलासा दे बड़ी कठिनता से इसको अपने शरीर से पृथक किया, यूं ही उसके मुखको गूढ़ दृष्टिसे देखा, आवाज को भले प्रकार पहचाना तो आपे से बाहर हो बोला।

वही पुरुष--(अचम्भे से) एं! अंजना! तू कहां! आहा! किसी ने सत्य कहा है।

बहती नदिया थल करे थलों करे दरिया।

न जाने ईश्वर पलक में करे क्या का क्या॥

पाठकगण! देखिये ईश्वर की महिमा कि दैवात अंजना का मामा राजा प्रति सूर्य अपनी स्त्री रविसुन्दरी को साथ लिये सैर करता हुआ यहां आगया है, पहिले तो अंजनादेवी

को इस दशा में देख पहचान नहीं सका, पर जब उसने पहचान कर यह कहा कि अंजना तू कहां ! आह ! तब तो अंजना और भी ऊंचे स्वर से फूट २ कर रो पड़ी, और कुछ उत्तर न दे सकी तो राजा भी आंसू भर कहने लगा।

राजा प्रति सूर्य—बेटी क्यों रो रो कर व्याकुल होती है। अब कुछ चिन्ता न करो, और यह कहो कि इस स्थान में तेरा आना क्योंकर हुआ और यह काले वस्त्र क्यों धारण किये।

यद्यपि अंजना कुछ कहना चाहती है पर रो रो कर हिचकी बंध जाने से इसकी बात भले प्रकार समझ में नहीं आती, परन्तु वसन्तमाला जो अंजना के रोने का शब्द सुन कर आ गई है, और राजा को इसके दुःख की कथा सुना रही है, देखिये ? वसन्तमाला के मुख से एक २ शब्द निकल कर राजा को शोकातुर बना रही है, कभी अंजना की ओर दृष्टि करके देखता है और कभी फिर शिर झुकाये सुनने लग जाता है, शोक ! जिस समय वसन्तमाला ने यह कहा कि इसकी माता ने भी प्रह्लाद विद्याधर की बात पर निश्चय कर सत्य और झूठ का कुछ भी निर्णय न किया, और इसको नगर से निकाल दिया, उस समय राजा के शरीर में सन्नाटा सा छा गया, मुख कोप से लाल होगया, अधिक सुनने की शक्ति न रखकर अंजना को गले से लगाकर बोला।

राजा--अंजना अब कुछ चिंता न कर, जो समय बीत गया उसके लिये तो मैं कुछ नहीं कर सकता, हां आगे को कोई भी तुम्हारी ओर वक्र दृष्टि करके नहीं देख सकता।

यह कहा ! अंजना और बसन्तमाला को साथ ले रानी रविसुन्दरी के पास आया और उसको इसके शोकमय वृत्तान्त से ज्ञात कर विमान में में बैठ वहां से चल पड़ा।

आहा ! विमान को देखिये नौका समान इसका आकार है; एक ओर कला कौशल की सामग्री है, दूसरी ओर एक प्रकार का तम्बू लगा है जिसके चारों ओर स्वर्ण का काम इस सुन्दरता से किया हुआ है कि सूर्य्य के उजाले में इसकी ओर देखना कठिन है, इस पर कारीगर ने मोतियों की झालर बना और इन में थोड़ी २ दूरी पर एक सोने का बनावटी मोती गेंद के बराबर इस ढंग से लगाया हुआ है कि जैसे इसकी गति तीक्ष्ण होती जाती है, वैसे ही इनकी चमक दमक अधिक सुन्दर प्रतीत होती है।

यूं ही अंजना के पुत्र की दृष्टि इन चमकीले बनावटी मोतियों पर पड़ी वेवस गोदी से उछला * और इन को पकड़ना चाहा पर सामर्थ न हुआ और नीचे धरती पर गिर पड़ा।

---

*--यह जो एक सर्व साधारण में प्रसिद्ध है कि हनुमान ने उत्पन्न होते ही सूर्य्य को उछल कर पकड़ा और इस विचार से कि यह खाने का एक लाल फल है मूंह में डाल लिया।

पाठकगण ! वास्तव में न तो कोई फल था और न ही सूर्य्य था वरन इसी विमान के चमकीले सुन्दर बनावटी मोती थे जिनको कवियों ने सूर्य्य से उपमा दी थी और पश्चात् टीकाकारों ने असल विषय को भुला सूर्य्य ही बना लिया (देखो अंजना सतवन्ती रास पृष्ट ३४)

आहा ! बालक को गिरता देख सब चिल्ला उठे यद्यपि उसी क्षण विमान को रोका गया, तथापि अंतर बहुत हो गया इस कारण विमान को पीछे लौटा धरती पर उतारा, राजा तो बालक को खोज में चला गया और तीनों शोकातुर हो उस ओर देख रही हैं जिस ओर वह गया है। और बुरे बुरे विचार उत्पन्न हो इनके व्याकुल दिल को चुटकियां ले भय-भीत कर रहे हैं, कि इतने में राजा बालक को लेकर लौट आया और बोला।

राजा--अंजना ! तेरे पुत्र का शरीर तो * वज्र के समान ठोस है, कि इतनी दूर से गिरा और गिरा भी पत्थर की चट्टान पर। ईश्वर का धन्यवाद है कि जब मैं गया तो वह बैठा अंगूठा चूस रहा था, और मुझको देखते ही दोनों हाथ पसार रोने लग पड़ा। राजा की बातें सुन और बालक को देख सबकी जान में जान आई और रानी रत्निसुन्दरी ने शीघ्र से बालक को राजा से लेकर छाती से लगाया और माथा चूम कर कहने लगी "बेटा बजरंगी कहां की सैर की" तब से इसको सब कोई बजरंगी कहने लग पड़े और विमान वहां से आगे को चला।

पाठक गण ! अंजनादेवी तो मामा के हनुमानपुर को जा रही है, और पवन विचारा न जाने कहां भटक रहा है आओ जरा उसका भी तो पता लें।

* जिसका शरीर पत्थर के समान ठोस हो।

चतुर्दश अध्याय

एक क्षण भर में इसको क्या होगया ?

जा महेन्द्रराय के भवन में अभी एक पुरुष उत्तम वस्त्र धारण किये छड़ी हाथ में लिये चौकी पर आकर बैठा है, और रानी वेगमोहिनी उसका माथा चूम सन्मुख खड़ी कुशल क्षेम पूछ रही है, पर इसकी झुकी हुई गरदन दबी हुई दृष्टि और इसका नये आये हुए पुरुष को देख कर ठंडे स्वास लेना बतला रहा है कि इस के आने से रानी के दिल को कड़ी चोट लगी है, और निःसन्देह यही ठीक प्रतीत होता है, देखिये कैसे शनैः शनैः पग धरती हुई अब अपने कमरे को जा रही है और दिल में यह विचार उत्पन्न हो इसको और भी जाने पर जोर दे रहे हैं। आह ! जब वह अंजना का हाल पूछेगा तो क्या बताऊंगी। शोक ! उसने तो मुझको कहीं का न रक्खा, यदि मर जाती तो अच्छा होता। इसके सन्मुख शिर तो नीचा न करना पड़ता ! ऐ ! धरती माता तू फट जा कि मैं तुझमें समाजाऊं, ताकि अंजना का वृत्तान्त सुनाने का समय न आवे। पाठक गण ! यह तो

दिल में इस प्रकार कहती हुई जाकर पलंग पर लेट गई है, परन्तु वह नया आया पुरुष जो पवन ही है अञ्जना की खोज करता २ यहां आगया है, रानी की यह हालत देख अति अचम्भित होगया और अब बड़ी अधीरता से इधर उधर देख रहा है, परन्तु अञ्जना को न पाकर इसका व्याकुल दिल और भी बेचैन होता जाता है, इस विषय में बहुत विचार करता है कि क्या भेद है, जो वह (अञ्जना) दिखाई नहीं देती, परन्तु विधाता के लेख समान जब कुछ समझ में न आया, तो घबरा कर वहां से उठना चाहा कि इतने में प्रसन्नकीर्ति का पुत्र सन्मुख आता हुआ दृष्टि पड़ा। शीघ्र से पकड़ गोदी में बैठा लिया और पूछने लगा।

पवन—बेटा तेरी बूआ कहां है।

लड़का--(आश्चर्यमय होकर) ऐं बुआ ! सुना है वह तो रोती हुई यहां से पशुमुखा बन को चली गई थी, यहां तो केवल थोड़े काल खड़ी २ रोती रही, पश्चात दादी ने क्रुद्ध होकर बाहर निकाल दिया था।

आह ! इस बात को सुनते ही पवन का रंग उड़ गया, दिल की आशायें टूट गईं, पशुमुखा के नाम ने उसकी प्रत्येक इन्द्री को उसके दिल के समान निर्बल कर दिया, अब यह कहे तो क्या कहे करे तो क्या करे, बहुतेरा दिलको सम्भालता है, पर वह किसी प्रकार सम्भलता ही नहीं और बेबस हुआ जाता है, आंखों के आगे सरसों फूली जा रही है और यह देखता का देखता रह जाता है।

जब कुछ काल इस प्रकार व्यतीत हुआ तो फिर मस्तक में खुजली सी उत्पन्न हुई जिसने बिजली के समान इसकी नाड़ियों को आकर्षित कर मौनता को तोड़ जिव्हा को खोल दिया। हाय ! मुझ से कैसी भूल हुई मेरे ही कारण प्राण प्यारी पर दुःख का पर्वत टूट पड़ा, (अञ्जना के माता की ओर इशारा करके) तुम ही कुछ सोचतीं, उसको दशा पर त्रास खातीं, तुम्हारी तो सन्तान थी, पर तुम सबसे अधिक निर्दयी और निष्प्रिय निकलीं जो उसकी इस दशा पर भी कुछ ध्यान न किया, शोक ! कैसा लहू श्वेत होगया, दया तो संसार से उठ ही गई (कुछ मौन पश्चात) प्यारी अञ्जना ! तू किन दुःखों में फंस गई ! जिन पर तेरी आशायें थीं वह तेरे वैरी बन गये, तो शोक निवर्तक कौन होता ? शोक ! तेरे नन्हें से दिल ने ऐसी अपमान की बातें क्योंकर सहन की होंगी तू ऐसी चतुर, विद्वान, धर्म में दृढ़, सुन्दरता तथा स्वच्छ स्वभाव में अद्वितीय, पर शोक तेरी प्रारब्ध ने इन सब को धूल में मिला दिया, पवन की यह बातें सुन कर एक दासी ने रानी से जाकर कहा।

दासी--माता जी ! आप किस चिंता में पड़ी हैं किस बात को सोच रही हैं जरा बाहर चल कर पवन जी की बातें तो सुनिये क्या कह रहे हैं।

रानी--(शोक से) वही अञ्जना की शिकायत करते होंगे।

दासी--जी नहीं, वह तो सर्वथा झूठ और मिथ्या ठहराते

हैं और अञ्जना को निर्दोष और अपने आप पर निर्दयता का दोष लगाते हैं।

रानी--(ठंडा श्वास लेकर) हाय ! ऐसे भाग कहां !!

दासी--ज़रा चल कर तो सुनिये !

रानी शीघ्रता से उठकर दालान की ओर आई, ज्यों ही पवन की आवाज कान में पहुंची, वहीं खड़ी हो गई जब वह कह चुका तब आगे बढ़कर बोली।

रानी--हाय ! मैंने तो तेरे पिता के लेख पर विश्वास किया, उसी को सत्य जान अपनी प्यारी को नगर से निकाल दिया, क्या वह बात झूठी थी ?

(क्रोधित हो)

पवन--और क्या ! सर्वथा झूठा दोष, मिथ्या कलंक, ईश्वर जाने तुम सब की बुद्धि पर क्यों परदा पड़ गया कि किसी ने भी उसकी बात का अन्वेषण नहीं किया और अधिकतर अन्धेर यह किया कि जो किसी पर नहीं वह कलङ्क विचारी अञ्जना पर लगाया गया।

शोक ! तुम ने भी अपनी बेटी को दोषी ठहराया, भला कुछ तो सोचा होता।

जान नहीं पड़ता कि इन बातों में क्या जादू भरा हुआ था कि जिनको सुनते ही रानी धमाके के साथ धरती पर गिर पड़ी, मुख का रंग उड़ गया, हाथ पांव शीत हो गये, दांतों के जबड़े मिल गये और श्वास रुक २ कर आने लगा।

रानी की यह दशा होने से भवन में कुहराम मच गया,

कोई राजा के पास भागा जाता है और कोई वैद्य डाक्टर के पास।

पवन चरक शास्त्र से अभिज्ञ था, इस कारण रानी की नाड़ी परीक्षा करने पर सन्निपात सा जान पड़ा, तत्क्षण जायफल जावत्री हाथ पांव में मला, तांमेश्वर खिला लखलखा सुन्घाया जिस से रानी को सुध आई और हाय ! अञ्जना ! कह कर फिर चुप हो गई।

एक ओर राजा बैठा हुआ इसकी दशा को देख कर शोक कर रहा है, दूसरी ओर प्रसन्नकीर्ति आंसू बहा रहा है, और सारा वंश बेचैन हो कह रहा है " हैं क्षण भर में इसको क्या हो गया" ?

पाठक गण ! बहुत देर तक रानी की यही दशा रही, कभी तो सुध आजाती और कभी वही पहली सी दशा हो जाती, अंत में बड़े यत्न और पुरुषार्थ के पश्चात रानी को पूर्ण अरोग्यता हुई तो उठ कर बैठ गई, और दिल खोल फूट २ कर रोई जब दुःख हलका हुआ तो कहने लगी।

रानी—मैंने निर्दोष अंजना के हाल पर कुछ भी विचार न किया और न उसके दुःख को देख कर मेरे कठोर हृदय से एक आह निकली, और न आखों से आंसू टपका। शोक ? कोई माता ऐसी न होगी जैसी कि मैं अभागण, जिसने भूखी प्यासी देखकर भी पानी तक को न पूछा, हाय ! मेरा भला कहां होगा, ईश्वर के सन्मुख क्या उत्तर दूंगी ? यह कहा और फिर रोने लग पड़ी, तब राजा ने कहा।

राजा--प्रिया जी, इतना घबराने से तो कुछ लाभ न होगा
समय जो बीत गया हो उसकी चिन्ता और लकड़ी का पु
एक समान है, इसको छोड़ो और ईश्वर पर विश्वास रखो, वह
हर हाल में सब का रखवाला है, हां आगे की चिन्ता करो कि
अब क्या करना चाहिये ॥ रानी—ठंडा श्वास लेकर बोली:—

अंजना दीनी त्याग काम में खोटा कीना ।
जरा न किया विचार मुफत में अपयश लीना ॥
करैं मुझ को धिक्कार नगर के सारे वासी ।
क्या रङ्क क्या राये करें सब मुझ पर हासी ॥
सुनी विद्याधर की बात न माना तेरा कहना ।
हाय मेरी राज दुलारी पड़ा दुःख तुझको सहना ॥
मेरा हृदय भया कठोर सोच न मैंने कीनी ।
न जानू कारण क्या हुई मत मेरी हीनी ॥
अब क्या करूं उपाय बात में आप बिगाड़ी ।
कठिन अवस्था गर्भ गई बन बीच प्यारी ॥
न सुने अंजना बैन न कुछ निश्चय कीना ।
बिन देखे अपराध बेटी को मैं त्याग दीना ॥
हाय जाय पेट मेरा फूट जब सुध तेरी आवे ।
आह दर मेरे पर रो अंजना प्यासी जावे ॥

हाय पाली दुःख उठा बहुत मैं लाड लड़ाए ।
होती थी बेचैन जरा दुःख उसको पाए ॥
गई जंगल सिधार आह वह मेरी प्यारी ।
मैं भई अति कठोर बेटी धन सखी तुम्हारी ॥
हूं ऐसी निर्लज्ज प्राण ना मेरे छूटें ।
देख बेटी की विपत नैन न मेरे फूटें ॥
धृग जीवन संसार बात यह मैंने जानी ।
होय दास बेचैन गिरी धरती पर रानी ॥

पँचदश अध्याय

हाय वह कहां गई।

———

पाठक गण ! रानी की बातें सुन और अं
की यह दशा देख कर पवन जी की आंखे
के आगे वही चित्र स्वप्न का फिर गया
जिस को देख कर यह पहले दिन लंका
अचम्भित हुआ था, बेबस हो वहां
उठ खड़ा हुआ और मंत्री को साथ ले महेन्द्रपुर से निकल
उस रास्ते को स्वीकार किया है, जो बड़े के वृक्ष के नीचे
होकर पशुमुखा वन को जा रहा है, यद्यपि दिल में कई प्रका
के विचार उत्पन्न हो उसकी निराशा को बढ़ा रहे हैं. पर ज
अंजना की भोली मूर्ति उसको याद आजाती है तो अति व्या
कुल हो दिल में कहने लग जाता है, "अंजना तेरे सारे दुः
का कारण मैं ही अभागा हुआ" पहिले तो बारह वर्ष उ
प्रकार व्यतीत हुए और जब तेरी बात को न माना, और अंगू
देकर चला गया तो यह दशा हुई (स्वयं ही) माता

तो अंधेर ही कर दिया, ज्ञात नहीं पड़ता कि उसकी बुद्धि पर क्या परदा पड़ गया जो कुछ भी विचार न किया । शोक ! अञ्जना ! तेरे दिल में उस समय क्या आई होगी जब तुझ को .... कहा होगा हाय ! तेरे कोमल दिल ने इन बातों को क्यों कर सहा होगा (थोड़े से मौन पश्चात) वाहरी प्रारब्ध किस २ पर शोक करूं, देखिये जिस की संतान थी उसने भी तो कुछ विचार न किया, वरन पानी तक को न पूछा । हाय ! वह किन आशाओं को लेकर यहां आई होगी और कैसी निराश हो कर पशुमुखा वन को (स्वयं ही) गई ! पशु-मुखा वन ! वहां भयानक दुखदाई पशु फिरते होंगे, वह घबरा करती होगी, वहां तो कोई आसरा भी नहीं ।

आह ! इस विचार के आते ही पवन अति व्याकुल हो थोड़े को शोक सोचने लग पड़ा तब मंत्री ने कहा ।

मंत्री--इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप के दिल को कड़ी चोट लगी है पर अब व्यतीत बातों को याद करने से बिना दुख के कुछ प्राप्त न होगा ।

महाराज ! होनी बड़ी बलवान है इसके आगे किसी का चारा नहीं चलता उस विचारी की प्रारब्ध में यही लिखा था, किसी का कुछ दोष नहीं, आप स्वयं बुद्धिमान हैं इन बातों को भले प्रकार जानते हैं मेरे कहने की आवश्यकता नहीं ।

पवन--मन्त्री ! मैं सब कुछ जानता हूं भले प्रकार समझता हूं अपने न समझने वाले दिल को बहुतेरा सम्भालता हूं पर

जब उसकी वह मूर्ति जो स्वपन में देखी थी और पशुमुखा बन का जाना याद आता है तो सिर आकाशवत चक्कर खाजाता है और बेवस होजाता हूं। सत्य कहता हूं मैं अब वह पवन नहीं रहा, दुख और कष्ट का सामना है न भोजन की लालसा न पानी की प्यास है रात को नींद नहीं आती, मीन बिन जल के समान तड़फता रहता रहता हूं यदि कुछ विचार है तो यह है कि वह निर्दोष किस दुख में पड़ गई पशुमुखा बन जैसे सुनसान बैरान जंगल में क्यों कर रहती होगी ! वहां तो एक दिन रहना कठिन है। उसको लगभग वर्ष के होगया है, अब उस को कहां देखूंगा, (स्वयं ही) यदि मिल गई तो भला, नहीं तो पवन भी जीवित न रहेगा और इसी बन में भटकता २ मर जावेगा।

मंत्री—क्यों इतना घबराते हो, शांती और धैर्य से काम लो यदि उसने जीना है तो कोई भी उसको हानी नहीं पहुंचा सकता। हां दुःख अवश्य है, इस प्रकार की बातें करते २ पशुमुखा बन में पहुंच गये जिसको देखते ही शरीर में संसनाहट सी छागई कई प्रकार की कल्पनायें उत्पन्न हो बिच्छू के समान डंक मारने लगीं। और सूर्य भी अस्त होगया और रात का अंधेरा और भी दुःख देने लगा तो एक वृक्ष के तले घोड़ों को बाग डोर से बांध दिया और आप वहीं घास के बिछौने पर जीन का तकिया लगा लेट गये नींद तो कोसों दूर है हां करवटें लेते और ठंडी स्वांस भरते रात व्यतीत होग

प्रातःकाल होते ही पवन शौच आदि के लिये मंत्री से कह कर चल पड़ा ।

आहा ! देखिये कैसा शोकातुर हो सिर झुकाये जा रहा है । एकाएक जो कुछ विचार दिल में आ गया तो वहीं खड़ा हो सोचने लग पड़ा और अब बड़े आश्चर्य से इधर उधर देख रहा है ।

पाठकगण ! वही स्वप्न का फोटो आँखों के आगे फिर गया और कानों में अंजना के रोने की ध्वनि गूंज उठी और दिल में उसके दुःख की कथा छिड़ गई जिसने इस को अति व्याकुल कर दिया । बस फिर क्या था कभी तो रो पड़ता है और कभी चुप हो बावलों के समान दायें बायें देखता हुआ जा रहा है, जब इस दशा में पाँच सात कोस चला गया तो एक नदी दिखाई दी, जिस को देखते ही वहीं खड़ा हो गया और अब पीछे की ओर देख कर कह रहा है । ओह ! बहुत दूर आगये यह कहा और शौच आदि कर नित्य कर्म किया, जब वहाँ से लौटा तो रास्ता भूल गया क्योंकि आते वार अपनी कल्पनाओं की धुन में ऐसा मग्न था कि रास्ते का कुछ स्मरण न रख सका, सारा दिन इधर उधर फिरते और खोजते व्यतीत हुआ पर मंत्री और घोड़ों का कुछ पता न मिला । जब फिरते २ सायंकाल हो गया, तो शरीर भी थक गया, टांगें चलने से रह गईं, आंखें देखते २ थक गईं और दिल घबरा गया तो हार कर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया ।

हाय ! इस समय जो पवन के दिल में बीत रही है वह
जानता है या कुछ थोड़ा बहुत उसका प्रतिबिम्ब ग्रन्थकर्त्ता
के दिल पर पड़ रहा है जो उसकी दशा का विचार रख कर
लिख रहा है ।

पाठकगण ! जरा ध्यान तो कीजिये कि एक राजा का
लड़का जो फूलों के समान कोमल चित्त हो और जिसने सारी
आयु आनन्द में बिताई हो, उस समय जब कि वह अपनी
प्यारी निर्दोष दुख पीड़ित स्त्री की खोज में एक मित्र को
साथ ले घर से निकले और ऐसे घने और भयानक बन में
जहां सहस्रों दुःख देने वाले पशु बेअन्त विषमय जीव हों और
कोई स्थान सहारे का न हो तो इस दशा में उसके साथी का
खोया जाना और आप अकेले रहना एक थोड़ी सी बात नहीं
एक ओर तो स्त्री का वियोग और मन्त्री का दुःख सता रहा
है और दूसरी ओर बन के पशुओं के शब्द कानों में पहुंच
कर दिल को हिला रहे हैं, और सूर्य का पश्चिम को जाना रात
का आना सुना रहा है, पर इन सब की कुछ भी परवाह न
करता हुआ हमारा बहादुर उसी वृक्ष के नीचे प्रारब्ध की
शिकायत कर कह रहा है

हे ! निर्दयी बिधाता, तुझे तनिक भी दुखियों की दशा पर
दया नहीं आती, जरा देख तो सही ! माता पिता को छोड़
घर बाहर से मुंह मोड़ मन्त्री को साथ ले उस प्राणप्यारी की
खोज में आया था कि दो घड़ी इस से बात कर दुख भुला लिया
करूंगा, पर हाय तुझ को यह भी न भाया और पहली ही मंजिल

पर उस को पृथक कर दिया, अरे अन्याई ! इतना क्यों सता रहा है, तेरे अन्याय की भी कोई थाह है कि नहीं, मैंने कौन सा ऐसा पाप किया है कि जिस के बदले हाथ धो कर मेरे पीछे पड़ गया है ! यदि यही इच्छा है तो प्रार्थना करता हूं कि मेरी समाप्ति कर ताकि नित्य के दुःख से बचूं (फिर स्वयं ही कुछ सोच कर) नहीं ! नहीं ! ऐसा न करना ईश्वर के वास्ते ऐसा कदापि न करना, मुझे अभी उस प्राणप्यारी से मिल कर अपने अपराध की क्षमा मांगना है। आह ! वह इस वीरान बन में क्यों कर रहती होगी।

यह कहा और बेसुध हो वहीं लेट गया, जब कुछ काल पश्चात् सुध आई तो क्या देखता है कि चारों ओर सुनसान है, न तो कोई पक्षी ही फड़कता है और न ही किसी पशु का शब्द सुनाई देता है, हां कभी २ गीदड़ "हवें हवें" करते सुनाई देते हैं या वायु शाय शायें कर रही है और रात भी ऐसी अन्धेरी है कि हाथ को हाथ नहीं सूझता। वही स्वयं उत्पन्न हुए पौदे जिन को दिन के समय देखने से उस पारब्रह्म परमात्मा की महिमा दीखती है इस समय डरावने दिखा देते हैं। आह ! पवन की अद्भुत दशा हो रही है यदि मुंह सिर लपेट लेता है तो अजना की वही निराश मूर्ति सन्मुख आ जाती है, जिस के साथ ही बुरी बुरी कल्पनायें मस्तक से बस्तर चुटकियां लेने लग जाती हैं तो बेचैन हो उठ बैठता है। हां ! यदि कुछ धैर्य होता है तो आकाश पर तारों को देखने से, पर शोक उस का भ्रमित दिल उस को इस ओर

भी देखने की आज्ञा नहीं देता। ज्यूं ही आकाश की ओर देखता है वैसे ही ग्रहों की वक्र गति याद आ जाती है तो बेचैन हो जाता है, संक्षिप्ततः इसी भ्रमित अवस्था में रात बीती तो प्रात काल फिर खोज करने लगा पर कुछ पता न मिला।

जब चार दिन इसी प्रकार व्यतीत हुए और सारा जंगल छान मारा और उस का कुछ पता न मिला तो दुखित हो एक वृक्ष के नीचे बैठ गया, अभी थोड़ा काल ही सुसताया होगा कि फिर कुछ विचार सा उठा और दाहिनी ओर जो बहुत से वृक्ष दीख पड़े चला गया थोड़ी दूर जाने पर एक गढ़ा दृष्टि पड़ा, न जाने यहां क्या देखा कि उस में झांकते ही चला गया और अब कुछ वस्तु धरनी से उठा कर देख रहा है।

आह! यह क्या है? कि जिस को देखते २ उस के मुख का रंग उड़ गया है और भयानक विचारों ने उत्पन्न हो उस के दिल को और व्याकुल कर दिया है।

पाठकगण! यह वही अंगूठी है जो इस ने अञ्जना को स्मरणार्थ दी थी जिसको अब इस स्थान पर देख कर चकित हो रहा है और कई प्रकार की कल्पनायें उत्पन्न हो इस के मस्तक से दिल और दिल से मस्तक को जा रहीं हैं, पर कुछ समझ में नहीं आता कि वह अंगूठी इस गढ़े में क्योंकर आई। अन्त में उसका आश्चर्य बहुत बढ़ गया तो सिर पकड़ वहीं बैठ गया, कुछ काल मौन पश्चात् जिस विचार ने इस को अति दुखित कर बोलने पर तत्पर किया वह यह है "बस अञ्जना का मिलना कठिन है" यह कहा और चुप हो गया

कुछ काल पश्चात् ठण्डा श्वास ले कहने लगा।

आहा! मेरा विचार था कि वह इस बन में नहीं आई वरन् अवश्य उसका कुछ पता मिलता पर हाय शोक! उस को तो किसी पशु ने सदा के लिये मुझ से पृथक कर दिया है, नहीं तो वह जीते जी कभी इसको अपने से पृथक न करती, प्यारी तेरी मृत्यु का कारण मैं ही अभागा हुआ।

आह! यहाँ इस लिये आया था कि तुम्हारी खोज कर तुम्हारा दुःख निवृत्त करूंगा और जिन के सन्मुख तुम्हारा अपमान कर पतिव्रत धर्म्म पर कलंक लगाया गया था, उन्हीं के सन्मुख तुम्हारी पवित्रता सिद्ध करूंगा, पर हाय शोक! कोई भी आशा पूरी न हुई और सब की सब धूल में मिल गई, अब मेरा भी जीना व्यर्थ है।

इस प्रकार कह रहा था कि सिर चक्कर खा गया, आंखों के आगे अन्धेरा छा गया तो सिर को पकड़ कर वहीं बैठ गया, जब कुछ काल बीता तो कहने लगा, मेरा दण्ड अब यही है कि इसी स्थान पर जल कर राख हो जाऊं।

यह सोच उसी गढ़े में लकड़ियाँ एकत्र कर चिता बनाई और पत्थरों से आग निकाल उस में लगाई और आकाश की ओर देख कर कहने लगा। हे वक्रगति! तूने मेरी आशाओं को तोड़ दिया, सब आकांक्षाओं को धूल में मिला दिया और उस प्यारी मूरती को सदा के लिये मुझ से पृथक कर दिया, ऐ दुष्ट! तेरे ही कारण मुझ को अपनी आत्मा का घात करना पड़ा, यह कहा और ईश्वर से प्रार्थना करने लगा।

षष्टदश अध्याय

मेरी बुद्धि पर क्यों पत्थर पड़ गए ?

सायं काल का समय है जब कि रात का अंधेरा अधिक हो रहा है, और बनावटी चान्दना घर घर होने लग पड़ा है, यद्यपि राजा प्रहलाद विद्याधर के भवन में भी स्थान २ पर दीपक जल रहे हैं तथापि सारे भवन में कुछ सन्नाटा सा छा रहा है और कमरे २ में धूल उड़ रही है, किसी के बोलने का शब्द सुनाई नहीं देता, हां ठंडे स्वासों की आंधी चल रही है, रानी केतुमती शोकातुर मूर्ति बनाय सिर झुकाये पलंग पर बैठी है और राजा प्रहलाद विद्याधर एक जड़ाऊ चौकी पर शोकातुर मूर्ति बनाये रानी की ओर देख रहा है और कुछ लौंडियां थोड़ी दूर सामने चुपचाप खड़ी हैं, जब कुछ समय यूंही व्यतीत हुआ तो राजा रानी को संबोधन कर शोक पूर्ण शब्दों में बोला।

राजा—प्रिया जी ! क्या वास्तव में पवन ने अंजना को निर्दोष बतलाया था ?

रानी—(ठंडा श्वास लेकर) जी हाँ ! वह तो उस का देश निकाला सुनते ही क्रुद्ध हो उसे निर्दोषिनी बतला उस की खोज में भोजन किये बिना तुरन्त महिन्द्रपुर को चला गया है।

राजा—(भ्रूभंगकर क्रोधावेश में) हा ! बड़ा अन्य हुआ व्यर्थ उस निर्दोषिनीं अञ्जना के सतीत्व पर सन्देह किया मेरी बुद्धि पर क्यों पत्थर पड़ गये कि कुछ भी विचार न किया और तुम्हारी बातों में आ उसके अपमान का कारण हुआ। (थोड़े काल मौन रह कर) शोक ! पवन मन में क्या विचार करता होगा ? महिन्द्र राय को क्या उत्तर दूंगा। हा ! तुम ने तो मुझ को सब की दृष्टि से गिरा मिट्टी में मिला दिया और अब "जी हां" कह सुनाया।

पाठकगण ! रानी जो पवन की बातें सुन कर पहिले ही से दुखित हो रही थी, अब राजा को क्रोधित देख और भी घबरा गई, यद्यपि इसकी सब इन्द्रियां शिथिल पड़ गई हैं और हृदय भी रह २ कर उछल पड़ता है और मन विवश हुआ जाता है, सिर लज्जा से नीचे झुका जा रहा है, मस्तिष्क विचार में निमग्न है कि बिन जांचे का यही फल है जो आज दिख रहा है और यह विचार कर अपने किये पर पछता रही है, राजा की बातों का उत्तर देना तो एक ओर रहा, चित्त में मृत्यु से बात कर रही है, अन्त में राजा की बातें सुनते २ शोक का धुआं निकल मस्तिष्क में पहुंचा तो मूर्छा खा पलंग से नीचे गिर गई।

रानी की यह दशा देख कर राजा को और ही चिन्ता पड़ गई, शीघ्र उसको उठा कर कहने लगा :—

राजा—प्रिया जी ! अब तुम्हारा इतना घबराना व्यर्थ है, इन बातों पर पहिले सोचना चाहिये था जिस से आज लज्जित न होना पड़ता, मुझ को आश्चर्य तो इस बात पर आता है कि छोटी २ बातों पर तो इतना विचार करना कि पहरों बिता देने और जब ऐसी गूढ़ बात पर तनिक भी ध्यान न दिया, अवश्य तुम किसी के बहकाने में आगई होगी, अन्यथा ऐसी आशा तुम से तो कदापि न थी ।

रानी—(ठण्डी स्वांस भर कर राजा की ओर देख कर) हा ! मुझ को दुष्टा ललिता ने धोका दिया, न जाने उस ने क्या मन्त्र पढ़ा कि बिना प्रमाणित किये मैं उस विचारी से रुष्ट हो गई, शोक ! मैंने महान् पाप किया ।

राजा—निःसन्देह इस में कुछ भी सन्देह नहीं । तुम ने बहुत भूल की । न केवल आप ही किन्तु मुझ को भी भूल में डाला (ठण्डी स्वांस लेकर) पर अब इन बातों से क्या होता है, उसके भागों में ही ऐसा लिखा था । (कुछ सोचने के पश्चात् दासी से) देखो ! अभी रथवान् से कहदो कि प्रातः होते ही रथ तयार करके ले आवे, हम प्रिया जी के साथ महेन्द्रपुर जावेंगे ।

सप्तदश अध्याय

राजा प्रति सूर्य ।

पहर ढल चुकी है, सूर्य देव शोकातुर दृष्टि से संसार को देखता हुआ पश्चिम को जा रहा है, पर धरती अभी तक पैदल चलने वालों को न जाने द्वेष के कारण अथवा किसी जारण से आगे बढ़ने नहीं देती, इस लिये हम तो पीछे रह गए हैं, पर हमारी दृष्टि किसी के देखने की चाहना में बहुत दूर आगे निकल गई है, सामने कुछ हरियावल सी दिखाई देती है पर दूरी के कारण हम भले प्रकार जान नहीं सकते, हां दृश्य तो लुभावना प्रतोत होता है, जिसके देखने की चाह ने हम को बेबस कर उसके समीप पहुंचा ही दिया। वह सन्देह जो हमारे दिल में उत्पन्न हो रहे थे दूर होगए और उस हरियावल के समीप पहुंचे तो जान पड़ा कि वह वृक्ष जो दिखाई दे रहे थे कई एक प्रकार के हैं पर सब से अधिक आम के हैं, जिनकी प्रत्येक शाखा अधिक फैलने के कारण नीचे झुकी हुई है, क्या रंक क्या राजा जिसने एक वार इन आमों को देख पाया। तत्क्षण

दिल ललचा गया। इस में कुछ सन्देह नहीं कि रंकों के लिये जीवन का सहारा है, क्योंकि जिस ने दो चार भी खा लिये फिर दिन भर खाने का नाम न लिया। परन्तु राजों और धनाढ्यों के लिये यह उत्तम दृष्टान्त बन कर दिखला रहे हैं, कि जिस प्रकार हम सब के लिए फल तयार कर शिर झुकाए पुकार २ कर कह रहे हैं कि आओ मन माने आम तोड़ो और खाओ उसी प्रकार तुम भी अपने धर्म्म मर्य्यादा को न भूलो और दीनों को घृणा की दृष्टि से न देखो क्योंकि ईश्वर ने तुम को उच्च पदवी दी है भला इस प्रस्ताव को जाने दो और अंगूर की इस बेल को देखो जिसके हरे पत्तों में ऊदे २ अंगूर के गुच्छे कैसे उत्तम दिखाई दे रहे हैं, और समीप ही गुलाब, मोतिया खेल, और कई प्रकार के सुगन्धित फूल अपनी सुगन्ध के कोष से देखने वाले के मस्तक को सुगन्धित कर प्रसन्न कर रहे हैं, संक्षेपतः जहां दृष्टि पड़ती है निराला ही दृश्य दिखाई देता है, इस प्रकार सैर करते और ईश्वर की माया को देखते हुए बाईं ओर को जो बढ़े तो बड़े २ सुन्दर मकान दिखाई दिए तो दिल में बस्ती का विचार आया उसी धुन में उस ओर को चल दिए, थोड़ी दूर गए होंगे कि हमारा विचार ठीक निकला और एक नगर दृष्टि पड़ा।

आहा! यह तो हनुमानपुर है, जहां अञ्जनादेवी अपने मामा के साथ आई है, आओ जरा उस बिचारी का हाल तो पूछें, ओहो! राजा प्रति सूर्य्य के घर तो सन्तान नहीं और न ही अभी कुछ होने की आशा थी तो फिर उसके भवन के आगे शादयाने कैसे

बज रहे हैं और धूमधाम कैसी हो रही है ? क्यों जी ! आश्चर्य काहे को ? अञ्जना के पुत्र का नामकर्ण संस्कार हो रहा है, इस कारण आनन्द मंगलाचार हो रहे हैं, राजा ने अपने नगर के नाम पर लड़के का नाम हनुमान रक्खा है, वह देखिए इस समय अञ्जना भी उत्तम २ वस्त्र धारण किए बैठी है, पर इस का मुख कुछ ऐसा खिला हुआ नहीं, वरन् उदास सा प्रतीत होता है और दूसरी स्त्रियों का गाना बजाना भी नहीं भाता, यह इसी चिंता में है कि यदि आज मैं अपने घर होती तो स्वामी (पवन) जी इस अवसर को देख कैसे प्रसन्न होते। हाय ! न जाने वह कहां हैं और मेरे विषय में क्या विचार रखते हैं।

पाठकगण ! जब अञ्जनादेवी को उस ठौर रहते कुछ काल व्यतीत हो गया, और बेचैनी न गई तो एक दिन रानी रवी-सुन्दरी ने राजा से कहा।

रानी—महाराज ! अञ्जनादेवी दिन रात शोकातुर रहती है, दिन रुदन करते और रात करवटें लेते और ठंडे स्वांस भरते व्यतीत कर देती है, मेरी सम्मति में तो आप इसको महेन्द्रपुर ले जावें और उनको समझा वहां छोड़ आवें तो अच्छा है।

राजा—प्रिया जी ! निःसन्देह आपका विचार ठीक है, मैंने भी प्रायः इसको शोक में ही देखा है, यह कह कर उसी समय रथ तय्यार करवा बसन्त माला और अञ्जना को साथ ले महेन्द्रपुर को चल पड़ा।

आष्टदश अध्याय

अब तक लौट कर नहीं आये

ठीक दोपहर का समय है जब कि सूर्य देव ने अपनी तीक्ष्ण किरणें डालकर पशुमुखा वन को सुनसान बना रक्खा है, इस समय न तो कोई पशु ही बोलता सुनाई देता है और न ही कोई पक्षी उड़ता हुआ दृष्टि पड़ता है। अतीव उदासीनता छारही है। हाँ! कभी २ वायु के वेग आकर पत्तों की खड़ खड़ाहट करते हुए चले जाते हैं, पुनः वही सन्नाटे की दशा हो जाती है, एक पक्षी "घूगू घू" कहत तो सुनाई देता है। आह! ऐसे भयानक बन में एक बाँक जवान मूछों को ताओ दिए उत्तम श्वेत वस्त्र धारण कि दुपट्टे का आञ्चल शिर पर डाले एक वृक्ष के नीचे खड़ा है और वन की झाड़ियों की ओर देख रहा है इस की शोक भरी दृष्टि चारों ओर दौड़ २ कर किसी मित्र की खोज में जाती है पर पड़ी निराशा से लौट आती है, ईश्वर जाने दिल में क सोचता है जो कुछ काल शिर झुका धरती की ओर देख क फिर सामने देखने लग जाता है, पर जब इसका शोकातुर दि इसके वस से निकल इसको बेचैन कर देता है, तो उस बेचै की दशा में बादलों के समान तीस चालीस पग इधर उ

जाता है, ओर रह २ कर झाड़ियों की ओर देखता हुआ शोका-तुर हो लौट आता है, जरा सी आहट पाने से चौकन्ना हो इधर उधर को देखने लग जाता है, ओह! इस समय तो गर्मी बहुत ही अधिक होगई और बन भी भयानक दिखाई देता है, यह युवक कौन है? और क्यों इतना घबरा रहा है? आओ ज़रा इसको देखें तो सही, कहीं वही पवन जी का मन्त्री तो नहीं? आह! यह तो वही है। वह देखो दोनों घोड़े अभी तक वैसे ही बंधे हैं, बेचारा घबराये न तो क्या करे? वह शौचादि को प्रातःकाल से गये और अब तक लौट कर नहीं आये चिन्तन न हो तो क्या करे? जब थोड़ा सा दिन शेष रह गया तो दिल में नाना प्रकार की कल्पनायें उत्पन्न हो अधिक घबराने लगा। तब एक घोड़े पर सवार हो दूसरे की बागडोर पकड़ इधर उधर खोज करने लग पड़ा, सात आठ कोस तक खूब चक्कर लगाया, पर पवन का कहीं भी पता न मिला तो चकित हो कई प्रकार के विचार करता हुआ सायंकाल के समय एक वृक्ष के नीचे बैठ गया और अति बेचैनी से रात बिताई, जब प्रातःकाल का समय हुआ तो फिर खोज करने लग पड़ा, पर निराश हीं रहा, जब दो तीन दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गये और कुछ भी पता न मिला तो यह विचार उत्पन्न हुआ कि शायद उन को अंजना मिल गई है और उसी खुशी में मुझे भूल महेन्द्रपुर चले गये हैं। यह सोच कर तत्क्षण घोड़े पर सवार हो महेन्द्रपुर को चल दिया।

एकोनविंशति अध्याय

यह सब मेरे ही पूर्व कर्म्मों का फल है।

जब दूसरी बार रानी वेगमोहनी बेसुध हो धरती पर गिर पड़ी तो राजा महेन्द्रराय बहुत घबरा गया और बड़े यत्न से उस को सचेत कर कहने लगा :—

राजा—प्रिया जी क्यों इतनी चिन्ता करती हो! अच्छा जो उसको प्रारब्ध में लिखा था, होगया अब इन बातों को छोड़ो और उसकी खोज की चिन्ता करो, उस बिचारी को तो एक एक घड़ी वर्ष के समान व्यतीत होती होगी, न जाने क्या २ दुःख उठा रही होगी (इधर उधर) ऐं पवन कहां गया ? ओह तुम्हारी बेचैनी में उसकी भी किसी ने सुध न ली।

रानी—(ठण्डा स्वांस ले, बात काट कर) स्वामी जी! मेरे बस में कुछ नहीं जब मुझ को अपना बर्ताव जो मैंने अंजना देवी के साथ किया था, याद आता है तो बेबस हो दिल धड़क कलेजा फड़क कर रह जाता है और शोकमय अग्नि का धुआं उत्पन्न हो मस्तक को चढ़ सिर को चक्कर दे बेसुध कर देता है तो बेबस हो जाती हूं। हाय! कोई भी तो ऐसा नहीं करता जैसा मैंने किया!

राजा—प्रिया जी ! जो समय बीत जाय बुद्धिमान उसकी चिन्ता नहीं करते, वरन उस से शिक्षा पा आगे ध्यान रखते हैं ।

राजा अभी इस वाक्य को पूर्ण रीति से कहने भी न पाया था कि कुछ कोलाहल शब्द सुनाई दिये, पर कुछ समझ में न आया कि यह क्या भेद है, पर हां सब के कान उस ओर लग गये हैं, और बड़े आश्चर्य से बाहर की ओर देख रहे है कि इतने में एक दासी दौड़ती हुई आई और कहने लगी "माता जी अंजना आ गई है" ।

यद्यपि इस बात के सुनते ही सब से मुख प्रसन्न हो गये, पर रानी के तो मृतवत शरीर में जान ही पड़ गई है वह देखिये कैसी शीघ्रता से उठ कर कह रही है, आई ! कहां मेरी प्यारी पुत्री कहां है ?

इतने में अंजना सन्मुख आती दृष्टि पड़ी, इस समय न जाने रानी के निर्बल शरीर में इतना बल कहां से आ गया कि इस शीघ्रता से पग उठाया कि इसने अंजना को आगे बढ़ने का भी अवकाश न दिया और गले से लगा रोती हुई दृष्टि पड़ी आहा ! इस समय तो प्रत्येक आगे बढ़ कर अंजना की सहायक बन आंसू बहा रही है, रानी केतूमती को बुरा भला कह मन का वेग निकाल रही है और राजा प्रतिसूर्या अंजना का वृत्तान्त महेन्द्रराय को सुना रहा है ।

पाठकगण ! अभी बहुत सी स्त्रियां अंजना देवी के इर्द

गिर्द झुरमट बांधे बैठी बातें कर रहीं थीं, कि इतने में एक दासी ने आकर सूचना दी कि राजा प्रहलाद विद्याधर और रानी केतूमती आए हैं, यह सुन कर राजा प्रतिसूर्य और महेन्द्र राय तो उनके स्वागत को हुये। रानी वेगमोहिनी और अञ्जना देवी रानी केतुमती को लेने के लिये आगे बढ़ीं।

ज्यूं हो रानी ने पांव ड्योढ़ी के अन्दर रक्खा, अञ्जना उसके पांव पर गिर पड़ी और बड़ी नम्रता से बोली :—

अञ्जना—आज का दिन कैसा शुभ है कि मैं आपके दर्शन कर रही हूं! माता जी आप कुशल से तो हैं ?

अञ्जना देवी की बातें सुन रानी केतुमती लज्जित सी हो गई। लज्जा से आंखें नीचे झुक गईं। शरीर में काटो तो लहू का नाम नहीं रहा। दिल में जीवन से मृत्यु को अच्छा जान रही है, और अपने खोटे बर्ताव याद आ इसे जीने से लज्जित कर रहे हैं उत्तर दे तो क्यों कर* ?

* नोट—पाठकगण! सोचिये रानी केतुमती क्यों इतनी लज्जित हो जीवन से मृत्यु को अच्छा जान रही है, क्या अञ्जना या उसके माता पिता ने उसको कुछ कहा है? नहीं यह उसकी अपनी ही बेसमझी का फल है, जिसने इसकी गर्दन झुका मुंह को छिपा रक्खा है, जो हरएक इसको बुरा भला कह लज्जित कर रहा है, आंखें सामने होना नहीं चाहतीं जिव्हा वार्तालाप करने से लज्जित होती है, पर यह सब कुछ क्यों एक बात के न सोचने का फल है, इसलिए प्यारे पाठकगण जो काम सोच विचार कर किया जावे चाहे उसका अंत भला हो या बुरा पर इतन दुख नहीं होता, जैसाकि देख रहे हो। शाबास! अञ्जना तुझको और तेरी माता को जिसकी गोद में तू पली और जिससे सभ्यता का

अञ्जना—(कर जोड़ कर) माता जी ! आप क्यों नहीं बोलतीं, मेरा अपराध क्षमा करो, मैं आप की दासी हूं, बिना आपके कोई सहारा नहीं रखती।

केतूमती—(ढीले स्वर से) तेरा कुछ दोष नहीं वरन् मैं तेरी अपराधिनी हूं, हाय ! तेरे दुःख का कारण मैं ही अभागिनी हुई।

अञ्जना—आप इस बात की कुछ चिन्ता न करें, आपके कुछ बस नहीं, यह सब मेरे ही पूर्व कर्मों का फल है। माता जी जरा ध्यान तो कीजिये, (माता की ओर इशारा करके) यह मेरी माता खड़ी हैं मैंने क्या किसी ने भी इनके माथे पर बल पड़े हुए कभी नहीं देखे और दयावान भी ऐसी हैं, कि जरा सा किसी को दुःख में देखने से बेचैन हो जाती हैं, पर शोक, मेरे पूर्व कर्म ऐसे बुरे थे कि मुझको भूखी प्यासी देख कर भी इनको त्रास न आया और नगर से बाहर निकाल दिया। मैं सत्य कहती हूं मेरा शोक किसी पर नहीं केवल अपने ही कर्मों का दोष है।

आभूषण तूने पहना, यद्यपि रानी केतूमती ही तेरे सारे दुःखों का कारण हुई पर तूने इन बातों की कुछ परवाह न कर उसके पांवों पर सिर को रख कर बतला दिया कि पुरुष में कहां तक सहन शक्ति है। हे आज कल की स्त्रियो ! तुम भी जरा बिचारो और अञ्जना के दुःख की जांच कर देखो, यदि तुम में से कोई होती तो जब तक सास का बाल २ न उखाड़ लेती, कभी चैन न पड़ता, पर नहीं यह ढंग कुटनियों का सा है, ठीक नहीं जो कोई थोड़ी बुद्धि के कारण तुम्हारे साथ खोटा बर्ताव करे उसको समझाने का यत्न करो और नम्रता से काम लो तुम्हारा यह बर्ताव उसको वह दुःख पहुंचा सकता है जो दूसरे प्रकार सर्वथा असंभव और अनुचित है।

जब अंजना ने इस प्रकार कहा तो सब की आंखों से आंसू निकल पड़े तब बसन्तमाला ने कहाः--

बसन्तमाला--अब रोने से क्या लाभ है ? अच्छा जो होना था सो हो गया अब (हनुमान को आगे कर के) यह देखो ईश्वर ने तुम को वह लाल दिया है जिसके वास्ते हर एक भटक रहा है यह कह कर रानी केतुमति की गोद में उसको दे दिया और चुटकी बजा कहने लगी, "बेटा बजरंगी नानी दादी दोनों की खूब खबर लो" बसन्तमाला की चुटकी सुनते ही हमारा बहादुर जरनैल हंस पड़ा । आहा ! इसका हंसना क्या है जादू है कि जिसने सब को अपनी ओर खींच लिया है इस समय तो दुःख इस घर से ऐसा भागा जैसे उजाले से अंधेरा। रानी केतूमती और वेगमोहनी के आनन्दित मुखों से तो जान पड़ता है कि सारे ससार का आनन्द आज इन दोनों के भाग में आया है, यदि वेगमोहनी बालक को लेती है तो केतूमती उसके लेने की चाह में दिखाई देती है ।

रानी केतूमती प्यार कर रही थी कि हमारे बहादुर जरनैल की दृष्टि उस के कान पर पड़ी, जिसमें न जाने क्या ऐसा चमकीला आभूषन पड़ा हुआ है कि जिस को देखते ही पकड़ लिया और इस जोर से खींचा कि बेवस हो रानी की चीख निकल गई, सब स्त्रियें नीचे मुख कर मुसकरा पड़ीं, रानी लज्जित सी होगई और अंजनादेवी कठिनाई से उसका हाथ छुड़ा मुसकराती हुई दूसरे दालान को चली गई, और हम अपने विचार को लेकर जहां राजा महेन्द्रराय, प्रहलाद विद्याधर और प्रतिसूर्य बैठे हैं, जाते हैं ।

विंशति अध्याय

क्या वह यहां नहीं आये।

हो ! यहां तो अञ्जनादेवी ही की कहानी छिड़ी हुई है, उसी का ही कथन हो रहा है, वह देखिये राजा महेन्द्रराय और प्रतिसूर्या कैसे बोल रहे हैं पर प्रहलाद विद्याधर चुपचाप बैठा शिर झुकाये इनकी बातें सुन रहा है, दिल में अपने आप को बुरा भला कह कर कह रहा है, यदि मैं रानी की बातों में न आता तो आज मुझ को ऐसा लज्जित न होना पड़ता, इन के उपालम्भ ठीक हैं क्योंकि हर एक बात का जिम्मेदार मैं ही हूं ! रानी को कौन पूछता है, मैंने बहुत भूल की निस्संदेह भूल की !

इतने में एक पुरुष जिसके मुरझाये और धूल से भरे हुए मुख और होठों के सूखेपन से जान पड़ता है कि कहीं दूर से आ रहा है ! आया और शिर झुका बड़े आश्चर्य से इधर उधर देख रहा है ।

राजा--प्रहलाद विद्याधर इस नये पुरुष को देखकर बोले:--

प्रहलाद विद्याधर--ऐं ! तुम कहां और पवन किधर है ?

नया आया हुआ--(आश्चर्य से) क्या वह यहां नहीं आये ?

राजा--क्या कहा ? क्या तुम नहीं जानते जो उनके साथ थे ?

नया आया हुआ--हाय ! अन्धेर हुआ अब क्या करूं ।

राजा--(बड़े सोच में होकर) क्यों कुशल तो है ?

आह ! इस वाक्य ने सबको चकित कर दिया और अनायास से उसके उत्तर सुनने की चिन्ता में होगये ।

नया आया हुआ—महाराज ! हम दोनों पशुमुखा वन को अञ्जनादेवी की खोज में गये तो वहां पहुंच कर रात एक वृक्ष के नीचे काटी, प्रातःकाल होते ही वह शौचादि को गये और पुनः लौट कर न आये। बहुतेरी खोज की पर कुछ पता न मिला तब मेरे दिल में विचार आया की अञ्जनादेवी के मिल जाने के कारण वह महेन्द्रपुर चले गये हैं पर हाय शोक ! मेरा विचार मिथ्या निकला ।

राजा--क्यों घबराते हो पवन नादान नहीं, आज नहीं कल आ जायगा, अधिकतर जिसकी चिंता थी वह तो आ ही गई है ।

पाठकगण ! आप समझ तो गये होंगे कि यह नया आया हुआ मनुष्य पवन का मन्त्री है जो राजा की बात सुन चकित होकर कह रहा है ।

मन्त्री—क्या अञ्जनादेवी आगई ?

राजा--हां वह तो तुम्हारे से कुछ काल पहिले आगई थी ।

आह ! इस बात को सुनते ही मंत्री अचम्भित हो देखता

का देखता रह गया और कुछ उत्तर न दे सका।

राजा--कहो चुप क्यों होगये ? तुम्हारे मुख का रंग क्यों उड़ता जाता है।

मंत्री--महाराज ! वह तो यहां आगई पर पवन का मिलना कठिन है क्योंकि वन बहुत ही बड़ा है अब उसको सूचना हो तो क्यों कर हो।

राजा—कोई चिन्ता की बात नहीं दो चार दिन तक आप आ जावेगा।

मंत्री—हाय ! इस बात की तो कुछ परवाह नहीं, पर मुझ को तो रोना इस बात का है कि वह कहते थे "यदि अञ्जना मिल गई तो अच्छा है नहीं तो मैं भी किसी को मुख न दिखाऊंगा" और इसी वन में अपनी जान पर खेल जाऊंगा।

राजा—ऐं क्या कहा ? जान पर खेल जाऊंगा।

मन्त्री—जी हां !

यह छोटा सा वाक्य राजा के दिल पर बिजली के समान जा पड़ा, कलेजा फड़ फड़ाया, दिल घबराया अचेत हो आंखों में आंसू भर आए तो राजा महेन्द्रराय ने कहा।

राजा महेन्द्रराय—आप क्यों इतने बेचैन होते हैं, दिल को धैर्य दो, अभी हम लोग खोज कर उनका पता निकालेंगे, जहां होंगे वहां से लावेंगे, आप धैर्य रक्खें।

यह कहा और घोड़ों पर सवार हो तत्काल तय्यार हो गये, राजा प्रतिसूर्य ने प्रत्येक से कह दिया कि जिसको पवन जी

मिल जावें, वही अपनी पताका ऊंची करदे ता कि दूसरे इस चिन्ता से छुटकारा पावें, यह कहा और घोड़ों को सरपट डाल दिया और देखते २ दृष्टि से लोप हो गये।

पशुमुखा बन में पहुंच कर हर एक यत्न से खोज करने लगा, पर शोक दिल की आशा किसी की पूर्ण न हुई।

दूसरे दिन एक जगह से बहुत सा धूआं निकलता हुआ दिखाई दिया, जिसको देख कर सब को यह ही विचार उत्पन्न हुआ कि यहां कोई अवश्य रहता है, और इस बात को सब ने सोच कर उसी ओर घोड़ों को डाल दिया।

पाठकगण! हम तो इन लोगों के पीछे २ चले आये हैं; और घर में स्त्रियों का कुछ हाल ज्ञात नहीं, कि उन विचारियों पर इस समाचार के सुनने से क्या बीती।

आहा! इस खबर ने तो अन्धेर ही कर दिया है। वही घर जहां अभी हंस २ कर बातें हो रहीं थीं, शोकगृह बन रहा है, आये दिन के दुःख को देख सब के मुख पर उदासी की घटा छा रही है, और कई एक के नेत्रों से तो अश्रु भी बह रहे हैं, परन्तु रानी केतूमती की आंखें तो श्रावण मास के बादलों के समान बरस रही हैं।

ओहो! ज़रा अञ्जना की ओर तो देखना बाहर से कैसी हंसती हुई आ रही है, और अब इस खबर को सुनते ही आंखों में अन्धेरा छा गया, दिल धड़क उठा और कलेजा झिझक कर मन में दब गया, जहां खड़ी थी वहीं खड़ी रह गई है, अब इसका कारण चाहे यह हो कि बेसुधी की दशा में उसके हाथ पावों फूल गये हों, उस समय के बढ़े हुए शोक ने उस के पावों

धरती में गाड़ दिए हों, अन्त कुछ ही क्यों न हो पर इन बातों को सुन कर वह एक पग भी आगे न बढ़ा सकी, और सन्नाटे की दशा में वहीं ठिठक कर रह गई और कई प्रकार के विचार उत्पन्न हो बेचैन करने लगे ॥

इक्कीसवां अध्याय

हे ! प्राणनाथ तुम कहां हो ?

आधी रात के लगभग का समय होगा, जब अन्धेरी रात ने अपने चारों दामन फैला पशुमुखा बन की डरावनी मूर्ति को और भी भयानक बना रक्खा है, मनुष्य तो दिन में ही बहुत थोड़े दृष्टि पड़ते थे, पर दुःखदाई पशु और पक्षी बेअन्त थे, परन्तु इस समय वह भी मौन धारे योगी के समान बेसुध पड़े हैं। हां, कभी २ दुष्ट उल्लू कोलाहल मचाने लग जाता है या वायु शां शां करती सुनाई देती है। जिस को सुन कर दिल और भी दहल जाता है, इस दशा में यदि कुछ सहारा है तो केवल आकाश पर तारों को देखने से ! पर वक्रगति आकाश को यह भी न भाया, कि काले बादल सारे आकाश पर छा गये और अन्धेरा घटाटोप हो गया ! परन्तु आप जानते हैं कि जो पवित्र आत्मा है और भलाई करने पर सदा तत्पर रहते हैं, चाहे कितनी रुकावट उनके आगे क्यों न आये, पर वह अपने मन्तव्य से कभी नहीं रुकते। इसी प्रकार इस समय शूरवीर तारों ने दया को छोड़ना उचित न जाना और बहुमूल्य बादलों

में छेद कर शोकमय दिलों को धैर्य देना आरम्भ कर दी दिया है ।

आह! इस समय दिन के अन्धे (उल्लू) ने भी न जाने क्या सोच कर मौन धार लिया है, पर वायु के फर्राटे बराबर सुनाई देते हैं या एक दुखिया स्त्री के रोने की आवाज आ रही है, ओह ! इसको तो अपने प्राण भी प्यारे नहीं जो इस समय इस वीरान सुनसान वन में बेचैन हो रही है, यह अवश्य कोई न कोई अति दुखित है, जो इस प्रकार प्रलाप कर कह रही है, "हे प्राणनाथ तुम कहाँ हो ?" मेरे नैन चकोर के समान आप के दर्शन को तरस रहे हैं, कृपा कर चान्द सा मुखड़ा दिखा, इन को धैर्य दो, हाय ! आपके दिल में ऐसी बातें क्यों आगई, स्वामी जी ! मुझ को बिना आपके और कोई सहारा नहीं !

आहा ! अञ्जना को तो हम भवन में छोड़ आये हैं, यह दूसरी दुखित कौन है, चलो ज़रा देखें तो सही। वक्रगति ने ऐसा कौनसा वर्ताव इसके साथ किया है जिसके कारण यह ऐसे समय इस भयानक आरण्य में आकर रो रही है ।

एं ! यह तो वही दुखित अञ्जना ही है जो अपने पति का वृत्तान्त सुन कर धैर्य न कर सकी और किसी पर विश्वास न रख आप ही अकेली खोज करती हुई यहां आई है ।

धन्य है अञ्जना तुझको ! पतिव्रत इसी को कहते हैं कि अपनी जान और भयानक वन की भी कुछ परवाह नहीं की, और घर से बिना किसी सहारे के निकल पड़ी है, ईश्वर तेरी आशा पूर्ण करे ।

प्यारे पाठक गण! रात के पहिले पहर के विषय में तो हम कुछ कह नहीं सकते, हाँ आधी रात से लेकर जब तक कि प्रातः काल के श्वेतपन ने अपना लाल घुंघट मुख से नहीं हटाया, इस के प्रलाप की आवाज़ बराबर आ रही है, पर अब तो जहाँ घनी झाड़ियां दिखाई देती हैं, एक एक स्थान को बादलों के समान दस २ बार परताल करती और कहती जा रही है।

"ऐ पक्षी गणों! मेरी दशा पर तुम ही त्रास खाओ! और मेरे प्राणनाथ को देखा हो तो बताओ, ऐ बन के वृक्षो! तुम ऊंचे होने के कारण सब कुछ देखते हो, स्वामी जी का पता तुम ही बताओ, ऐ पर्वत की ऊंची चोटियो! ईश्वर तुम को सदा हरा भरा रखे, मेरी दशा पर तुम ही दया करो, हाय कोई भी उत्तर नहीं देता, सत्य है दुखी का कोई भी साथी नहीं होता।

इस प्रकार खोज करती और कहती जा रही है कि वृक्षों में से कुछ उजाला सा दृष्टि पड़ा और धूआं निकलता हुआ प्रतीत हुआ; शीघ्र २ पग उठा उस ओर को बढ़ी, थोड़ी दूर गई होगी कि आग के शोले निकलते हुए दृष्टि पड़े और पास ही एक मनुष्य खड़ा हुआ देखा, आह अब तो अति चकित हो गूढ़ दृष्टि से देखती हुई उस ओर को जा रही है, दो चार ही पग आगे की ओर बढ़ी होगी कि उस मनुष्य को पहिचान लिया और पहिचानते ही सिर पर शोक का पर्वत गिर पड़ा, कलेजा सम्भाला तो दिल बैठ गया, दिल को हाथ में लिया तो सिर ने आकाशवत चक्र खाया, आह! जब सिर को पकड़ा तो

पांव डगमगाये, पर वाहरे प्रेम अग्नि ! तूने सब को भस्म कर अपना ही कर्तव्य दिखाया, या तो अञ्जना अचेत हो घबराई हुई यहां खड़ी दिखाई दे रही थी या चुम्बक पत्थर के समान पवन को चिमट कहती हुई सुनाई दी।

अञ्जना—हाय ! यह क्या करते हो, स्वामी ऐसा न करो।

पवन—ऐं (पीछे को देख कर) प्रिया जी ! तुम कहां ?

इतने में राजा प्रहलाद विद्याधर ने अकस्मात आकर कहा—

प्रहलाद विद्याधर—बेटा ! क्या करते हो, देखना ऐसा अन्धेर न करना।

महेन्द्रराय—यह शूरवीरों का काम नहीं, वह आत्म हत्या नहीं करते संक्षेपतः हर ओर से इसी प्रकार के शब्द सुनाई देने लगे तो पवन इन सब को देख चकित सा रह गया, और क्षण भर में वही वन आनन्द की ध्वनि से गूंज उठा, बधाई आनन्द रहो के शब्द सुनाई देने लगे।

पाठक गण ! जंगल में मंगल इसी को कहते हैं, देखिये यह वहीं स्थान है जिसको थोड़े काल पहिले सब बुरा कहते और देख कर ठंडे स्वांस भरते थे, परन्तु अब सब से यही अच्छा है जहां सब के मुख जो थोड़ा काल पहिले शोकातुर और उदास दीख पड़ते थे, अब खिल खिलाते दृष्टि पड़ रहे हैं और हर एक का मुख आनन्द से लाल हो रहा है, कोई पवन को गले से लगा माथा चूम रहा है कोई अञ्जना देवी की ओर इशारा कर उसके पुरुषार्थ की श्लाघा कर रहा है। एक चिता को देख इसको बुरा कहता है, दूसरा इसके विरुद्ध उसको

अच्छा जानता है, क्योंकि इसी के कारण सब का इस स्थान पर आना हुआ और पवन का पता मिला, (राजा प्रति सूर्य्य) जो पास ही खड़ा है सुनिये क्या कह रहा है ?

राजा प्रति सूर्य्य—(उन लोगों को सन्मुख करके) निस्सन्देह ! निस्सन्देह ! यही ठीक है, यह धूआं यहां से दिखाई न देता तो इस ओर कोई भी न आता (राजा महेन्द्रराय की ओर देख कर) महेन्द्र ! मेरी सम्मति में यहां हवन किया जावे तो अच्छा है, क्योंकि यही स्थान शुभ है जहां सब की आशा पूर्ण हुई, चिरकाल के दुःख और कष्ट दूर हुए।

राजा महेन्द्रराय—मैंने पहिले ही देवेन्द्र को सामग्री के वास्ते भेज दिया है। (उंगली का इशारा करके) वह देखिये घोड़ा दौड़ाते जाता हुआ वृक्षों में से दीख रहा है।

थोड़े काल पश्चात् देवेन्द्र आ गया और हवन होना प्रारम्भ हुआ।

आहा ! इस समय सारा बन सुगन्धि से महक रहा है, बन दुःख देने वाले पशुओं की भयानक आवाजों के बदले वेद के छन्दों की ध्वनि गूंज रही है, जिनको सुन कर प्रत्येक का आत्मा प्रसन्न हो उस पारब्रह्म परमात्मा को धन्यवाद दे रहा है। ओहो ! जरा अञ्जना देवी को तो देखना, पवन को देख २ कर कैसी प्रसन्न हो रही है, इसका चिरकाल का मुरझाया हुआ मुखड़ा इस समय कैसा सुन्दर दीख रहा है, देखिये वह गरदन झुकाये सब से पृथक खड़ी है, और कभी २ ऊंची दृष्टि कर पवन की ओर भी देख लेती है, जिस से जान पड़ता है कि

इस समय वह सब दुःख और कष्ट भूल इस से वार्तालाप करना चाहती है, पर इन सब को देख कर झिझक जाती है जब हवन कर चुके तो घोड़ों पर सवार हो प्रसन्न २ वहाँ से चल पड़े ॥

गून्थकर्ता ।

शुभ दिन प्यारी अंजना, आज हुआ प्रकाश ।
गये बीत दिन विपति के, हुआ दुःखों का नाश ॥
दुःख उठाय अति घने, सुने वचन अयोग ।
दिन २ खुशियां मान अब, भोग खुशी के भोग ॥
सत्यवन्ती तू नार है, शील स्वभाव गुणवान ।
नहीं दोष किसी को तैं दिया, लिया भोग पूर्वलामान ॥
धीरज राखी मन विषे, ईश्वर पर विश्वास ।
शुभ फल निश्चय पायगी, कहे जोड़ कर दास ॥

—:○:—

बाईसवां अध्याय

रत्नपुर।

दिन का अन्तिम पहर है जब कि रत्नपुर के पूर्वी द्वार के बाहर मैदान में बहुत से लोग एकत्र हो रहे हैं और अभी और भी एक दूसरे के पीछे आ रहे हैं, प्रधान रत्नवीर बड़े आन बान से नगर के भद्र पुरुषों के साथ हंस हंस कर बातें कर रहा था कि एक पुरुष ने कहा।

एक पुरुष—शोक! अञ्जना देवी पर बड़ा अन्याय हुआ, कैसा मिथ्या दोष लगाया गया।

दूसरा—कुछ समझ में नहीं आता कि रानी केतुमती से क्योंकर ऐसी भूल हुई वह तो बड़ी बुद्धिमती स्त्री थी।

तीसरा—यही तो बात है और अधिकतर आश्चर्य की यह बात है कि राजा ने भी इस ओर कुछ भी ध्यान न दिया।

चौथा—इसका कारण मैं बतलाता हूं, और वास्तव में यही होगा चूंकि रानी केतुमती बुद्धि में अद्वितीय है और आज तक कोई भी ऐसी बात उस से नहीं हुई जिस से किसी

को शिकायत का अवसर मिला हो और यही कारण है जिस ने राजा को भूल में डाला नहीं तो वह कभी इस धोखे में न आता।

पांचवां—जो कुछ आप ने कहा ठीक होगा, पर ऐसी बातों का जो दूसरों के दुःख के कारण हो मान लेना उचित नहीं, जब तक कि पूर्णतया निश्चय न हो जावे।

रत्नवीर—किसी का कुछ दोष नहीं, यह ललिता की आग लगाई हुई है जो रानी की बहुत मुंह चढ़ी थी, उस ने रानी की बुद्धि पर ऐसा परदा डाला कि बिना किसी बात के पूछ पाछ के अञ्जना को नगर से निकाल दिया।

इस प्रकार की बातें कर ही रहे थे कि एक सवार घोड़ा दौड़ाता हुआ आया और प्रधान से कुछ कहा ही था कि सब लोग उठ खड़े हुए और शादयाने बजने लग पड़े।

ऐं! यह शादयाने कैसे? और यह लोग क्यों खड़े हो गये हैं।

पाठक गण! वह देखिये कुछ सवार आगे २ घोड़ों को सर-पट डाले आ रहे हैं और उनके पीछे राजा प्रहलाद विद्याधर और पवन इत्यादि हैं और जिन के शुभागमन के लिये यह सब लोग एकत्रित हैं और आनन्ददायक बाजे बज रहे हैं।

ऐलो! अब तो समीप ही आ गये और घोड़ों को रोक उतर रहे हैं, राजा प्रहलाद विद्याधर पहिले प्रधान से बातें कर, पश्चात् सब से कुशल क्षेम पूछ रहा है, इस प्रकार

पवन भी अपनी प्रेम भरी बातों से सब को आनन्दित कर रहा है।

आहा! इस समय कैसा मनोहर दृश्य है कि सब के मुख आनन्द के कारण प्रफुल्लित हो रहे हैं, फूलों के हार पहनाये जा रहे हैं और मंगल वाद्यों के शब्द इस समय की शोभा को और भी बढ़ा रहे हैं अञ्जना देवी रथ में बैठी हुई इस दृश्य को देख २ कर कह रही है।

धन्य दिवस यह आज का, धन्य तुझ को कर्तार।
निकली थी इस नगर से, काला वेस में धार॥
महा कठिन था वह समय, कोई न पूछनहार।
बलिहारी जगदीश के, था जिसका मुझे अधार॥

यह कह कर बारम्बार उस पारब्रह्म के आगे सिर झुका उस का धन्यवाद कर रही है और हमारे वीर हनुमान जी इस भीड़ को देख २ कर कैसे प्रसन्न हो रहे हैं और मुसकरा २ कर लोगों की दृष्टि अपनी ओर खेंच रहे हैं।

निदान बड़ी धूम धाम से नगर में प्रवेश किया, रत्नपुर का दृश्य इस समय देखने योग्य है। स्थान २ पर बधावे बज रहे हैं। प्रकाश की सामग्री देख दीवाली की रात फीकी पड़ गई है, यद्यपि इतने आनन्द को देख दुःख और क्लेश भी द्वेष की अग्नि में जल कर नाश हो रहे हैं, पर तब भी रानी केतुमती को देखिये! कैसे सिर झुकाये मुख छिपाए रथ में बैठी है, यह क्यों! अपनी मूर्खता पर पछता रही है और

कुव्यवहारों को स्मरण कर स्वयं लज्जित हो रही है, आंखें लोगों के मुख को देखना बुरा जान सब के पाओं की सैर कर रही है सुनिये ! वह स्त्रियां जो सामने उस भवन की छत पर आ रही हैं, क्या कहती हैं ।

चलो सखी उठ देखिये है यह कौतुक क्या ।
देखो आई अंजना बाजे रहे बजा ॥
सांची निकसी अंजना धृक जीवन इस सास ।
झूठा कलंक लगाए के बहु को किया निरास ॥
बालक गोद सुहावना मस्तक चन्द्र समान ।
धन्य २ तुझ को अंजना तेरा ईश्वर राखा मान ॥
पवन को प्यारी देखियो कैसा चढ़ा उमंग ।
चले चाल गज मस्त की नैनन गूढ़ा रंग ॥
केतुमती ना लाज से देखे सीस उठाय ।
जीती है यह पापिनी मरी न क्यों विष खाय ॥
सांच गुणी प्यारी कह गये कहो मुख से बात विचार ।
पहिले गुण अवगुण परताल कर मत पीछे पछिताए ॥

इस प्रकार की स्थान २ पर बातें हो रही हैं, प्रत्येक रानी को घृणा की दृष्टि से देख रहा है, जब तक भवन में प्रवेश न हुआ यह बातें भी होती रहीं ॥

त्रियोविंशत अध्याय

रानी केतुमती।

प्रातःकाल का समय है, रानी केतूमती सिर झुकाये अपने कमरे में बैठी है और कई प्रकार के विचार उसके मस्तक से उतर हृदय को दबा जिव्हा को बन्द कर रहे हैं। अंजनादेवी की नम्रता की बातें कानों में गूंज रही हैं और अपने खोटे व्यवहार को स्मरण कर मन में कह रही है। शोक! मैंने निर्दोषिनी अञ्जना को क्यों ऐसे अनुचित शब्द कहे? क्यों उसके अपमान का कारण हुई? वह तो सुशीला और पतिवृता स्त्री है, मैं क्यों उससे विमुख होगई (कुछ मौन पश्चात्) हा! ललिता! तेरा सत्यानाश हो, तूने ही मुझको इस से रुष्ट कर धूल में मिला दिया। पुनः स्वयं ही मै आप मूर्ख हूं जिस ने तेरी बात पर विश्वास कर बिचारी अञ्जना को निकाल दिया (कुछ सोच कर) बस अब मुझ को यही उचित है कि लोगों के मन से इस अपयश के हटाने का यत्न करूं, जहां तक होसके अञ्जना को प्रसन्न रखूं वह बड़ी योग्या बहू है।

इतने में अञ्जना देवी सन्ध्योपासना कर रानी के कमरे में आई और उस के पावों पर सिर को रख कर बोली।

अंजना—माता जी ! कहिये क्या आज्ञा है आप का मुख आज उदास क्यों होरहा है कैसी उद्विग्नता छा रही है, यदि कुछ मेरे योग्य सेवा शुश्रुषा हो तो आज्ञा कीजिये'।

रानी—(प्रसन्न हो कर) पुत्री कोई चिन्ता नहीं और न किसी बात का विचार हीं है, ईश्वर ने जब तुम्हारी जैसी योग्य बहू दी है, तो फिर मुझ को उदासी कैसी ? और चिन्ता क्यों हो ? हां एक बात है जो शरीर में कभी २ टीस सी मारती है, मन को बिगाड़ती है वह यह है कि मेरी आयु अब अधिक हो गई है और शरीर निर्बल पड़ गया है, इस कारण मुझ से गृह कार्य भले प्रकार नहीं हो सकते, यदि तुम इस में मेरा हाथ बटाओ तो मैं शेष भाग आयु का ईश्वर भक्ति में बिताऊं आशा है कि तुम मुझ को निराश न करोगी।

अञ्जना—(कुछ काल सोचकर) मुझ को उचित नहीं कि आप के होते मैं ऐसा साहस करूं, पर इस बात का भी विचार है कि मेरा ऐसा कहना भी आप को बुरा प्रतीत न हो, इस हेतु यद्यपि मैं अपने आप को इस योग्य नहीं जानती तथापि आप की आज्ञा के पालन करने का यत्न करूंगी।

पाठकगण ! अञ्जना की बातें सुन कर रानी अति आनन्द को प्राप्त हुई, और तत्क्षण सम्पूर्ण धन और आभूषण इत्यादि के सदूकों की तालियां उसको दे आप पृथक् होगई और अंजना देवी गृह कार्यों में प्रवृत्त होगई। उधर राजा प्रहलाद विद्याधर राज काज पवन जी को दे आप ईश्वर भक्ति में लग गए।

चतुर्विंशति अध्याय

बानर द्वीप में कोलाहल मच गया।

प्रातःकाल का समय है, अभी आकाश पर तारे झिलमिला रहे हैं और पक्षी वृक्षों पर बैठे चहचहा रहे हैं, कि हमारे वीर हनुमान निद्रा को त्याग पलंग से उतर इधर उधर को देख अंगड़ाईयां ले रहे हैं, यूं ही अंजना देवी संध्योपासन कर कमरे से निकलती हुई दृष्टि पड़ी, वहीं उसको जा पकड़ा। आहा! एक हाथ से तो उसकी साड़ी पकड़े हैं और दूसरे को फैला उसके मुख की ओर देख कुछ कह रहे हैं मानों उसकी गोद में जाना चाहते हैं। पर अंजना देवी को देखिये उसको देख २ कर कैसे प्रसन्न मुसकरा रही है, और ऊंगली के इशारे से इसको लेने से इनकार कर रही है और इसने भी अब रोनी सी मूर्ती बना दोनों हाथों से पकड़ वहीं रोक लिया है, भला अंजना देवी इसको इस दशा में देख क्योंकर रह सकती है, शीघ्रता से उठा छाती से लगा लिया और माथा चूम अपने कमरे को चली गई है।

पाठकगण! यद्यपि होनहार हनुमान इस समय दो व

का है, तथापि इसका डील डौल देखने वाले को पांच वर्ष का निश्चय प्रतीत होता है, दिनों दिन अपने माता पिता की आशाओं को बढ़ाता और उनको प्रसन्न करता हुआ जब सात वर्ष का हुआ तो एक योग्य पण्डित उसकी शिक्षा के लिये नियत किया गया।

सात वर्ष का जब हुआ, अंजनी सुत हनुमान।
विद्या उसे पढ़ावते, पण्डित चतुर सुजान॥
सरस्वती बैठी कंठ में, जो पढ़ता हनुमान।
दूजी बेर न देखता, कहता सरल ज़बान॥
छै वर्ष अरु नौ मास में, पढ़ी विद्या सुख मान।
ऐसा हुआ विद्वान यह, देख पण्डित भये हैरान॥

चौदह वर्ष की अवस्था में व्याकरण इत्यादि को भले प्रकार समझ लिया। ऋग, यजु, साम, अथर्ववेद पढ़ लिये, निदान संस्कृत विद्या में वह निपुणता प्राप्त की कि बड़े २ पण्डितों और विद्वानों ने भी इस को सत्कार की दृष्टि से देख इसकी प्रशंसा की। मल्ल युद्ध (कुश्ती) में वह नाम पाया कि सारे वानर द्वीप में कोलाहल मच गया, कई एक प्रसिद्ध योद्धा भी जो अपने आप को अद्वितीय जानते थे इसकी शूर-वीरता और दांव पेच को देख कर चकित रहे गए ? जब कभी किसी को इन से मल्ल युद्ध करने का अवसर मिला, प्रथम तो कोप दृष्टि पड़ने से उस की सुधि उड़ जाती, यदि किसी प्रकार साहस भी किया तो ऐसा नीचा देखता कि पुनः आयु

भर सामने आने का साहस न पड़ता। शस्त्र विद्या, आहा ? इस में भी तो पूर्णता प्राप्त कर दिखाई, थोड़े ही काल में वह शिक्षक जो इस की शिक्षा के लिये नियत किये गये थे इसकी वीरता के कर्तव्य देख चकित रह गये, शत्रु की सेना को निर्बल करने के उपाय और युक्तियां सुन कर पुराने योद्धा सेनापति भी इस की बुद्धि की प्रशंसा कर रहे हैं।

निदान हमारा जरनैल अपने समय में अद्वितीय है, इस वीर की वीरता के विषय में विस्तार पूर्वक लिखने की कुछ आवश्यका नहीं, क्योंकि आर्यावर्त का बच्चा २ इसकी वीरता से अभिज्ञ है। रामायण के कर्त्ताओं ने इस विषय पर अनेक पृष्ठ काले कर दिये हैं। हाथ कंगण को आरसी क्या! रामायण देखिये।

पंचविंशति अध्याय

मैं भी रुवाका पुरुष नहीं हूं।

दिन के अन्तिम पहिर का समय है, परछाईं ढल चुका है, धूप का बल भी अब नहीं रहा, जो कुछ काल पीछे प्रतीत हो रहा था। ऐसे समय में हमारा विचार जहां पहुंचता है वह रत्नपुर के राजा की सभा है, जिस में राजा प्रहलाद विद्याधर का पुत्र पवन बड़े आन बान से एक रत्न जड़ित सिंहासन पर शिर झुकाये एक पत्र हाथ में लिये बैठा है, और एक सिपाही सैनिक वस्त्र धारण किये हाथ बांधे सन्मुख खड़ा है, ईश्वर जाने इस पत्र में क्या लिखा है कि पवन बड़े आश्चर्य से रह २ कर इसको देख रहा है, हां कभी २ दबी हुई दृष्टि उस युवक पर जो सिंहासन की दाईं ओर लाल वस्त्र धारण किये शिर पर मुकट रक्खे बैठा है, डाल लेता है। और सभासदगण की दृष्टि इसी ओर लग रही है। सारे कमरे में सुनसान है, सन्नाटा सा छा रहा है, पर किसी को साहस नहीं पड़ता कि तनिक उठ कर इस

पत्र का आशय पूछे, अथवा ऐसे गंभीर विचार का कारण जाने। जब कुछ काल इसी प्रकार व्यतीत हुआ तो इन सब के सन्मुख मौनता की लगी हुई मोहर को जिस ने बीच में आकर तोड़ा वह वही युवक हमारा जरनैल हनुमान है। सुनिये वह क्या कह रहा है :—

हनुमान—महाराज! आपको इतना चिंतित देख मेरा चित्त अधीर हो कई प्रकार के चक्कर खा रहा है, यदि इसका कारण बतलाने में कोई वाधा न हो तो मुझको भी सूचित कीजिये।

पवन—(हनुमान की ओर देख कर) पुत्र! कोई चिन्ता की बात नहीं तुम क्यों अचम्भित हो गए।

हनुमान—तो कहिये फिर आप इस प्रकार उदास क्यों हो रहे हैं।

पवन—(पत्र दिखा कर) महाराज रावण लिखता है कि वरुण पुनः आज्ञा नहीं मानता, कर नहीं देता, इस कारण इस दुष्ट वरुण पर सेना आक्रमण की गई है और सथीम पर्वत पर हम को भी सम्मिलित होने के लिये लिखा है, सो इस बात की तो कुछ चिन्ता नहीं यदि कुछ विचार है तो इस बात का है कि हमारे वहां चले जाने पर तुम यहां के कार्य्यों का निर्वाह कर सकोगे या नहीं, क्योंकि तुम्हारा ध्यान इस ओर बहुत ही न्यून है।

जब सुना युद्ध का नाम हनु मन में हरषायो।
अति उमंग के साथ वचन कर जोड़ सुनायो॥

आज्ञा दीजे तात युद्ध को मैं अब जाऊं।
मारूं शत्रु जाय रावण का दुःख मिटाऊं॥
मन मेरे में चाह पिता रण भूमि को देखूं।
क्या क्याकरें कर्तव्य सभी जा नैनन पेखूं॥
जो भुजा मेरे में जोर जा रण महा दिखाऊं।
वर्ण को जाऊं पछाड़ जगत में कीर्ती पाऊं॥
बालक मुझ को जान पिता तुम मत घबराओ।
दे आज्ञा मुझको तात दास का मान बढ़ाओ॥

पवन—(हनुमान की ओर देख कर) वरुण और उस के पुत्र बड़े चतुर और स्याने हैं, कई बार तो मैं आप उनकी परीक्षा कर चुका हूं। वरुण को हर बात में देख चुका हूं तुम अभी उनका सामना करने के योग्य नहीं हो क्योंकि अल्पायु और अनजान हो, कोई युद्ध-क्षेत्र नहीं देखा, मैं क्योंकर जाने की आज्ञा दे सकता हूं।

हनुमान—निसन्देह आपका कहना ठीक है, इस में कोई सन्देह नहीं कि मैंने अभी तक कोई युद्ध नहीं देखा और अनजान भी अवश्य हूं पर मैं डरपोक या कायर नहीं हूं जो अपने नाम को कलंक लगा वंश को बदनाम करूंगा, यदि आप मुझको जाने की आज्ञा देंगे तो मैं भी इस बात को सिद्ध कर दिखाऊंगा कि शूरवीरता इसको कहते हैं, यह भी आप पर प्रकट हो जावेगा कि युद्ध-क्षेत्र में किस ने उसको नीचा दिखा विजय प्राप्त की।

हनुमान की इस शूरता पूर्ण की बात को सुन कर पवन अति प्रसन्न हो बोला।

पवन—निःसन्देह, मुझको तुम से ऐसी ही आशा है, वरन पूर्ण विश्वास है कि अवश्य ऐसा ही कर दिखलाओगे, परन्तु वरुण और पुण्डरीक भी कम नहीं, उन्होंने कई एक युद्ध-क्षेत्र देखे हैं, समय के उतराओ चढ़ाओ से पूर्ण अभिज्ञ हैं, खर और दूषण जैसों को तो उन्होंने नीचा दिखा दिया, तुम तो अभी बालक हो।

हनुमान—आप का बारम्बार यह कहना कि मैं बालक हूं युद्ध विद्या से अनभिज्ञ हूं कदाचित पितृ स्नेह है जो दिल में समा गया है, पर विचार तो कीजिये कब तक मैं इस बात को सोच कर युद्ध से पृथक् और अपने दिल के वेग को बन्द रख सकता हूं अन्त में एक दिन तो इसी अवस्था में जाना होगा और अपनी परीक्षा करनी होगी।

पाठकगण! दरबार में उपस्थित जन हनुमान की वार्तालाप सुनकर पवन से कहने लगे। महाराज! ईश्वर कुंवर जी के साहस को बढ़ावे इस से अधिक इस का साहस बढ़े। निःसन्देह इन की वीरता, साहस तथा धैर्यपन से हमें पूर्ण आशा है, और हर प्रकार का विश्वास है आप कुछ चिन्ता न करें और जाने से कदापि न रोकें। सेनापति तो साथ ही होगा।

जब सबने इस प्रकार कहा और हनुमान को दृढ़ पाया कि जाने से नहीं रुकता, तो कुछ सोचने के पश्चात् तैयारी की आज्ञा दी और दूसरे दिन सेना देकर सथीम पर्वत की ओर भेज दिया।

छब्बीसवां अध्याय

सथीम पर्वत ।

यह पर्वत लंका के दक्षिण पूर्व में हैं, इसके नीचे बाईं ओर एक बड़ा मैदान है जहां कुछ हरे वृक्ष लहलहाते हुए भी दृष्टि पड़ रहे हैं, और जिनके बीच में से एक पताका है, जिसका फरेरा वायु में उड़ता हुआ आकाश से बातें करता दिखाई दे रहा है।

अब हम अपने विचार को लेकर यहां पहुंच कर क्या देखते हैं कि दायें हाथ की ओर एक छोटी सी नदी जिस का नीलवर्ण स्वच्छ जल है बह रही है, और कुछ युवक जिन के चिन्ह चक्करों से प्रतीत होता है कि किसी सेना से सम्बन्ध रखते हैं, स्नान कर सन्ध्योपासन कर रहे हैं, इन को देख ही रहे थे कि हमारी दृष्टि बाईं ओर को पड़ी तो एक बेअंत सेना दल दिखाई दिया जिसके देखने की चाह में हम वहां पहुंच गए।

आहा! जितनी सेना दृष्टि पड़ रही है उन में से अधिक भाग की रंगत काली है, ऐसे नहीं जैसे कि हबशी, इन के रंग उन से अच्छे हैं हां चेहरों की शकल कुछ मिलती जुलती है,

भांति २ की वरदियां पहने इधर उधर टहल रहे हैं, और कई बैठे गप्पाष्टक उड़ा रहे हैं, इनको देखते हुए जब हम आगे बढ़े तो क्या देखते हैं कि एक तम्बू में कुछ अफसर बैठे हुए बातें कर रहे हैं।

उनमें से कितनों ही के सिरों पर जड़ाउ मुकट रक्खे हैं, जिन पर बहु मूल्य हीरे जड़े हुए जगमग २ कर रहे हैं। जान पड़ता है कि यह कोई राजा महाराजा हैं, जो इस सज धज से बैठे हैं। आओ! ज़रा इनकी वार्तालाप तो सुनें।

एक मुकुट धारी—पवन अब तक नहीं आया और न वह दूत लौट कर आया है।

दूसरा—कुछ कारण ही ऐसा हो गया होगा, वरन ऐसी आशा उस से तो कदापि नहीं कि आपकी आज्ञा में विलम्ब करें।

वही पहिला पुरुष—पवन भी एक महाबली योद्धा है, पिछले वार उसने वरुण को खूब ही हाथ दिखाये थे पर वह बड़ा निलंज्ज है जो पुनः युद्ध के लिए तत्पर हुआ है।

तीसरा—महाराज! सुना है उसका पुत्र उस से बढ़ कर शूरवीर, मनचला और फुरतीला जवान है, इस वानर द्वीप में तो उस के समान कोई बली नहीं।

पहिला पुरुष—अच्छा (बात काट कर और कुछ सोच कर) आजका दिन और देखलो कल तो अवश्य यहां से चल देंगे, अब के बार चाहे कुछ ही क्यों न हो वरुण को इस अभिमान का दण्ड दिये बिना कभी न छोड़ूंगा, वह क्या याद करेगा कि रावण से पल्ला पड़ा था।

इतने में एक पुरुष ने आकर इस पहिले मुकुट धारी को जो अवश्य रावण ही है कहा :—

नया आया हुआ—(सत्कार पश्चात्) महाराज ! पवन जी का पुत्र हनुमान भी सेना लेकर आ रहा है ।

रावण—(प्रसन्न होकर) सुग्रीव ! तुम और राजा वज्र-बाहु हनुमान के आगमन के लिये जाओ ।

यह सुन कर दोनों वहाँ से उठे और बड़े सत्कार के साथ हनुमान को उसी तम्बू में लाये और इनकी (हनुमान की) बाणी को सुन शूरवीरों का सा डील डौल देख हर एक मोहित हो गया, आहा ! विद्या और मधुर बाणी भी संसार में एक अद्भुत पदार्थ हैं, जो हर एक के दिल को अपनी ओर इस प्रकार खींच लेती हैं, जैसे चान्द का सौन्दर्य्य चकोर और भादों को काली घटा मोर को ।

पाठकगण ! जो लोग यहाँ इस समय उपस्थित हैं, चाहे अवस्था में छोटे हैं या बड़े सब हनुमान जी को सन्मान की दृष्टि से देख रहे हैं, और इनकी निपुण बाणी को सुन कर उन की योग्यता पर वाह २ कर रहे हैं, संक्षेपतः बहुत काल तक इधर उधर की बातों में लगे रहे । अन्त में प्रातःकाल का समय चलने के लिए नियत किया गया और सकल सेना को यही आज्ञा दी गई ।

सत्ताईसवां अध्याय

सेना आक्रमण ।

प्रातःकाल का समय है हर एक सिपाही अपने बिस्तरों को बांध कर छकड़ों पर लाद रहा है, और एक पुरुष जो कदाचित इनका अफसर है घोड़े को इधर उधर दौड़ाता हुआ हर एक को शीघ्रता करने के लिये यह कह रहा है, और कभी कभी आकाश की ओर दृष्टि कर कहने लग जाता है, ओह, बहुत दिन चढ़ गया, कूच का समय हो गया है शीघ्रता करो ।

थोड़े काल पश्चात् कूच का शंख बजा जिसको सुनते ही सब से पहिले हनुमान जी अपनी सेना को लेकर आगे बढ़े और उनके पीछे सुग्रीव और राजा वज्रबाहु हो लिया, और रावण इन सब की बढ़ी हुई उमंगों को देख गद गद हो रहा है, वीर सेना का श्रेणी बांधे पग मिला कर चलना और कन्धों पर नग्न तलवारों का चमकते हुए दिखाई देना बतला रहा है कि यह लोग युद्ध विद्या से पूर्ण अभिज्ञ हैं. जैसे इन वीरों के पावों आगे बढ़ते जाते हैं मुख युद्ध के उमंग से शाद हो रहे हैं।

पाठकगण ! क्षत्री के वास्ते इस से बढ़ कर और कोई खुशी नहीं कि वीरता से रिपु का सामना कर युद्ध क्षेत्र में प्राणों को त्याग करे, यही कारण है कि यह लोग आनन्द के शब्द उच्चारण करते हुए पड़ाव पड़ाव जा रहे हैं। जब सुमित नगर कुछ थोड़े अन्तर पर रहा तो एक बुद्धिमान मन्त्री को वरुण के पास इस अभिप्राय से भेजा कि उस को समझा कर युद्ध से रोके और कर देने पर तत्पर करे।

मङ्गलपुर के क्षेत्र में जिस समय यह मन्त्री पहुंचा तो क्या देखता है कि अनन्त सेना छावनी डाले पड़ी है, कई एक सिपाही कील कांटे से लैस हो युद्ध की सामग्री ठीक कर रहे हैं, और स्थान स्थान पर तम्बू लगे हुए हैं, और ठीक मध्य में एक बड़ा सुन्दर तम्बू दिखाई दे रहा है, जिसके चारों ओर नग्न तलवारें कन्धों पर रक्खे सिपाही पहिरा दे रहे हैं, जूं ही इस मन्त्री को एक सिपाही ने इस बड़े तम्बू की ओर आते देखा, ईश्वर जाने इस से क्या पूछा, कि वहीं इसको रोक दिया और आप परदा उठा तम्बू के अन्दर चला गया और कुछ काल पश्चात् लौट कर जा उसको भी तम्बू के अन्दर ले गया है जहां राजा वर्ण बड़ी सज धज के साथ कुछ सैनिक अफसरों को लिये बैठा है, *पुण्डरीक और राज्यू भी उपस्थित हैं, मन्त्री ने जाते ही सिर को सत्कारवत झुकाया और सन्मुख खड़ा हो गया।

---

* यह दोनों वरुण के पुत्र हैं।

वरुण—(उसकी ओर देख इशारा कर) बैठ जाइये तुम्हारा किस प्रकार आना हुआ ?

मन्त्री—(हाथ बांध कर) राजा रावण का भेजा हुआ आप की सेवा में उपस्थित हुआ हूं, यदि प्राण रक्षा की प्रतिज्ञा पाऊं तो जो कुछ उन्होंने कहा है आपकी सेवा में कहूं।

वरुण—हां ! हां ! निस्सन्देह कहिये कुछ चिन्ता न करो जो कुछ उन्होंने कहा है कहो, उस पर पूर्ण विचार कर उचित उत्तर दिया जावेगा।

मन्त्री—ईश्वर आप को प्रसन्न रक्खे, भाग अधिक हो, यद्यपि मेरी सामर्थ से बाहर है कि आप के सन्मुख बोलने का साहस करूं या जिव्हा ही हिलाऊं पर क्या करूं आतुर हूं, स्वामी की आज्ञा पालन करना मेरा धर्म है।

वरुण—हां निस्सन्देह कहिये उन के मन्तव्य से सूचित कीजिये, दूत सदा दोष रहित होते हैं। तुम पर कोई भी दोष नहीं आसकता।

मन्त्री—महाराज ! युद्ध करने से दोनों ओर की हानि होगी। कितने ही युवक अपने माता पिता को छोड़ उन को चिंता में डाल जावेंगे। स्त्रियों के पति सदा के लिये उन से पृथक् हो जावेंगे। युद्ध क्षेत्र न जाने किस के लिये अच्छा और किस के लिये बुरा हो। इस कारण उचित यही है और महाराज रावण की भी यही इच्छा है कि आप कर का शेष भाग भेज दें और आगे के लिये उचित नियम लिख कर क्षमा करा लें,

ताकि युद्ध का अवसर न मिले आत्म हत्यायें न हों, रावण का सामना करना बालकों का खेल नहीं।

वरुण यह बातें सुनते ही आग बगूला हो गया, कोप से मुख लाल करके बोला।

वरुण—रावण अपने दिल में क्या सोचता है। किस बात पर घमंड करता है, यह जो कर का मिथ्या विचार उस के मस्तक में समा रहा है, उसे अवश्य दुःख देगा, इस की आशा अब कदापि न रक्खे। मुझ को इन्द्र, यम और कुवेर राजा न समझे, मैं वरुण हूं अब इस बात का निर्णय (तलवार पर हाथ रख कर) यह खड्ग करेगा और फिर उस को पछताना पड़ेगा, यदि वह युद्ध के लिये तत्पर है तो यहां भी विलम्ब नहीं।

यह कह कर मन्त्री को विदा किया। पुण्डरीक और राज्यू को सेना की तैयारी की आज्ञा दी।

पाठकगण! वरुण की वार्तालाप तो आप सुन चुके, अब रावण को चल कर देखिये कि वरुण का सन्देशा पहुंचने पर हनुमान सुग्रीव इत्यादि से क्या कह रहा है।

रावण—मैं नहीं चाहता था कि युद्ध हो, निर्दोष प्रजा की हानि हो, पर क्या किया जावे वह स्वयं ही युद्ध पर आरूढ़ है और किसी प्रकार नहीं समझता तो हम को भी उचित यही है कि इस कृतघ्न की खूब ही गत की जावे, ऐसे पुरुष पर दया करनी मानो दूसरों का साहस बढ़ाना है।

हनुमान—जो कुछ आप ने कहा यथार्थ है भला यह हो

सकता है कि हम लोग उस की बातों को सुन कर डर जायें, और युद्ध से पृथक् रह सदा के लिये कलंक का टीका लगवा लेवें। नहीं हम लोग लड़ेंगे, अपनी २ योग्यता के कर्तब दिखा उसको बतलावेंगे कि आज्ञा न मानने का यह दण्ड होता है, प्रण तोड़ने का यह फल है, महाराज ? लोहा लोहे से काटा जाता है। लातों के देव कभी बातों से नहीं मानते।

जब इस की पुष्टि सब उपस्थित जनों ने की तो रावण प्रसन्न होकर बोला।

रावण—शाबास ! शाबास ! आप लोगों से ऐसी ही आशा है, आप ही लोगों की बुद्धि की बलवान स्टीम से इस राज्य की ट्रेन चल रही है, इस में कोई सन्देह नहीं कि वह बड़ा अभिमानी और चतुर है, जितना दण्ड उस को दिया जावे उचित है।

यह कहा और युद्ध का पक्का मन्तव्य कर सेना को तैयार होने की आज्ञा देदी।

अठाईसवां अध्याय

युद्ध क्षेत्र ।

तःकाल का समय है, पोह फूट गई है, उजाला फैलता जाता है और रात का रहा सहा अंधेरा पोल हो रहा है । ऐसे समय में हमारा विचार जहां पहुंचता है वह मंगलपुर का युद्ध क्षेत्र है, जिस में एक ओर बेअंत सेना दल लिए रावण तम्बू लगाये है, दूसरी ओर वरुण छावनी डाले पड़ा है पर दोनों सेना दलों में विशेष चहल हो रहा है, सोने वाले अंगारियां ले ले कर उठ रहे हैं, और कई अभी निद्रा में कुछ ऐसे मस्त हो रहे हैं, कि उनके जोड़ीदार सिपाही उनको हिला २ कर उठा रहे हैं, पर वह कर्वटें बदल और हूं हूं कर रह जाते हैं, इस (सीन) दृश्य को देख कर अनुमान पड़ता है कि अवश्य आज इन दोनों सेना दलों में युद्ध होगा क्योंकि हर एक सिपाही शौचादि से निश्चित हो कमर कस रहा है, शस्त्र बांध रहा है और कई तलवारों की धारों को उंगलियां लगा २ कर देख और यह कह कर कि आज तुम्हारी काट और तीक्षणता देखी

जावेगी, म्यानों में डाल रहे हैं, कमानों को तान २ कर परीक्षा कर रहे हैं और तर्कशों को तीरों से भर कर कांधों से लटकाये जाते हैं, नेज़ा और बर्छी पर भी दृष्टि डाली जा रही है, संक्षेपतः इस समय हर एक सिपाही अपनी वह मूर्ति बना रहा है जो एक शूरबीर योद्धा की होनी चाहिये, इतने में शंख बजा, जिस का शब्द सुनते ही नाना प्रकार की वरदियां पहने कमानों को ताने चिल्ला चढ़ाये बीर सिपाही युद्ध क्षेत्र में दिखाई दिये।

आहा! कैसी श्रेणियें बांधे खड़े हैं, क्या मजाल जो एक भी श्रेणी से पग इधर उधर या किसी से बात कर अपने ध्यान को दूसरी ओर लगावे, नहीं, हर एक अपने २ सेनापति की ओर देख रहा है और इस बात की ताक में है कि कब युद्ध की आज्ञा मिले, और हम अपने तीरों को शत्रु के लहु से भिगो उसको रण भूमि से भगावें, इसी वेग में उन के मुख लाल हो रहे हैं, और एक २ क्षण पहर के समान व्यतीत हो रहा है।

हमारे बहादुर जनरल हनुमान की सेना को देखना कैसे श्रेणी बांधे खड़ी है कि एक तिल भर का भी अंतर नहीं और आप (हनुमान जो) किस उत्तमता के साथ छाती ताने गुर्ज हाथ में लिये हर एक सिपाही का दिल बढ़ाते हुए इधर उधर टहल रहे हैं, और इसी प्रकार राजा वज्रबाहु और सुग्रीव भी अपनी २ सेना को देख कर प्रसन्न हो रहे हैं, इतने में शंख का वेगवान शब्द सुनाई दिया जिसको सुनते ही बीरों के वह तीर जो अभी कमानों में चढ़े दृष्टि पड़ रहे थे शत्रुओं की छातियों को छेदते हुए दीख रहे हैं। वही युद्ध क्षेत्र जो अभी साफ

सुथरा दिखाई दे रहा था एक पल भर में कायरों के लिये भय-भीत हो डराने लगा, और लहु से तर हो वीरों के साहस को बढ़ाने लगा। हनुमान जी का फुरतीला हाथ तीरों की वर्षा कर अचम्भे में डाल रहा है, क्या मजाल कि एक बार भी वृथा जाय, इसका तीर क्या यमराज का दूत है सुग्रीव और वज्र-बाहु के तीरों ने भी शत्रु की सेना में खलबली मचा रक्खी है, जिसके एक भी लगा निश्चित हो सदा के लिए सो गया।

पुण्डरीक जो उनके सामने खड़ा है वीरता में न्यून नहीं, क्या शिस्त बांध कर तीर चला अपनी वीरता के पूरे कर्तव्य दिखा रहा है, जिस को देखकर कायर भी लड़ने को आगे बढ़ रहे हैं, आह! सुग्रीव की सेना को तो बेढब घेरा है कि एक पग भी तो आगे बढ़ने नहीं देता। जरा पुण्डरीक को तो देखो! कैसा आगे बढ़ रहा है कि इस को प्राण का भी भय नहीं। बेधड़क शत्रुओं में घुसा जा रहा है। यद्यपि रिपुओं के तीरों ने वीरों के शरीरों को छेदकर रंगीन वस्त्र पहना दिये हैं, पर इनका पग बराबर आगे को बढ़ा जा रहा है।

समीप था कि वरुण की सेना प्रबल हो शत्रु को युद्ध क्षेत्र से भगा दे कि इतने में रावण की सेना में इनको अपनी ओर बढ़ते देख ऐसा जोश फैला कि वह सिपाही जिन पर कायरपने का विचार था अथवा निर्बलता का ध्यान था देखिये! किस बल से कमानों को तान तीरों को छोड़ रहे हैं और आगे बढ़ कर नेजा और बरछी से भी काम ले रहे हैं, देखना! सैकड़ों जान पर खेल गए पर शत्रु को वहीं रोक लिया।

वीर हनुमन जी ने इस ज़ोर से संख बजाया कि सारा युद्ध क्षेत्र गूंज उठा, उधर युद्ध के बजंत्रियों ने ऐसा राग अलापना आरम्भ किया कि बीर सिपाही सहस्रों शरों को जो धरती पर पड़े दृष्टि पड़ रहे हैं और धरती लाल बन रही है देख कर भी जरा न घबराते हुए आगे को बढ़ शत्रु को पीछे हटा रहे हैं। आह ! क्या भयानक समय है कि एक पल भर में वह बीर सिपाही जो मूछों को ताओ दिये छाती ताने रावण के बायें ओर खड़ा शत्रु की छाती को अपने तीरों का निशान बना रहा था, धरती पर लोटता हुआ दृष्टि पड़ रहा है, यद्यपि शत्रु के तीरों ने इस के कलेजे को छेद कर धरती पर गिरा दिया है पर कमान इसके हाथ में तनी की तनी रह गई है।

रावण की दृष्टि ज्यूं ही इस शूरबीर पर पड़ी, क्रोधवान हो एक वारगी आक्रमण की आज्ञा दी। फिर क्या था वीरों ने तीर कमानों को फैंक ढाल तलवार को हाथ में ले, नेजा और बरछी का अवसर पा शत्रु को जा घेरा, दोनों ओर से ऐसी तलवार चली कि लहू की नदियां बह गई, वेअन्त वीर धरती पर सदा के लिये लेट शोकमय दृष्टि से देखने के देखते रह गये।

इस समय कायर सिपाही तो दम चुरा पीछे को हट रहे हैं, और वीर इस अवसर को दुर्लभ जान दिल के वेग निकाल बीरता का कर्तव्य दिखाने को आगे बढ़ रहे हैं, समीप था कि वरुण की सेना युद्ध क्षेत्र से मुख मोड़ जय की आशा छोड़

पीछे का रास्ता ले कि इतने में सूर्य्य देव उनकी आतुर दशापर दया कर अपनी तीक्ष्ण किरणों को समेटते हुये पश्चिम में जा छिपे, और चांद ने अपनी मनोहरता दिखा शूरवीरों के वेगों को शीतल किया, इस कारण योद्धाओं को अपनी प्रारब्ध का निर्णय दूसरे दिन पर रखना पड़ा।

॥ दूसरा दिन ॥

प्रातःकाल होते ही सूर्य्य की तीक्ष्ण किरणों का प्रकाश रावण की सेना पर पड़ा तो जादू का काम कर गया, जिस को देखते ही योद्धाओं की तलवारें म्यानों से निकल चमकती हुई दिखाई देने लगीं, नेजे बरछियां तीक्ष्ण जिव्हा निकाल शत्रु को धमकाने लगीं, योद्धाओं के मुखों से जान पड़ता था कि आज्ञा पाने के लिये बड़े अधीर हो रहे हैं, यदि सेनापति का भय न होता तो कभी के रण भूमि में जा हाथ दिखाते पर नहीं आज्ञा का मानना अवश्य था, इस कारण वीरों को अपने वेग भरे सीनों से आज्ञा के लिये ठहरना पड़ा।

कुछ काल पश्चात् शंख बजा, और योद्धा क्षेत्र में दृष्टि पड़े दूसरी ओर वरुण के सिपाही भी बड़े जोर से तैयारियां कर आज्ञा पाने के लिये खड़े हैं, पर कई जो अभी नए हैं सूर्य्य को देख घबराहट में पड़े एक दूसरे की ओर शोक भरी दृष्टि से देख रहे हैं, कदाचित यह कल की हार का कारण है जिस ने

इनको इतना अनायास ही कायर बना रक्खा है ! बुद्धिमान पुण्डरीक एक ही दृष्टि में समझ गया और तनिक भी न घब-राता हुआ ऊंचे स्वर से बोला । शोक का स्थान है कि वरुण की सेना और यह सुस्ती ! वीरो ! शूरवीरों का यह काम नहीं कि एक दिन की हार होने पर युद्ध क्षेत्र से दिल चुरायें । क्षत्री वही है जो युद्ध क्षेत्र में शत्रु को मारे । या आप मरे, रावण की वही सेना है जिस को तुम ने कई बार पछाड़ा है, खर और दूषण को बांध और रावण को भगा चुके हो ! यदि एक ही हार से तुम्हारी यह दशा हो गई है तो क्षत्री होने का दम न भरो और शूद्रों में जा मिलो, मुझको ऐसे क्षत्रियों की आवश्यकता नहीं, जिनको अपने नाम की हानि का भी विचार नहीं ! वीरो जिनको तुम इस समय युद्ध क्षेत्र में खड़े देख रहे हो, आज ही देखोगे शत्रुओं को दलन कर संसार में नाम पावेंगे और तुम्हारे जैसे कायर सदा के लिये लज्जित हो पछतायेंगे, जाओ तुम जैसों की आवश्यकता नहीं ! जाओ !!

पाठकगण ! पुण्डरीक की बातें बिजली के समान शूरवीरों के लहू में प्रवेश कर गईं, वहीं उदास मुख लाल हो गये और तलवारें म्यानों से निकाल बड़े वेग के साथ युद्ध क्षेत्र में दृष्टि पड़ें, पुण्डरीक सेना में इतना वेग देख अति प्रसन्न हुआ और अपने पिता से जाकर बोला ।

पुण्डरीक—महाराज ! सुग्रीव के सामने आप हों और

रावण के सामने मैं और राजू, और इसी प्रकार अन्य योधाओं को भी बांट दिया, इतने में शंख बजा, जिसकी ध्वनि सुनते ही बजंत्रियों ने युद्ध का राग अलापना आरम्भ किया! योद्धा दिल के अरमान दिल खोल कर निकालने लगे और तीक्ष्ण तलवारें युद्ध क्षेत्र में चमक अपना कर्तव्य दिखाने लगीं। सहस्त्रों सिपाही क्षण भर में घायल हो नीचे सिर झुका डगमगाने लगे और मांसाहारी पशु मृतशवों को देख प्रसन्न होने लगे।

आह! वह सिपाही जो कभी अपनी तलवारों का वार करते हुए दृष्टि पड़ रहे थे, धरती पर लेट तड़फ २ कर प्राण दे रहे हैं, और शोकातुर दृष्टि से दूसरों की ओर देख रहे हैं।

कई जो कुछ अन्तर पर खड़े हैं, तीरों से काम ले शत्रुओं को घबरा रहे हैं, वीर वरुण और सुग्रीव एक दूसरे पर वार कर वीरता दिखला रहे हैं, हमारे बहादुर जनरल हनुमान जी को देखना किस फुरती के साथ सब ओर चक्र लगा देख रहे हैं कि जो निर्बल दृष्टि पड़े उसकी सहायता को पहुंचें। ओह! जरा रावण को देखना, बिजली के समान वरुण की सेना पर आन पड़ा है। योद्धाओं का नाक में दम कर रखा है, यद्यपि दूसरी ओर वाले भी बहुत यत्न करते दिखाई देते हैं पर इस के सामने होने की शक्ति नहीं रखते। आह! वीरों के लहू से नदी बह निकली, पर अन्धेर यह हुआ कि उस पर सूर्य्य की किरणें पड़ कायरों का साहस घटा रही हैं।

हा, हा ! वरुण की सेना तो बहुत निर्बल जान पड़ती है, पुण्डरीक और राज्यू कहां हैं ! वह देखो दोनों भाई आगए और रावण को अब ऐसा घेरा है कि जरा अवकाश नहीं देते। शोक ! किस जोर से रावण पर तलवार का वार किया है। पर इस ने भी खूब बचा लिया, क्यों न हो, यह बड़ा बुद्धिमान है। इस ने बहुत से युद्ध देखे हैं, यदि ऐसा न करता तो कदापि न बचता, देखो, कैसी उत्तमता से पीछे हट तीरों का वार कर रहा है, यद्यपि पुण्डरीक और राज्यू दोनों को छेद दिया है पर योद्धा पुण्डरीक छेदा हुआ भी सिंह के समान गर्ज कर रावण के सिर पर पहुंच ही गया है, परन्तु हमारे वीर जनरल की दृष्टि इस ओर पड़ गई है वह देखो बिजली के समान वहां पहुंच कर गुर्ज का वार कर रहा है, अन्तिम पुण्डरीक को बेसुध कर धरती पर गिरा ही दिया। राज्यू भ्राता की यह दशा देख बड़े कोप से हनुमान जी पर लपका, परन्तु रावण ने पीछे से होकर एक ही बरछी से उसका काम पूर्ण कर दिया, उधर हमारे जनरल ने जब पुण्डरीक के हाथ पाओं बांध दिये तो वह बड़े आश्चर्य से उसकी ओर देखता हुआ बोला।

बोला तब यह वरुण सुत, बालक तेरा बेस।
क्या नाम तुम कुंवर जी, कौन पिता और देस॥

हनुमान जी।

पिता हमारा पवन है, रत्नपुर नाम ग्राम।
न छोड़ूँ शत्रु युद्ध विषे, हनुमान मेरा नाम॥

लिया जन्म रघुवंश में, मम प्रतिज्ञा जान ।
मारूं शत्रु रण विषे, नहीं तो तजूं प्राण ॥

आह ! पुण्डरीक को घबराया हुआ देख कर वरुण की आंखों के आगे अन्धेरा छा गया, बेबस हो बरछी लेकर इस ओर को बढ़ा पर अब क्या हो सकता है, प्रारब्ध हार चुकी है, ग्रह वक्रगति स्वीकार कर चुके हैं, ज्यूं ही इस ने इस ओर को पांव रक्खा, वहीं सुग्रीव ने इस समय को दुर्लभ जान नेजे की नोक से छेद कर पकड़ लिया है !

वरुण को शोकातुर दशा देख कर कायरों के होश उड़ गये, शस्त्रों को फैंक भागते दृष्टि पड़े, परन्तु योद्धा जन बराबर वार करते रहे, इतने में जय का झण्डा वायु में उड़ता दृष्टि पड़ा, जिसको देख कर वह क्षेत्र जो कुछ काल पहले तलवारों की खटाखट से गूंज रहा था सुनसान हो गया और रावण की सेना जय २ करती हुई अपने स्थान को लौट गई ।

आह ! जिस समय वरुण शिर नीचे किये, उदासीन मुख बनाये पुण्डरीक के साथ रावण के सन्मुख उपस्थित हुआ, सब के दिल इसके बुरे दिन देख दहल उठे ।

ईश्वर करे कि दुःख की घड़ी शत्रु के भाग में भी न आवे वही राजा वरुण है जो कल राज्याधिपति था और आज कैसी हीन दशा में हो रहा है । यद्यदि प्रिय पुत्र का शोक उसके दिल को जला रहा है, पर यह जिगर का लहू पी पी कर दुःख की अग्नि को ठण्डे स्वासों से शीत करता हुआ चुप चाप हाथ जोड़े शिर नीचे किये खड़ा है ।

रावण—(कुछ काल उसकी ओर देखने के पश्चात्) वरुण कहो क्या बात है।

वरुण—शिर नीचे झुका चुप खड़ा है।

रावण—अब चुप क्यों हो तुम भली प्रकार जानते थे कि इन्द्र, यम और कुवेर इत्यादि तो मेरी शरण में आये और तुम ऐसे अभिमानी हो गये। शोक तुम को उन की ओर देख कर भी कुछ विचार न आया, वरन मेरे मन्त्री भेजने पर भी कुछ ध्यान न दिया।

वरुण—(अति धीमी स्वर से) यह सब मेरी ही मूर्खता का फल है मुझ पर दया कीजिये, मैं ने अपने किये का दण्ड पा लिया।

रावण—इतने में ही ? तुम तो कहते थे कि मैं वरुण हूं मुझ को और न जानना। वरुण ने (ठण्डा स्वांस भर कर) लज्जा से शिर नीचे झुका लिया और कुछ उत्तर न दिया तब हनुमान और सुग्रीव इत्यादि ने बीच में पड़ कर बड़ी कठिनता से वरुण को क्षमा दिलाई और आगे के लिये नियम नियत कर वर्ण को सन्मुख कर कहा जब कभी महाराज तुम को याद करें तत्क्षण उपस्थित होना होगा "याद रहे पुनः अवसर न मिलेगा" वरुण इन सब का धन्यवाद करता हुआ दुर्मती नगर को लौट गया और रावण प्रसन्न हो लङ्का को चल पड़ा, और हर एक को पारितोषिक दे वहीं से विदा किया।

उनतीसवां अध्याय

मैं इस को कब तक कुंवारी रक्खूंगी।

हमारा विचार हम को लेकर किष्किंधा नगर जो मदरास के उत्तर पूर्व और हैदराबाद के दक्षिण भाग में रामायण के लेखानुसार योग्य इंजीनीयर विश्वकर्मा के अधिकार में बनाया गया था उस समय पहुंचा है, जब कुछ युवती कन्यायें उत्तम २ चमकीले वस्त्र धारण किये पद्मरागा के कमरे में बैठी हुई बातें कर रही हैं। जिनकी बातलाप सुन कर हमारे कान भी उसी ओर लग गये हैं, सुनिये पद्मरागा बाल सुन्दरी से क्या कह रही है।

*पद्मरागा—सखी! स्त्री और पति का सम्बन्ध राजा और मन्त्री के समान है। जिस घर में यह दोनों प्रसन्न हैं वही स्वर्ग धाम, और एक दूसरे से विमुख रहना मानो वंश हानि और दरिद्र का कारण है, नरकगामी हानि है इस कारण स्त्री तथा पति दोनों का धर्म है कि एक दूसरे के प्रति प्रेम से काम ले। प्राणों से प्रिय जाने यदि कोई ऐसी बात हो भी जावे जो दूसरे के विरुद्ध हो तो उसको त्यागने का यत्न करे। वरन् याद रहे

---

* सुग्रीव की पुत्री का नाम है।

बड़ी कठिनता पड़ेगी। प्रिय प्राण भी दुःख का कारण हो जावेंगे।

बाल सुन्दरी कुछ पूछने को थी कि किसी के आने की आहट जान पड़ी, झिझक कर रह गई और सब बरामदे की ओर देखने लगीं तो राब लज्जित सी हो शिर झुका चुप हो गईं। परन्तु पद्मरागा ने शीघ्रता से बढ़ कर माता को प्रणाम किया और बैठने के वास्ते प्रार्थना की, रानी लड़कियों को देख वहां अधिक ठहरना उचित न जान कुछ सोचती हुई अपने कमरे को लौटी जा रही है, और दिल ही दिल में कह रही है "मैं कब तक इस को कुंवारी रक्खूंगी, यद्यपि यह विचारी बहुत सीधी साधी है परन्तु मेरा धर्म नहीं कि अब चुप रहूं और इसके विवाह की चिन्ता न करूं जब तक सन्ध्या का समय न हुआ रानी इसी चिन्ता में रही, जब सुग्रीव राजमन्दिर में आया तो कहने लगी।

ग्रंथ कर्त्ता—पाठकगण ! आप यह विचार न करें कि पद्म-रागा चातुर है या युवका है जो ऐसी बातों में लगी हुई है नहीं ! कदापि नहीं। यह बड़ी स्वच्छ स्वभाव धर्म के पालने वाली, सुशीला कन्या है, जब कभी इसको सखी सहेलियों से बातें करने का अवसर मिला तब ही उनको शिक्षा और सत्य शास्त्रों का उपदेश देना आरम्भ कर दिया।

रानी—स्वामीजी ! कुछ पद्मरागा का भी विचार है कि नहीं ? उसकी सकल सजाई कन्यायें व्याही जा चुकी हैं और आपने अब तक वर की खोज भी नहीं की।

सुग्रीव—प्रिय जी ! मुझे इस बात का स्वयम् विचार है पर क्या करूं कोई योग्यवर दृष्टि नहीं पड़ता, और ऐसे वैसे लड़के के साथ विवाह करने को दिल नहीं चाहता, क्योंकि इस की सारी आयु का आनन्द हमारी इस समय की सोच और विचार पर निर्भर है।

रानी—जो कुछ आपने कहा सत्य है परन्तु अब चुप रहने का भी समय नहीं। वेद और सत्य शास्त्रों के भी विरुद्ध है। क्योंकि इसका ब्रह्मचर्य पूर्ण हो चुका है।

रानी की बातें सुनकर सुग्रीव अति चिंतित हो गया और बहुत काल तक मौन धारन किये रहा तत्क्षण कुछ विचार दिल में आया तो कहने लगा।

सुग्रीव—(प्रसन्न होकर) आहा ! खूब याद आया पवन का पुत्र हनुमान बड़ा बुद्धिमान और विद्वान है और वीरता में भी निपुण है। उसके गुण और लक्षण देख कर मेरा मन अति प्रसन्न है कदाचित उसका कथन मैंने तुम से भी किया था।

रानी—वही जो तुम्हारे साथ पिछली बार वरुण से युद्ध करने में सम्मिलित था।

सुग्रीव—हां ! वही, वही।

रानी—तो जब आपको उस पर विश्वास है और हर प्रकार से उसकी परीक्षा कर चुके हैं तो अब बिलंब किस बात की।

सुग्रीव—नहीं प्रियाजी ! मैं प्रातःकाल ही मन्त्री को भेज दूंगा आप धैर्य रक्खें।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही एक मन्त्री को रत्नपुर भेज दिया।

तीसवां अध्याय

गृहस्थ आश्रम सब से उत्तम है।

र

त्नपुर के राजमन्दिर के बायें ओर एक अति सुन्दर बारादरी है जिस को पवन जी ने स्थान २ के शिल्पकारों को बुलवा और बहुत सा धन व्यय करके बड़े प्रेम से तैयार कराया है, उक्त बारादरी की छत्त लकड़ी से मढ़ी हुई है और उस पर सुन्दर २ फूल काढ़े हुए और स्थान २ पर शीशे लगे हुए हैं। चूने की भीतें ऐसी साफ़ हैं कि इनको देखने पर संगमरमर लगा हुआ प्रतीत होता है। इन भीतों पर भी चित्रकारी ऐसी सुन्दरता से की गई है कि दूर से गुलजार दिखाई देता है।

आहा! हरे २ पत्तों और पतली कोमल डालियों में लाल बसंती और ऊदे रंग के पुष्प कैसे लुभावने दीखते हैं, और कई पुष्प जो अभी भले प्रकार नहीं खिले परन्तु उस योगी के समान जो परमात्मा के ध्यान में कुछ काल के लिये आंखें बंद कर मग्न रहता है, और तत्पश्चात् प्रेम भरी साधारण दृष्टि से संसार को देखता है थोड़े खिले हुए दिखाई देते हैं, केवल

यह ही नहीं इन पर छोटे २ जंतु भी ऐसी सुन्दरता के साथ दृष्टि पड़ते हैं कि देखने वाला चकित रह जाता है, बीच में लाल मखमली फरश जिस के चारों ओर तिल्ले का काम और मध्य में एक गोल चक्र बना हुआ है, जो यदि मापा जावे तो चार पांच गज से न्यून नहीं, इस पर शिल्पकारों ने तिल्ले के बेल बूटे बना कर शिल्प क्रिया में पूर्ण निपुणता दिखाई है। इस गोल चक्र के उत्तर की ओर एक जड़ाऊ स्वर्ण की चौकी पर हरी मखमल का गदेला बिछा हुआ है और इतलस का गाओ तकिया धरा है, जिस का सहारा लिये और शरीर के निचले भाग पर दोशाला फैलाये पवन जी बैठे कुछ सोच रहे हैं और बाईं ओर प्रधान रत्नवीर कागज हाथ में लिये पढ़ रहा है! और सामने दक्षिण की ओर एक बड़ा दरवाजा आने जाने का है जहां दो ड्योढ़ीवान वरदी पहने खड़े हैं।

एक पुरुष मध्य में आकर श्वेत दाढ़ी, सिर पर गोल चक्र-दार पगड़ी बांधे अंगरखा पहने ढीली धोती को पाओं से फटकारता हुआ आया, और उस बड़े द्वार पर पहुंच ड्योढ़ी-वानों से कुछ पूछ कर बारादरी के भीतर चला गया और झुक कर पवन जी को प्रणाम किया।

पवन जी—(जरा सिर को उठा कर) आहा! चन्द्रगती तुम कहां, बहुत काल पश्चात् तुमको देखा है।

चन्द्रगती-(हाथ जोड़कर) एक आवश्यक कार्य के लिये आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं।

पवनजी—(हाथ का इशारा करके) बैठिये, कहो तुम्हारा राजा तो अच्छा है ?

चन्द्रगती—महाराज सब आपकी कृपा है।

पवनजी-कहिये, वह कौन सा कार्य्य है, जिस ने आपको आने पर तत्पर किया ?

चन्द्रगति-महाराज ! राजा सुग्रीव की बेटी पद्मरागा जो सर्वगुण निधान कन्या है उसके लिये वर की खोज में थे कि कुंवर हनुमान जी की वीरता और गुण श्रवन कर सब ने यही उचित जाना, कि पहले आप से बिनती की जावे, कि आप कुंवर जी के विवाह विषय में क्या विचार रखते हैं।

पवनजी-(प्रसन्न होकर) आहा ! पद्मरागा ! मैं बड़ी प्रसन्नता से उसके साथ अपने कुंवर का विवाह करने को तत्पर हूं।

चन्द्रगती--तो महारज हमारी ओर से भी कुछ विलम्ब नहीं।

उपरोक्त वार्तालाप को सुनकर हनुमान जी ने जो पास ही बैठे हैं न जाने क्या विचार कर या लज्जा से सिर को नीचे झुका लिया है और बड़े धीमे स्वर से कह रहे हैं "महाराज मुझ को विवाह की इच्छा नहीं" ज्योंही इनके शब्द पवन जी के कान में पहुंचे बड़े आश्चर्य से बोले।

पवन जी-क्यों ! क्या कारण, तुम्हारा ब्रह्मचर्य्य पूर्ण हो चुका, शारीरिक मानसिक उन्नति कर विद्या ग्रहन कर चुके हो, फिर गृहस्थ से इनकार क्यों।

हनुमान—इस आश्रम में मनुष्य को बहुत बन्धन पड़ जाते

हैं और कई प्रकार के दुःख होते हैं, इस प्रकार मैं इस में प्रवेश करना ही नहीं चाहता।

पवन जी—बेटा क्या कहते हो ! यही आश्रम सब आश्रमों से उत्तम है, जिस में रह कर पुरुष हर प्रकार का उपकार कर सकता है। ब्रह्मचारी की दशा में तुम कुछ भी नहीं कर सकते, हाँ ! जो बातें इस आश्रम में पुरुष के लिये दुखदाई होती हैं, उनका ध्यान रखना आवश्यक है, सो हमने पहिले ही उनका विचार कर लिया है, ईश्वर की कृपा से वंश अच्छा और आरोग्य है कन्या धर्म के पालने वाली सुशीला और विदुषी है।

हनुमान—महाराज ! जो आप ने कहा सत्य है, परन्तु मेरे मन को विवाह से कुछ घृणा सी हो गई है।

पवन जी-(तेवर बदल कर) कुंवर जी ! बड़े २ ऋषि मुनि इसी आश्रम में उत्पन्न हुए, वेद और शास्त्रों ने इसी आश्रम को सब से उत्तम कहा ! एक यही आश्रम है जिस में लोक और परलोक दोनों सुधर सकते हैं, शोक तुम ऐसे विद्वान होकर इनकार करते हो।

हनुमान जी ने जब देखा कि पवन जी इसी बात पर जोर दिये जाते हैं, और इन की आज्ञा न मानना वेद और शास्त्रों की मर्य्यादा को तोड़ना मेरे जीवन पर धब्बा लाएगा यह सोच कर चुप हो गये।

हनुमान को चुप देखकर पवन जी ने पद्मरागा की प्रतिमा उसके हाथ में देकर कहा "यह बाली किष्किंधाधीश के

भाई राजा सुग्रीव की कन्या की प्रतिमा है, जिसके साथ तुम्हारा सम्बन्ध करने का विचार है" इस बात को सुनकर हनुमान जी के दिल में न जाने क्या विचार आया कि एक बार चन्द्र-गति की ओर देखा और पश्चात् प्रतिमा को पवन जी के आगे रख सिर झुका लिया, बस फिर क्या था, वहीं प्रधान रत्नवीर ने बधाई का शब्द उच्चारण किया और सब ओर से यही शब्द सुनाई दे रहे हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही पवन जी ने हनुमान की प्रतिमा चन्द्रगति को देकर विदा किया और कहा कि शीघ्र विवाह का दिन नियत कर सूचित करे।

इकतीसवां अध्याय

दिल की आशा पूर्ण हुई ।

यद्यपि नगर किष्किंधा के प्रत्येक भवन को इमारत और नगर की बनावट देखने योग्य है, पर हमारा प्रयोजन तो उन राज-भवनों से है जो पोहकरनी के समीप ही हैं ।

आहा ! जैसे पोहकरनी दरवाजे से नगर में प्रवेश किया । एक चौड़ा बाजार दृष्टि पड़ा, जिसके दोनों ओर दुकानें और बड़े २ सुंदर मकान दीख रहे हैं, बाजार की स्वच्छता ऐसी उत्तम है कि एक तिनका भी दिखाई नहीं देता, धूल, मट्टी तो नाम को भी नहीं, बड़ा सुन्दर लाल पत्थर का फरश है, दोनों ओर कहीं २ वृक्ष भी दीख पड़ते हैं, जो बाजार के दृश्य (सीन) को और भी सुन्दर बना रहे हैं, और आने जाने वालों की भीड़ तो अति ही है, थोड़ी दूर और आगे बढ़ कर बाजार का अंत होता है, और एक खुला चौक दिखाई देता है जिस में एक मन लोचक फुलवाड़ी लगी हुई है और नाना प्रकार के सुगंधित फूल खिले हुए दृष्टि पड़ रहे हैं, इस

फुलवाड़ी के ठीक सामने एक फाटक है, जहां दोनों ओर दो सिपाही नङ्गी तलवारें लिये पहरा दे रहे हैं, और दिवारों पर सुनहरी काम ऐसा उत्तम रीति से किया हुआ है कि सूर्य्य के उजाले में उस ओर देखना कठिन है, आंखें चुंध्या जाती हैं, क्या बात जो कोई गूढ़ दृष्टि से उस ओर देख सके, यद्यपि भीतें चूने की बनी हुई हैं, परन्तु इसकी स्वच्छता देखकर संग-मरमर भी लज्जित होता है, इस फाटक के भीतर जाने से दो ऊंचे अति सुन्दर भवन जो एक ही भांति के हैं दृष्टि पड़े, अब हम दायें हाथ के भवन को छोड़ कर बायें की ओर जाकर क्या देखते हैं कि एक दालान में जो अपने निराले ढंग के कारण अद्वितीय है, और पुराने ऋषि मुनियों तथा शूरवीरों के चित्रों से सुसज्जित है, कीमखाब के गद्देले पर राजा सुग्रीव और उसकी रानी बैठे हुए निम्न लिखित बातें कर रहे हैं।

रानी—स्वामी जी ! चन्द्रगति तो अब तक लौट कर नहीं आया।

सुग्रीव—आठ दिन हो गये आज तो अवश्य आना चाहिये था।

रानी—किसी को भेज कर उसके घर से पूछ तो भेजिये, मुझको इस बात की बड़ी चिन्ता लगी हुई है, देखें क्या उत्तर लाता है।

इतने में दरबान ने आकर कहा कि मन्त्री चन्द्रगति सेवा में उपस्थित होने के लिये द्वार पर खड़े हैं।

सुग्रीव-(प्रसन्न होकर) उसको यहां भेज दो।

कुछ काल पश्चात् चन्द्रगति उपस्थित हुआ और हाथ जोड़ प्रणाम कर बोला। महाराज ! शुभ हो, दिल की आशा पूर्ण हुई, यह कह और हनुमान जी की प्रतिमा देकर वहां का सब वृत्तान्त सुनाया और कुछ काल पश्चात् अपने घर को चला गया।

सुग्रीव-(बड़ी प्रसन्नता से प्रतिमा हाथ में लेकर) प्रिया जी ! देखो कैसा सुन्दर युवक है।

रानी—महाराज ! प्रतिमा से तो ऐसा ही जान पड़ता है।

सुग्रीव-प्रिया जी ! अभी बहुत से गुण ऐसे हैं जो इस प्रतिमा से प्रकट नहीं होते, वह देखने से सम्बन्ध रखते हैं सो मैंने उनकी भले प्रकार परीक्षा कर ली है, आप बुद्धवन्ती को यह प्रतिमा दे पद्म के पास भेज कर उनकी सम्मति लें।

पाठकगण ! उसी समय पंडिता बुद्धवन्ती को बुलाकर पद्म-रागा के पास भेजा गया, दैवात् जिस समय बुद्धवती पद्म-रागा के कमरे में गई तो क्या देखती है कि वह अकेली बैठ हुई ऋग्वेद के किसी एक मंडल का पाठ कर रही है, सिर के बाल बिखरे हुए ग्रीवा पर लटक रहे हैं और कुछ सिर को नीचे झुकाने से आगे की ओर पड़कर कपोलों को छिपा रखा है, ज्यूं हीं किसी के आने की आहट पाई, झट बालों को दोनों हाथों से पीछे हटा ओढ़नी को ठीक कर द्वार की ओर देखा तो अपनी पंडितानी को पाया, हंसकर बोली "माता जी आइये" यह कह कर अपने आसन पर बैठा लिया।

बुद्धिवन्ती—बेटी ! यह किसका पाठ करती हो ?

पद्मरागा-(पुस्तक को उसके सामने करके) ऋग्वेद के इस मंडल को देख रही हूं पर इस मंत्र के अर्थ भले प्रकार मेरी समझ में नहीं आते कृपा करके आप बतलाइये ।

बुद्धवती ने पुस्तक को हाथ में लेकर इस मंत्र के अर्थ जो कलाकौशल से सम्बन्ध रखते थे, पद्मरागा को समझाये और तत्पश्चात् हनुमान जी की प्रतिमा दिखला कर कहने लगी ।

बुद्धवन्ती—देखो यह कैसी सुन्दर प्रतिमा किसी वीर पुरुष की है ।

पद्मरागा—हां माताजी ! वास्तव में यह बड़ा शूरवीर जान पड़ता है । इसका नाम क्या है ?

बुद्धवन्ती—हनूमान ।

पद्मरागा—एं ! हनूमान (प्रतिमा को हाथ में लेकर) क्या यह वही है जिसका कथन पिता जी करते थे, कि उन के साथ युद्ध में सम्मिलित था और जिसने वरुण और उसके पुत्र पुंडरीक को पकड़ा था ।

बुद्धवन्ती—हां, वही वही ! क्या तुम इस प्रतिमा को अपने पास रखना चाहती हो ।

पद्मरागा—हां मुझे देदो मैं अपने कमरे में रक्खूंगी । वहां और बहुत से चित्र वीरों और विद्वानों के हैं, ऐसे पुरुष संसार में थोड़े ही होते हैं ।

बुद्धवन्ती—(जरा मुसकराकर) क्या तुम चाहती हो कि इसके साथ तुम्हारा विवाह किया जावे ।

पद्मरागा—(लज्जा से शिर नीचे झुकाकर कुछ काल तक चुप रहने के पश्चात् धीमे स्वर से) माता जी ! पुनः यह बात न कहना मैं विवाह नहीं करूंगी ।

और प्रतिमा को उसके आगे रख दिया !

*बुद्धवन्ती—पुत्री ! क्या कहा, विवाह न करूंगी, भला यह सम्भव है, कि तुम्हारा विवाह न हो क्या तुम्हारी माता यह बात मान सकती है कि तुमको कुंवारी रक्खे ? किसी ने आज तक अपनी पुत्री कुंवारी रखी है, जो वह रक्खेगी ।

पद्मरागा ने सिर झुका लिया, और कुछ उत्तर न दिया ।

बुद्धवन्ती—(गोद में लेकर) मेरी प्यारी पुत्री मुझ से इतनी लज्जा क्यों करती हो ।

पद्मरागा—(बड़े धीमे स्वर से) मैंने तो कह दिया है मुझे विवाह की इच्छा नहीं ।

बुद्धवन्ती—(प्रतिमा पद्मरागा को दिखला कर) पुत्री ! देखो ऐसा योग्य वर मिलना फिर कठिन होगा तुम स्वयं विद्वान हो जरा सोच समझ कर उत्तर दो ।

पद्मरागा—(गोद से निकलकर) माता जी आज आप को क्या हो गया है जो बार बार इसी बात का कथन करती हो ।

यह कहा और प्रतिमा को उसके हाथ से लेकर नीचे रख दिया, और अब तिरछी दृष्टि से उसकी ओर देख रही है ।

---

*यह बुद्धवन्ती पद्मरागा की अध्यापिका है, जिससे वह संस्कृत विद्या की शिक्षा पाती है ।

बुद्धवन्ती—(पद्मरागा के मुख को हाथ से ऊंचा कर) प्यारी पद्म ! क्यों लज्जित होती हो, इस में कोई दोष की बात नहीं ।

यह सुनकर पद्मरागा ने मुस्कराकर मुख फेर लिया तब बुधवन्ती जान गई कि यह इसको चाहती है, पर चूंकि यह बालिका बड़ी भोली है कभी भी अपने मुख से प्रगट न करेगी यह सोचकर पद्मरागा का माथा चूमा, और आशीर्वाद दे उसकी माता को आकर बधाई दी ।

पाठकगण ! इस समय सुग्रीव अपनी आशा को पूर्ण होता हुआ देखकर अति प्रसन्न हुआ, तत्क्षण विवाह की तैयारी की आज्ञा दी गई और घर २ मंगलाचार होने लगा, पण्डित को बुला विवाह की तिथि नियत की गई और टीका दे गजेन्द्र को रत्नपुर भेजा और चन्द्रगति को मोती मंदिर के सजाने की आज्ञा दीगई ।

बत्तीसवां अध्याय

विवाह।

प्रातःकाल का सुहावना समय है, ठंडी २ वायु चल रही है। जिसके मीठे २ झौंके जादू का काम कर रहे हैं परन्तु एक विवाह में सम्मिलत होने की चाहना है जो जगा रही है। और सोने वाले अङ्गड़ाइयां ले लेकर उठ रहे हैं।

अनगिनत हाथी और घोड़े सज सजाकर राज मन्दिर के बाहर खड़े हैं जिन पर विद्याधर* और उनके पुत्र आ आकर आरूढ़ हो रहे हैं! इस समय का दृश्य देखने के योग्य है, आगे आगे हाथियों के सुनहरी हौदों पर छोटे २ बालक बैठे हुए एक दूसरे को छेड़ छाड़ कर कैसे प्रसन्न हो रहे हैं कि क्षण भर तो चैन नहीं लेते। इनके पश्चात् बड़े २ शूर वीरों तथा यौद्धा घोड़ों पर आरुढ़ हैं जिनके घोड़े बहुत चाहते हैं कि वह अपनी तीक्ष्ण गति के कर्तव्य दिखलावें, परन्तु यह उनको आज्ञा नहीं देते और एक दूसरे से ठट्ठा करते हुए जा रहे हैं।

---

*वानर द्वीप में जो पुरुष विद्या प्राप्त करता था उसको विद्याधर की पदवी दी जाती थी।

दूसरे दिन सन्ध्या के समय किष्किन्धा में पहुंचे । बरात के नगर में प्रवेश करते ही सारे स्त्री पुरुष जो चिरकाल से इसकी बाट देख रहे थे एकत्र हो गये, जिस किसी की दृष्टि दुलहा पर पड़ी, आश्चर्य हो मूर्ति बन गया और पहरों उधर ही देखता रह गया, स्त्रियों के लिये जो भवनों की छतों पर खड़ी देख रही हैं हनुमान जी की मोहिनी मूर्ति ने आकर्षण शक्ति से बढ़कर काम किया, ज्यूं ही उनकी दृष्टि इनकी भोली भाली मूर्ति पर पड़ी ऐसी टिकटिकी बंधी कि बालक गोदियों से गिर कर चिल्ला रहे हैं और वह बेसुध देख रही हैं ।

जब बारात राज मन्दिर के समीप पहुंची, राजा सुग्रीव प्रधान और मंत्री इत्यादि को साथ ले शुभ आगमन के लिये आया और मिलनी की रीति को सम्पूर्ण कर मोती मन्दिर में जो पहिले ही से बड़े २ महात्माओं और शूरवीरों के चित्रों से सजाया हुआ था, बारात को उतार दिया, सब से पहिले हनुमान जी को स्वर्ण की एक चोकी जिस पर रेशमी गदेला पड़ा हुआ है ला बिठाया और अब सब बराती बड़ी आन बान से बैठ रहे हैं, कुछ काल पश्चात नाना प्रकार के भोजन, मीठे और लवनीक बरातियों के आगे रक्खे गए जिनका विस्तार यहां लिखना पाठकगण के समय को व्यर्थ गवाना है ।

जब इन उत्तम २ भोजनों से संतुष्ट हो बारात ने हाथ उठाया तो नियत समय समीप देख वेदी के नीचे स्वर्ण की चौकी पर हनुमान जी को ला बिठाया । और सहेलियों ने पद्म-

रागा को स्नान करा वस्त्र और आभूषण पहना हनुमान जी के बाईं ओर बिठला गठ जोड़ा किया ।

इस समय पण्डितों का दुलहा ओर दुलहन को वेदों के अनुसार उनको उनके धर्म से अभिज्ञ करना और स्त्रियों का ईश्वर की स्तुति के भजन गायन कर इन दोनों की दीर्घ आयु के लिये ईश्वर से प्रार्थना करना क्या ही शोभा दे रहा है । आहा ! अब हवन कुण्ड में केसर, कस्तूरी, घी और नाना प्रकार की सुगन्धित सामग्री डाल हवन कर दुलहा और दुलहन के हाथ में धान की फुल्लियां दे भौरियों* को रीति हो रही है, स्त्रियों का वह गीत गाना जिसका सारांश यह है कि "हे मेरे माता पिता वा भाई बन्धू मुझको इस अपरचित पुरुष को जिसको मैंने आगे कभी नहीं देखा और न ही इसके स्वभाव से अभिज्ञ हूं क्यों देते हो" सब उपस्थित स्त्री पुरुषों के हृदयों को छेदन कर आंखों से आंसू बहा रहा है ।

पाठकगण ! छे भौरियों तक तो इस प्रकार के गीत गाती रहीं पर सातवीं भौंरी पर जब उन्होंने यह गीत गाया जिसका सारांश यह है कि 'हे पति मैं अब तेरी हो चुकी हूं। मेरे माता पिता और किसी सम्बन्धी का अब मुझ पर कोई अधिकार नहीं रहा और मेरे जीवन का आसरा आप पर है। चाहे सुखी रक्खो चाहे दुखी । मैं आप की शरण हूं '। पाठक गण ! इन तीनों

*हवन कुण्ड के चारों ओर फिर कर स्त्री पुरुष का शास्त्रानुकूल गृहस्थाश्रम को पालने की प्रतिज्ञा करना ।

ने न केवल सुग्रीव का ही दिल हिला दिया परन्तु सब के नेत्रों से अश्रु बहा दिये ।

जब भौरियों की रीति संपूर्ण हो चुकी, तो पद्मरागा को सखी सहेलियां ले गईं औरहनुमान जी मोती मन्दिर में आ विराजमान हुये ।

तीन दिन तक बरात बड़े सत्कार पूर्वक रक्खी गई किसी को किसी प्रकार की शिकायत का अवसर न मिला, चौथे दिन बेअन्त दहेज दे बरात बिदा करने लगे तो पद्मरागा जो पहिले ही से सोच में पड़ी थी चलने का नाम सुन बेसुध हो धरती पर गिर पड़ी। मोहिनी ने उसी क्षण उठा गोद में बिठा लिया, और बोली, सखी ! क्यों इतनी घबराती है और सुध भुलाती है । सत्य है माता पिता का वियोग किस को भाया है पर क्या करें हम सब के लिए यह दिन आना है, बारी २ ग्रीवा झुका हम सब चली जावेंगी, छुटपन का समय, माता पिता का दुलार जबी याद आयगा अश्रु बहायेंगी कन्यायें माता पिता के घर पाहुनी होती हैं क्या रंक क्या राजा किसी के घर नहीं समाती, हां इतना अवश्य है, माता पिता ने वर घर देखकर विवाह किया तो लड़की सुखी और प्रसन्न रहती है नहीं तो कुढ़ २ कर प्रारब्ध को रोती है ।

प्यारी सखी तुझ को तो घबराना उचित नहीं, अंजनादेवी जैसी सास किसने पाली है जो शील स्वभाव गुणवान और बुद्धिमान तथा सर्वगुण निधान है । प्यारी ! हनुमान जी की

दुलहन कहलाओगी, उनसे प्रीत लगा हम सब को भूल जाओगी।

निर्मला-सखी यही तो पद्मरागा की चतुराई है, कल बाल-सुन्दरी को उपदेश दे समझा रही थी और स्त्री पुरुष का धर्म बतला रही थी, आज अपनी बारी आई तो सोच में पड़ हम को डरा रही है, सत्य पूछो तो यह केवल दिखावा है। दिल में तो प्राण प्यारे की मूर्ति बस रही है, दुलहा की मूर्ति प्यारी है।

निर्मला की बातें सुनकर पद्मरागा ने लज्जित होकर मुख फेर लिया, और धीमी स्वर से कहने लगी "सखी तुमको तो दिल्लगी सूझ रही है" और मेरे जी को बन रही है, मुझ को तो वहां जाना होगा जहां अपना न बेगाना होगा।

इतने में सुग्रीव भवन में आया और पद्मरागा को सोच में देख आंसू गिरा, छाती से लगाकर बोला। बेटी क्यों उदास हो रही है भला तेरा वियोग में सहार सकता हूं, पर क्या करूं परबस हूं संसार की रीति में बन्धा हुआ हूं। मैं तो कुछ भी नहीं बड़े २ महाराजों के घर भी तो कन्याओं की समाई नहीं! तुम स्वयं विदुषी हो मेरे कहने की कुछ आवश्यकता नहीं! परम पिता परमात्मा तुम को सदैव प्रसन्न रक्खें।

यह कहा और पद्मरागा को लाकर सुखपाल में बिठा दिया, और हाथ बांध कर पवन जी और हनुमानजी को इसे सौंपा।

पाठकगण! जिस समय पद्मरागा को सुखपाल में बिठाया गया, सबके आंसू निकल पड़े जूं ही बरात यहां से चली सबके

मुख पर उदासी की घटा छा गई, जहां दृष्टि पड़ी देखते रहे और आंसू बहा मन को धैर्य्य देते रहे।

हां! क्या यह शोकमय अवसर है? जब कि हम अपनी संतान को उस अपरचित जन के साथ शास्त्रों की आज्ञानुकूल विदा करते हैं, जिसकी उसने पहले कभी मूर्ति भी नहीं देखी और उसके सारे आगामी जीवन का आधार उसी पर छोड़ देते हैं!

त्रयस्त्रिंशत अध्याय

बधाई हो डोली आई ।
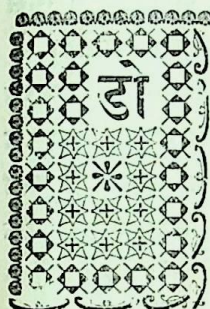
लीं आने का समाचार सुन कर छोटे, बड़े, स्त्री, वृद्ध और युवक रत्नपुर की गली कूचों से निकल निकल कर पूर्व द्वार की ओर जा रहे हैं, पर धनाढ्य पुरुषों की स्त्रियां पालकी में चढ़ और कोई पैदल ही उत्तम उत्तम आभूषण और बहुमूल्य नाना भांति के वस्त्र धारण किये अंजना देवी के राज मन्दिर को जारही है ।

आहा ! अञ्जना देवी का भवन भी एक अपूर्व ढंग का है, पहिले काष्ट का एक फाटक है मानों यही भवन का मुख्य द्वार है, जिस के आगे अन्दर प्रवेश करते ही कुछ बरामदे दीख पड़ते हैं, प्रत्येक बरामदे के साथ एक एक छोटा सा भवन भी दृष्टि पड़ता है । किसी किसी में तो स्त्रियां बैठी दिखाई देती हैं, कोई कोई भोजन बनाने में लगी हैं, कोई आटा गूंद रही हैं, कदाचित् यह उन योधाओं क स्त्रियां हैं जिनकी सेवा का सम्बन्ध इस राजभवन से है । निस्संदेह यही ठीक है वह देखो एक योधा जिसके वस्त्र खूंटी पर टंगे हैं भोजन कर रहा है ॥

इन बरामदों के बीच में से एक और द्वार दृष्टि पड़ता है, जिसके भीतर जाते ही एक पुष्पबाटिका दिखाई देती है, जिस में नाना प्रकार के सुगन्धित फूल श्वेत, लाल, बसंती रंग के खिले हुए दृष्टि पड़ रहे हैं, और ईश्वर जाने इसमें क्या भेद है कि एक बार फुलवाड़ी पर दृष्टि पड़े तो पुनः हटती ही नहीं, और आंखें खुली की खुली रह जाती हैं, जैसे वह नरगिस का फूल सामने दिखाई दे रहा है। इस छोटी सी वाटिका में क्यारियां भी ऐसी उत्तम रीति से बनी हुई हैं कि सैर करते करते मस्तक सुगन्धित और मन प्रसन्न हो जाता है। इसके सामने एक सुन्दर स्थान है जो अञ्जना देवी के भवन के नाम से प्रसिद्ध है, इसकी छत पत्थर की है और चार कंगूरे एक दूसरे के सामने हैं जिन पर स्वर्ण की कलसियां रक्खी हैं। आहा! जहां सूर्य की किरणें इन पर पड़ीं, सहस्रों और उत्पन्न होगईं, दर्शकों को चकाचौंध कर दिया कब सम्भव है कि जो दृष्टि भर कर देख सके।

द्वार में प्रवेश करते ही एक छोटा सा गृह मिलता है, इस के पश्चात् एक बड़ा कमरा और आगे जाकर एक बड़ा दालान है, जिसकी बनावट में बहुत निपुणता दिखाई गई है, और नीचे एक बहु मुल्य गालीचा बिछा हुआ है, जिस पर अञ्जना देवी, रानी केतुमती और बहुत सी स्त्रियां बैठी हैं और कई अभी आ आ कर बैठ रही हैं, और गा बजा कर मन प्रसन्न कर रही हैं, इतने में दासी ने आकर कहा "बधाई हो डोली आई"।

आहा ! इस बात के सुनते ही अंजना देवी का हृदय प्रसन्नता के मारे छाती से उछल पड़ा, उसी समय ईश्वर के गुण गाती हुई सम्पूर्ण उपस्थित स्त्रियों के साथ फुलवाड़ी तक आई कि बड़ी धूम धाम के साथ हनुमान जी दुल्हन के साथ सुखपाल में बैठे हुए द्वार पर पहुंच गये, इनको देखते ही अंजना देवी का मन गद् गद् हो गया और आनन्दित हो बारम्बार ईश्वर के आगे सिर झुका उसका धन्यवाद कर रही है, बलन्तमाला ने सहारा देकर पद्मरागा को सुखपाल से नीचे उतारा और अञ्जना सब उपस्थित स्त्रियों के साथ ईश्वर के गुणानुवाद के गीत गाती हुई पद्मरागा को दालान में लाई, आहा ! इस समय चारों ओर से बधाई के शब्द सुनाई दे रहे हैं और प्रत्येक स्त्री दुल्हन को देख प्रसन्न हो उसकी प्रशंसा कर रही है ।

अञ्जना मन में मग्न हो गाती मङ्गला चार ।
देन बधाई नगर की आई सब मिल नार ॥
धन्य २ तुझको अञ्जना धन्य यह हनु कुमार ।
ऐसी सुन्दर पद्मिनी जिसने ब्याही नार ॥
जा के नैन मृग से अधिक हैं मस्तक चन्द्र समान ।
दुल्हा दुल्हन प्यारी रस भरे खुश राखे भगवान ॥

पाठकगण ! यद्यपि यह दालान बहुत लम्बा चौड़ा है, परन्तु इस समय तो तिल भर स्थान खाली दृष्टि नहीं पड़ता

सम्पूर्ण स्त्रियों से भरा हुआ है हमारे वीर जनरैल भी न जाने कहां और किस समय चले गये जो दृष्टि नही पड़ते, इस कारण स्त्रियों की इतनी भीड़ देखकर हमको भी लज्जा आती है और सभ्यता से भी दूर हैं कि अब हम यहां अकेले ठहरें, इस कारण सब को प्रणाम करते हुए कुछ काल के लिये जाते हैं ।

(शेष दूसरे भाग में दर्शन करेंगे)

॥ ओम् शम् ॥

लेखक—

ठाकुर सुखरामदास चौहान ॥
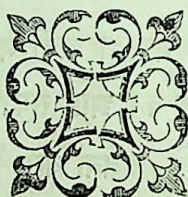
हनुमानजी का जीवन चरित्र

द्वितीय भाग

३४वां अध्याय

बदला लेने का विचार।

दोहा—प्रभु सिमरण परिणाम है, देखो परम अनूप।
जन समुदाय निरासता, धारे आज्ञा रूप॥

षाढ़ का मास है मध्याह्न का समय है जब कि सूर्य्य भगवान सृष्टि को अपने प्रबल वेग से तपा रहे हैं, और उसकी तीव्र किरणें भूमि से मिल रही हैं, मनुष्य तो क्या पशु भी इस समय गमन से व्याकुल हो रहे हैं, जो वस्तुएं सूर्य्य के विरुद्ध खड़ी हो जीवों की रक्षा के लिये कटिबद्ध हैं, वह बस्तियों में तो गृह मन्दिरादि हैं, और वनों में वृत्त हैं। यद्यपि सूर्य्य ने उनको भी अपने सन्तप्त वायु रूपी थप्पड़ मार २ कर उनको निज धर्म्म छुड़ाने का यत्न किया, परन्तु महात्मा पुरुषों के समान उन्होंने

अपने मन में दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है कि जब तक हम में प्राण है उपकार को नहीं छोड़ेंगे, और इनकी दृढ़ प्रतिज्ञा देख प्रकृति माता ने भी सूर्य्य को काल बन्धन में ऐसा जकड़ा कि वह निराश होकर पश्चिम में जा छिपा।

अब दिन का चौथा पहर है, जब कि सब जीव फिर अपने २ कामों में लग गये हैं, और वह सब पशु पत्ती गण जो थोड़े समय पहिले अपने २ घोसलों में दुबके पड़े थे अब इधर उधर फिरते हुए दिखाई देते हैं, ऐसे समय में हमारा विचार जिधर जाता है वह ऋष्यमूक पर्वत की वह समतल भूमि है जो किष्किन्धा नगर से थोड़ी दूर पर वर्तमान है, और जहां एक सामान्य सा मन्दिर बना हुआ है, जिस को आजकल के समय के अनुकूल एक झोंपड़ो कहें तो अनुचित नहीं, इसके चारों ओर परम सुन्दर हरित वृक्ष लहलहाते हुए देख पड़ते है, जिन पर नाना भांति की बेल चढ़ी हुई इसकी शोभा को और भी बढ़ा रही हैं, इन बेलों के भांति २ के बसन्ती ऊदे, हरित और श्वेत फूल कैसे दिव्य हैं, यद्यपि यह दिन को धूप के अत्याकर्षण से किञ्चित मुर्झाये हुए हैं, परन्तु फिर भी मनुष्यों के मन को मोहित कर रहे हैं, इस मन्दिर के ठीक सम्मुख एक चबूतरा है जो धरातल से लग भग एक हाथ ऊंचा है, इस पर कुछ मनुष्य चकित से हो सिर झुकाये वार्तालाप कर रहे हैं, इन में सब से अधिक चिन्तातुर जो प्रतीत होता है वह राज्य वंश का एक युवक है,

और जिससे यह वार्तालाप कर रहा है वह भी बली और नम्रभाव होने से इसी के तुल्य प्रतीत होता है, परन्तु अब तक तो सुख शांति है।

आहा! इस प्रथमोक्त युवक का बार २ हाथ उठा आकाश की ओर देखना और माथे पर हाथ लगा कर ठण्डी सांस का भरना श्रोता के मन को कम्पायमान कर व्याकुलता के समुद्र में डुबा रहा है। इन चिन्हों को देख हम से भी न रहा गया, और इसकी वार्तालाप सुनने की लालसा से और अपना प्रण पूर्ण करने के अर्थ जो प्रथम भाग में अपने पाठकों को सुना चुके हैं आगे बढ़ें। आहा! यह तो हमारा वीर हनुमान है, और वह शूरवीर इसका श्वसुर सुग्रीव है। जो अपने भाई बाली के अत्याचार से दुःखित हो घरघाट छोड़ वरञ्च परम प्रिय जीवन से हाथ धो छिपकर यहाँ आ बैठा है, और इस समय हनुमान से कह रहा है, "क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता, कि मुझे अब क्या करना चाहिये, तुमको यहां पर आने का इस लिये कष्ट दिया था कि तुम ही मेरी सहायता करोगे, परन्तु हा! खेद! मेरा विचार झूठा निकला, तुम भी उसके सन्मुख होने की शक्ति नहीं रखते।

हनुमान—(कुछ सोचने के अनन्तर) यदि यही बात है तो मैं राजा रावण से सहायता की प्रार्थना क्यों न करूं, पूर्ण निश्चय है कि वह मुझे निराश न करेगा।

सुग्रीव—क्या कहा? रावण वह तो बाली के नाम से कांपता

है, युद्ध करना तो कहां यदि मान भी लें कि आप लोगों की सहायता से उसे दमन भी कर लें तो मुझे सिवाय अकृत कार्य होने के और क्या प्राप्त होगा ? क्या आप को विदित नहीं कि वह कैसा व्यभिचारी मनुष्य है, समस्त सृष्टि में इसका कोलाहल मचा हुआ है, अभी थोड़े दिन ही व्यतीत हुए हैं कि वह कई एक स्त्रियों को बल से पकड़ कर लाया था, कोई ऐसा पुरुष नहीं जो उसके अत्याचार से दुःखी न हुआ हो, परन्तु वह दीन कर ही क्या सकते हैं ? और उनकी पुकार सुनने वाला भी कौन है ? दूर कहां जाते हो, इन्हीं दिनों की घटना है कि मैं यहीं बैठा अपनी आपत्ति को याद कर ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था कि अचानक एक स्त्री के रोने चिल्लाने का शब्द आकाश मार्ग से मेरे कानों में पड़ा ज्यों ही सिर उठाकर देखा तो उसी दुष्ट को पाया, कि एक सुन्दरी स्त्री को विमान में बैठाये लिये जा रहा है, पता नहीं कि उस स्त्री ने क्या सोच कर वह वस्त्र (अंगुली से दिखला कर) जिसमें कुछ भूषण भी बंधा था, नीचे फैंक दिया, इस दशा में क्या तुम समझते हो कि मेरी स्त्री को जो अद्वितीय स्वरूप वान है छोड़ जावेगा, नहीं ! कभी नहीं ! वरञ्च वह उसे देख मेरे रुधिर का प्यासा हो जावेगा।

सुग्रीव अभी अपने कथन को समाप्त भी नहीं करने पाया था कि दो पुरुष धनुषधारी सामने से उसकी ओर आते देख पड़े, जिनको देखकर वह विस्मित सा हो गया, और चकित हो हनुमान से बोला।

"देखो तो वह सन्मुख कौन आ रहे हैं "। कृपा करके शीघ्र जाकर देखो कि कहीं बाली के गुप्तचर तो नहीं।

३५वां अध्याय

ईश्वरीय सहायता।

ईश्वर जिसे स्वरूप दे, क्या भूषण का काम।
देखो शोभा चन्द्र की, नहीं भूषण का नाम॥

देखो वह कैसा सुन्दर दर्शनीय युवक है, वह समस्त गुण जो कि शूरवीर सेनापतिमें होने चाहियें वह सब इस में विद्यमान हैं, यद्यपि लक्ष्मण जी मुनि भेषधारी हैं, अर्थात मृगछाला ओढ़े जटाजूट धारी हैं, परन्तु धनुष को कैसी विचित्र रीति से कन्धे पर धरे हैं, अनुमान से विदित होता है कि इस समय इनके नेत्र किसी को ढूंढ रहे हैं, ओहो इनके साथ श्री महाराज रामचन्द्र की ओर तो देखो, यद्यपि इनका वर्ण लक्ष्मण जी से सांवला है, नहीं नहीं श्याम, परन्तु अतीव मनोहर है, इनके मुख से देखने को तो मन ही नहीं भरता, नेत्रों की कृष्ण वर्ण पुतली फिरने का नाम ही नहीं लेती, निस्संदेह गुदड़ी में भी लाल छिपे नहीं रहते, देखने में तो सिर पर जटा जूट, कन्धे पर मृगछाला ओढ़े हैं, परन्तु इनका बिशाल

मस्तक, प्रसन्न मुख, मृग सरीखे नेत्र देखने वाले के मन की चञ्चलता को स्थम्भन कर देते हैं, इनका दिव्य रूप कुंदन के समान चमक रहा है, श्री पिता जी की चिन्ता, सम्बन्धियों का विछोड़ा, पड़ोसियों का वियोग और प्रिय पत्नी जी के ऐसे निर्जन बन में यकायक लुप्त हो जाने पर भी, इस धर्मवीर की आकृति में किञ्चित् विपर्य प्रतीत नहीं होता; पाठकगण ! आप चकित होंगे कि रामायण के कर्त्ताओं ने तो श्री रामचन्द्र जी की अवस्था शोकास्पद व चिंतायुक्त वर्णन की है, तो फिर हम यह क्या लिख रहे हैं, नहीं २ यह उन की भूल है और उस महात्मा की प्रतिष्ठा में एक कलंक है, क्योंकि श्रीमहाराज रामचन्द्रजी में एक शक्ति काम कर रही थी जिसने उन को किसी अवस्था में भी अकृतकार्य तथा मुखारविन्द की झलक को विकृति नहीं होने दिया। वह शक्ति पवित्र वेद का यथार्थ ज्ञान था, यद्यपि उन को हजारों आपत्तियें झेलनी पड़ीं परन्तु उन्होंने क्षण मात्र के लिए भी धर्म नियमों का त्याग नहीं किया, वरञ्च अपना कर्म काण्ड निरन्तर करते रहे, जिस की साक्षी रामायण में भी मिलती है, तो फिर हम क्योंकर अनुमान कर सकते हैं कि वह मनुष्य जो संसार में इतनी महत्वता प्राप्त करे कि ईश्वर का अवतार माना जाये, वह कामिक वृत्ति के आधीन हो और बावलों के सदृश लज्जायुक्त वचन कहता चिल्लाता और रुदन करता फिरे, इस विषय में ग्रन्थ-कर्त्ताओं की भूल है कि जिन्होंने अपने पुस्तकों को सरस

बनाने के लिए ऐसी कथायें वर्णन करदी हैं, महाराज रामचन्द्र जी तनिक भी नहीं घबराये, वरञ्च अतीव गम्भीरता से सीता महारानी को ढूंढते रहे चूंकि हमारा विषय यहीं तक निबद्ध है, इसलिए इस विषय का यहीं तक वर्णन कर प्रकृत अनुसरण करते हैं।

श्रवण करो! लक्ष्मणजी क्या कह रहे हैं।

लक्ष्मण—(ठण्डी सांस लेकर) "हे जनक दुलारी! तू ने संसार के समस्त ऐश्वर्य को त्याग कर इस बन में हमारा संग स्वीकार किया था, आज विदित नहीं कि तू किस दशा में और किस स्थान में है, हाय! वह कैसा बुरा समय था जब कि तुम मुझको श्री रामचन्द्रजी की सहायता के लिये जाने को उकसाती थीं, हा! मैंने भी किञ्चित विचार न किया, तेरी आज्ञा को शिरोधार्य कर उस माया की ध्वनि पर चला गया, ओह! मैं आप ही दुर्भाग्य दुर्बुद्धि हूं जो मान्यास्पद भ्राता की आज्ञा को न माना और तुम को आपत्ति में फंसाया और अपना मन उनकी दृष्टि से दूर कर लिया" इतना कह कर मूर्छित सा हो गया।

रामचन्द्रजी–' लक्ष्मण! अब विशाद व शोक करने से तो कुछ लाभ नहीं होगा, देखो यह समय चिंतातुर होने का नहीं है, वरञ्च धैर्य और सन्तोष का समय है क्योंकि जो कार्य मन की दृढ़ता से होते हैं, वह चिल्लाने व रुदन करने से कदापि नहीं होते हैं, स्मरण रहे कि जो मनुष्य आपत्ति का सामना

धैर्य धार कर करता है, वही कृतकार्य होता है, निस्सन्देह होता है परन्तु उद्यम भी तो चीज है, हां ! इस के सोचने के लिये मनुष्य को बुद्धि की आवश्यकता है और वह तब हीं प्राप्त होती है, जब मस्तिष्क चिन्ता विहीन हो, तुम्हारी यह वाल्य क्रीड़ा मेरे धैर्य और उद्यम में विघ्नकारी होगी इस में किञ्चित सन्देह नहीं कि वह प्राणप्यारी हम से बिछड़ कर उस दुष्ट के पंजे में फंस गई, परन्तु क्या यह आवश्यक है कि हम भी निरासता के विचारों को अपने मन में ठान कर आलसी बन जावें ? नहीं २ ऐसा न करो सन्तोष और धैर्य के साथ उस के छुड़ाने का यत्न करो ।

लक्ष्मण-(नाराज से होकर) 'जो कुछ आपने कहा सब सत्य है परन्तु मैं क्या करूं ? यह मेरे अधीन नहीं है मेरे हवास उड़े हुए हैं, और कुछ समझ में नहीं आता ।

इतने में दाईं ओर से एक मनुष्य (हनुमान) प्रकट हुआ और सांस-निवा नम्र भाव से हाथ जोड़ कर आ खड़ा हुआ, रामचन्द्र जी ने पहिले तो उस को शिर से पांव तक अपनी दृष्टि से जांचा और फिर कहने लगे ।

रामचन्द्र—भाई तुम कौन हो और हम से क्या चाहते हो ।

हनुमान—(हाथ जोड़ कर) महाराज ! मैं एक विदेशी यात्री हू आप के दिव्य रूप को देख कर विदित होता है कि निस्सन्देह आप किसी राजवंश से हैं, परन्तु असहाय सामग्री हीन देख कर बुद्धि चकित होती है, इस का क्या कारण है, कृपा

करके अपने हाल से सूचित कीजिये और मेरे सन्देह को निवृत्त कीजिये।

रामचन्द्र जी—हम दोनो अयोध्या नरेश राजा दशरथ के पुत्र हैं (इशारा करके) इस का नाम लक्ष्मण और मेरा नाम रामचन्द्र है पिता जी की आज्ञा से १४ वर्ष के लिये बनवास स्वीकार किया है, (लक्ष्मण जी की ओर निहार कर) इस परम प्रिय भ्राता ने भी साथ दिया और धर्म पत्नी जी भी वियोग को असह्य जान कर संग आईं, १३ वर्ष तो आनन्द पूर्वक व्यतीत हो गये परन्तु अब १४वें वर्ष इस प्रान्त में यह आपत्ति आन पड़ी है कि वह पतिव्रता धर्म पत्नी लुप्त हो गई है। बहुत से यत्न व तलाश से जटायु नामी एक पुरुष से मालूम हुआ है कि लंकाधीश रावण उस को विमान में बैठा कर ले गया।

हनुमान जी ने यह बातें सुन कर श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में सीस नवाया परन्तु उन्होंने झट उठा कर उस को छाती से लगा लिया और कहने लगे।

"आप पहिले बताये कि आप कौन हैं" ?

हनुमान—महाराज ! पंपाझील और इस के इतस्ततः के पहाड़ी देशों का मालिक किष्किंधा नरेश महाराज बाली है, और उसका छोटा भाई सुग्रीव मेरा श्वसुर है, इस के संग बाली का ऐसा वैर भाव है कि उसने उसका घर बार छीन कर घरसे निकाल दिया है और वह दीन प्राण बचाकर इस कुटिया में छिपा पड़ा है। क्योंकि, वह युद्ध करने की सामर्थ्य नहीं रखता

आपने जो रावण के विषय में सुना है वह वास्तव में सत्य है, सुग्रीव ने भी उसको अपने नेत्रों से देखा है और उस पतिव्रता स्त्री का एक दुपट्टा और कुछ भूषण भो यहां पड़े हैं, जिन को उसने चलते हुए विमान से न जाने क्या जान कर स्वयं गिरा दिया था, "यदि आप सुग्रीव की इस आपत्ति काल में सहायता करेंगे तो पूर्ण विश्वास है, कि वह राज्य पाकर आप के इस कार्य में अवश्य सहायता करेगा"।

हनुमान जी के वचन सुन कर महाराज रामचन्द्र बड़े प्रसन्न हुए और* लक्ष्मग जी को ओर निहार कर उस की श्लाघा करने के अन्तर बोले।

रामचन्द्रजी—इस बात का तो कुछ विचार नहीं चाहे वह हमारी सहायता करें या न करें परन्तु वास्तव में यदि उस के साथ अन्याय किया गया है और बाली इस अत्याचार का कर्ता है जैसा कि तुम वर्णन करते हो तो हम क्षत्रिय हैं, हमारा यह धर्म है कि आपत्ति प्राप्त निर्बलों की सहायता करें। यह कह कर आगे बढ़े।

---

*इस समय रामचन्द्र जी ने जो श्लाघा हनुमान जी की करी, यह विचारणीय है वह कहते हैं, हे लक्ष्मण जी शास्त्र कारों ने पण्डितों और ब्राह्मणों के जो वर्णन किये हैं वह सब हनुमान में प्रतीत होते हैं, इनकी बात चीत से प्रतीत होता है कि यजुः ऋग् और सामवेद के ज्ञाता हैं और व्याकरण भी भली भांति जानते हैं (देखो बाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग ३)

जब सुग्रीव ने हनुमान जी को प्रसन्नता पूर्वक आते देखा तो शीघ्रता से स्वागत के लिये आगे बढ़ा और हनुमान जी से उनका हाल सुनकर अति प्रसन्न हुआ। श्री रामचन्द्र जी से आलिङ्गन कर फिर लक्ष्मण जी से मिला और वार्तालाप करता हुआ इनको निज भवन में ले आया और दुपट्टा और भूषण दिखा कर शोक जनक वचन कहने लगा, फिर श्री रामचन्द्र जी को अपनी सब अवस्था सुनाई।

जब नवीन प्रेम की वार्तालाप समाप्त हुई तो हनुमान जी ने देश रीति अनुसार अग्नि प्रदीप्त की, जिसकी प्रदक्षिणा कर रामचन्द्र जी और सुग्रीव ने मैत्री भाव का प्रण किया, दूसरे दिन रामचन्द्र जी ने बाली से युद्ध करने के लिये सुग्रीव को उद्यत किया और आप भी सहायता के लिये तैयार हो गये।

छत्तीसवां अध्याय

बुराई का परिणाम ।

जो दुःख देवे पर को जग में सो सुख पावे कैसे ।
सुखराम दास यह अटल नियम है, पावे वह दुःख वैसे ॥

प्रातःकाल का सुहावना समय है, तारागण गगन मंडल में चमकते हुए दिखलाई दे रहे हैं, अमृत वेला की शीतल मन्द सुगन्ध पवन सोने वालों पर योग निद्रा का बल दिखला रही हैं, जिससे जाग्रत होना तो दूर रहा, वह करवट लेना ही नहीं चाहते, परन्तु उन महात्मा जनों की आत्मा जिनको ईश्वर दर्शन की लालसा है, उसकी कुछ भी परवाह न कर गद गद ध्वनि से कह रहे हैं, कि 'दुर्लभ समय है फिर हाथ न आवेगा इसको व्यर्थ न खोवो" इस प्रेरणा को पाते ही महात्माजन तत्काल उठ कर आवश्यकीय शारीरिक धर्म्म से निपट स्नान के अनन्तर नित्य कर्म्म सन्ध्या बंदनादि में लग जाते हैं, वैसे ही किष्किन्धाधीश राजा बाली भी अपने नियमानुसार उठा और शारीरिक क्रियाओं से निपट स्नान के निरन्तर संध्योपासना में बैठ गया और नित्य

कर्म करने के अनन्तर एक आवश्यक कार्य्य के लिये रानी तारावती के राजमहल में गया, अभी उससे कुछ कहना ही चाहता था कि एक दासी ने आन कर कहा।

"महाराज! न जाने आज सुग्रीव के मन में क्या विचार आया है, कि ऐसे अयोग्य वचन आपके विषय में द्वार पर खड़ा कह रहा है, जिनको मुख से निकालते ही मुझे लज्जा आती है, ऐसा जान पड़ता है कि वह अपने जीवन से निराश हो गया है।"

दासी के यह वचन जिनको मृत्यु का सन्देशा कहें तो अत्युक्ति नहीं, सुनते ही बाली का मुख क्रोध से लाल हो गया, शिर से पांव तक कांपने लगा, रुधिर नाड़ी २ में वेग दिखाने लगा और वह शत्रु को दण्ड देने के लिये घर से बाहर निकला। यद्यपि तारावती द्वार तक उसके पीछे २ कहती चली आई कि "स्वामी जी! सुग्रीव को कोई महान् सहायता प्राप्त हो गई है, अन्यथा उसको यह साहस कभी न होता कि आप को इस भांति ललकारता, आपको इस समय जाना उचित नहीं" परन्तु वह किसी बीत की परवाह न करता हुआ सुग्रीव पर जा लपका, जो उसको देखते ही वहां से भागा और फिर दोनों दृष्टि से लोप हो गए।

रानी तारावती चकित सी होकर दासियों सहित निज भवन में आकर बैठ गई, और यद्यपि उसकी सहवासिनी सहेलियां इधर उधर वार्तालाप कर और कई प्रकार की बातों से उसकी सांत्वना करना चाहती हैं, परन्तु उसका मन किसी की

बात को नहीं सुनता और सुग्रीव की बात को स्मरण कर चिंता सागर में डूब रही है, अभी थोड़ा काल ही व्यतीत हुआ था कि कुछ कोलाहल रानी को सुनाई दिया, वह शीघ्रता से उठ कर पूछना ही चाहती थी कि झट किसी ने कह दिया कि "हां ! ऐसा बलवान राजा बाली क्षण में मारा गया" यह सुनते ही रानी के नेत्रों के आगे सरसों फूल गई. शिर चक्कर खा गया, वह शिर को थाम कर नीचे बैठ गई, रुधिर जहां घूम रहा था वहीं जम गया, जब कुछ चैतन्यता आई तो मृतक स्वामी के देखने के लिये दौड़ी गई और बेसुध होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, परन्तु दर्शनाभिलाषा ने सब को पराजय कर अपना ही वेग दिखलाया, अब रानी शीघ्रता से कुछ सहेलियां के संग जिनके नेत्रों से अश्रुधारा मेघ के समान टपाटप बरस रही थी उसी ओर को जा रही है, जिधर बहुत से जन समुदाय एकत्रित थे। हा ! क्या बाली मर गया? नहीं ! नहीं !! अभी तो वह जीता है, परन्तु रामचन्द्र जी के एक ही बान ने उसको बेसुध कर दिया है और कुछ क्षण का मेहमान है।

जब तारा बाली के निकट पहुंची तो उसकी शोचनीय दशा और अपनी आगामी आशाओं का विनाश देख मूर्छागत होगई। जीव से निराश बाली ने खेदयुक्त दृष्टि से तारा और अंगद की ओर देखा और फिर मूर्छित हो गया, थोड़े काल के अनन्तर जब सुध आई तो सुग्रीव की ओर देखकर कहने लगा।

बाली—"सुग्रीव यद्यपि तू ही मेरी मृत्यु का कारण है और

मेरा हृदय तेरे इस कर्म से चकनाचूर हो रहा है, तथापि यह मेरी अन्तिम अभिलाषा है जिसको पूर्ण करने के लिये तुझ से आशा रखता हूं, और यह यह है कि मेरे पीछे तारा और अंगद के रक्षक बने रहना और उनको किसी प्रकार से दुःखी न होने देना। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अंगद भी तेरी आज्ञा भंग न करेगा, यह कह ही रहा था कि मृत्यु ने बाली के जीवन दीपक को ठंडा कर दिया और वह सदेव के लिये गाढ़ी निंद्रा में सो गया।

जब तारा को किञ्चित् सुध आई तो स्वामी के प्रेम के वेग से लज्जा की ओर तनिक ध्यान न दे पति की लाश से झट चिपट गई, और बड़े जोर से चिल्ला कर कहने लगी। "प्राण पति यह तुम्हारी गति कैसे हुई ?" परन्तु जब कुछ उत्तर न मिला तो उसे निश्चय हो गया कि मेरे प्राण पति के प्राण पखेरू शरीर रूपी पिंजड़े से उड़ गये, यह देखते ही तारावती शिर पीट २ कर दुहाई देने लगी, पति प्रेम ने उसके हृदय के भीतर अग्नि जला दी और निराशा अपना प्रबल वेग दिखाने लगी, अनुमाद उमड़ने लगा, लज्जा दूर भाग गई, दुपट्टा शिर से उतर कर कंधों पर आ पड़ा, नग्न शिर हो मृतक पति से लिपट गई।

तारा की यह दशा और बाली को मृत्यु शय्या पर पड़े देख सुग्रीव के मन की बाग पलट गई, और भ्रातृ प्रेम ने अपना जोश अंकुरित कर दिया, यकायक उसका दिल भी धड़कने लगा, हृदय फटने लगा, निराशता निर्दयता को कम्पायमान

करने लगा, तब उसे वास्तविक समाचार विदित हुआ और कहने लगा कि हाय क्या था और क्या हो गया। परन्तु इस समस्त आपत्ति का मुख्य कारण आपही था अतः इन सब विचारों को अपने मन ही मन में दमन कर गया, अश्रुपात बहिर्मुख हो उसको धैर्य दिलाने के स्थान अन्तर्मुख हो चिंता अग्नि पर पड़ कर हृदय क्लेश की रेल को भली भांति निकाल मस्तिष्क की ओर चढ़ाने लगे और इसके शिर को ऐसा चकरा दिया कि बेसुध हो भूमि पर गिर पड़ा और बेबस होकर चिल्ला उठा "हाय बाली तू मुझ से सदैव के लिये बिछुड़ गया" कुछ काल तो ऐसे ही कोलाहल मचता रहा, फिर जब ,अंगद दृष्टि पड़ा तो उसको गले से लगा लिया और फूट २ कर रोने लगा, इनको महान् चिन्तातुर तथा दुखित देख रामचन्द्र आगे बढ़े और सबके दुःखित तथा व्याकुल हृदयों को अपने अमृत मय बचनों से ठंडा कर बाली की अन्त्येष्टि क्रिया के लिये सब को उद्यत किया।

चौपाई

बिन जगदीश सकल जग माहीं, स्थिर रहा कोई नर नाहीं।
राजा रंक और नर नारी, काल ग्रास किये सब भारी॥
धन सम्पत का करो न माना, स्थिर रहा न कोई निदाना।
किये नाश क्षण में बड़ भागी, जपी तपी और रागी बागी॥

जब इस कार्य्य से अवसर पाया तो दूसरे दिन लक्ष्मण जी ने सुग्रीव को राज्य सिंहासन पर बैठा अंगद को युवराज नियत किया, राज्याधिकारियों ने मर्यादानुसार राज्य भेंट दी, घर २ हर्ष वाद्य बजने लगे और लक्ष्मण जी के इस श्लाघनीय कार्य्य की सब बड़ाई करने लगे और धन्यवाद देने लगे।

दूसरे दिन सुग्रीव राज्याधिकारियों को संग लेकर श्रीराचमन्द्रजी के चरणों में उपस्थित हो कहने लगा।

सुग्रीव—आपके इस अनुग्रह का में अतीव अनुग्रहीत हूं, परन्तु क्या करूं कि ऋण मोचन की सामर्थ्य मुझ में नहीं'यह कह कर रामचन्द्र जो के चरणों में गिर पड़ा, परन्तु उन्होंने तत्काल उसे उठाकर अपने गले से लगा लिया!

रामचन्द्र—"तुम किस विचार में हो , यह कोई तुम पर अनुग्रह नहीं, परस्पर आपत्ति काल में सहायक होना मानुषी धर्म है, निर्बल को बलिष्ट के अत्याचार से बचाना क्षत्रिय धर्म है, फिर बताओ कि अनुग्रह किस बात की हुई"।

सुग्रीव—(कुछ काल चुपके रहकर) " अच्छा जो कुछ आपने कहा सत्य और ठीक है, परन्तु मैं कदापि सह नहीं सकता कि सीता महारानी दुःख और चिंता में पड़ी हों, और हम उनको क्लेश से निकालने का यत्न न करें, यदि आज्ञा हो तो उस अदूरदर्शी रावण पर सेना लेकर चढ़ाई करें क्योंकि उस सतोगुण की मूर्ति से कार्य निकलना कठिन है।

रामचन्द्र—(कुछ हंसकर) "ऐसी शीघ्रता ! वर्षा ऋतु में शास्त्रकारों और सामयिक वैद्यों ने यात्रा की आज्ञा नहीं दी, इस लिये अभी हम को मौन धारण करना चाहिये, हां इस अवसर में तुम सेना और रसद आदि का प्रवन्ध कर लो"।

सुग्रीव—"जो आज्ञा"! यह कह कर ग्राम की ओर चला आया। हनुमान, अंगद, नल, नील को बुला कर युद्ध की सामग्री एकत्र करने को नियुक्त किया और आप भी इस कार्य में प्रवृत हो गया।

सैंतीसवां अध्याय

हनुमानजी की वक्तृता और रावण के नाश युक्ति

दिन का तीसरे पहर का समय है जब कि महा शैल पर्वत पर जोकि कृष्णा नदी के दक्षिण और तुङ्गभद्रा के उत्तर में विराजमान है एक विचित्र दृश्य दिखाई दे रहा है, इस के शिखर पर खड़े होकर देखने से चारों ओर वन ही वन दिखाई देते हैं, परन्तु तनिक दत्त चित्त होकर देखें तो असंख्य बस्तियें भी दिखाई देती हैं, जो इन जंगली वृक्षों की ओट में छिपी हुई हैं, और यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देती परन्तु अनुमान से जान पड़ता है कि दक्षिण की बस्तियों से अवश्यमेव इधर को कोई मार्ग आता है, क्योंकि दूर तक वृक्ष परस्पर मिलाप को छेदन करते हुए चले गये हैं, या यह समझ लो कि एक गली सी भासती है, निःसंदेह हमारा अनुमान ठीक है, वह देखिये ! बहुत से मनुष्य वार्तालाप करते हुए उधर से आ रहे हैं, और अब यहां पर पहुंच कर दरी आदि बिछा रहे हैं, थोड़ी देर में मनुष्यों का इतना जमघट्टा हो गया कि फरश रुक कर भूमि पर बैठने की

प्रेरणा कर रहा है और मनुष्य अभी अपने आगमन वेग के प्रवाह को बन्द नहीं करते, जितने मनुष्य यहां पर सुशोभित हैं सब के सब प्रसन्न वदन हैं और सब इस प्रतीक्षा में हैं कि देखें यह युवक कौन सी ऐसी बात सुनाता है, जिस के लिये सब बाल, वृद्ध सभी निमंत्रित किये गये हैं।

इतने में कुछ मनुष्य घोड़ों को दौड़ाते हुए आ पधारे, जैसे ही उन्होंने भूमि पर पैर रक्खा, दासों ने जो पूर्व ही इन की प्रतिक्षा कर रहे थे, उन घोड़ों की वागें पकड़ कर इधर उधर घुमाना आरम्भ कर दिया और सवार बड़े आनन्द और उत्साह से सजे सजाये स्थानों पर बैठ गये, इन के बहु मूल्य पहरावे और मुख प्रकाश से विदित होता है कि यही महाशय इस उत्सव के प्रधान और कर्त्ता धर्त्ता हैं, यद्यपि इन के प्रताप ने उपस्थित मंडली के मुखों को ऐसा बन्द कर दिया है, कि यदि उनको उस समय के लिये मूक कहें तो अत्युक्ति नहीं, परन्तु इन सब की दृष्टि उस वीर पर जो सब के मध्य सुशोभित हैं और जिसके शरीर में भगवान ने वीरता के समस्त लक्षण पूर्ण रूप के उत्पन्न कर दिये हैं, अतीव अधीरता से पड़ रही है और इसी कारण इन लोगों की प्रबल वेग अधीरता इन को चंचल बना रही है, और परस्पर कानों में कह रहे हैं कि इस वीर ने (अंगुली से दिखला कर) न जाने कौन सा मन्त्र चलाया है कि कोई भी ऐसा मनुष्य विचार में नहीं आता जो यहां उपस्थित न हो"।

दूसरा–"भाई ! कैसे न आयें ! आज चार पांच दिन से निरन्तर बड़े २ विद्वानों और धनाढ्यों के स्थानों पर सभा होती रही है। विचारों का प्रवाह चलता रहा है, नारायण जाने इन विचारों का वास्तविक अभिप्राय क्या है ? हमें तो इस के अतिरिक्त और कुछ भी विदित नहीं कि यह युवक पवन का पुत्र और सुग्रीव का जामाता है"।

इतने में वही युवक जिस का नाम हनुमान है एक पुरुष की प्रार्थना से खड़ा हुआ, सब एक दृष्टि हो टिक टिकी बांधे उधर ही देखने लगे, और उसने इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

"हे ! माशिला ऋष्यमूक और मेरू पर्वत के निवासी युवक वृन्द शूरवीर सरदारो ! सब से पहिले मैं यह कह देना आवश्यक समझता हूं कि मैंने किसी निज कार्य के लिये आप लोगों को इतने दूर की यात्रा का कष्ट नहीं दिया, मेरी स्वार्थता तनिक नहीं, वरञ्च अपने देश की दुरावस्था तथा आगामी बुराइयों के भय से मेरा रुधिर जोश खा रहा है, और इस के अतिरिक्त और उपाय प्रतीत नहीं हुआ। प्यारे भ्राताओ ! सब से पहिले जिन विचारों ने मेरे अन्तःकरण को दुःखित किया है वह प्राचीन इतिहासों का पाठ सुनने से हृदय छेदित हो जाता है, नेत्र लज्जातुर हो पांवों की ओर देखने लग जाते हैं, हा दैव ! देश के लिये कैसा दुर्घट समय था कि जिस समय अविद्या रूपी कृष्ण मेघों की घटायें चारों ओर से इस देश को घेरे हुई थीं और घर घर पशुत्व विस्तृत हो रहा था, अन्य

देशीय घृणा से हमारी ओर देख रहे थे। परस्पर वार्त्तालाप तो क्या हमारे मुख तक भी नहीं देखने चाहते थे, मित्रो! यदि इस इतिहास के हर अक्षर को ईश्वरीय क्रूरता कहें तो ठीक है क्योंकि इस का एक एक अक्षर पढ़ने वाले के मन को दग्ध कर देता है, अभद्र सहिष्णुता निज बल से शीश नवा देता है। मेरे स्वदेशी मित्रो! इस में किञ्चित् असत्य नहीं (उंगली के इशारे से) यह इतिहास पड़ा है देख लीजिये हां यदि कुछ साहस आता है और धैर्य मिलता है तो एक मात्र उन युवकों के ऐतिहासिक वृत्तान्त पढ़ने से जो इस पुस्तक के अन्त में लिखे हैं, जिन के पाठ से उस अविद्या के समय का पूर्ण विनाश प्रतीत होता है, इस में किंचित सन्देह नहीं कि उन को बड़ी बड़ी रुकावटें झेलनी पड़ीं और कठिनतायें सहनी पड़ीं परन्तु उन वीरों ने भी बड़ी शूरवीरता से इन का सामना किया और धैर्य से काम लिया, महाशयगणण! यह उन ही के परिश्रम का फल है कि जो आप लोगों ने आज विद्याधर के पद पाये और विद्याधर कहलाने के अधिकारी हुए और प्रतिष्ठा प्राप्त की, वही विदेशीय जन आज तुम को वीरता और साहस में अद्वितीय गिनते हैं और तुम्हारे निकट अपना सहवास प्रतिष्ठास्पद विचारते हैं, परन्तु हा खेद! यह समय भी परिवर्तन होने वाला है, वह भाग्योदय द्योतक तारा जो कुछ २ चमक दिखलाने लगा था, आप लोगों के आलस्य से फिर टमटमाने लग पड़ा है, फूट और स्वार्थता अन्य देशियों

का साहस बढ़ा रही है, स्वतंत्रता कुछ क्षण के लिये विद्यमान प्रतीत होती है। परतंत्रता उग्र दृष्टि से देख रही है, हा खेद! आप लोग इस बात पर विचार ही नहीं करते, अन्य देशीय चाहे हम पर कितना अत्यचार क्यों न करें, हमारी प्रतिष्ठा चाहे मिट्टी ही में क्यों न मिलादें, आप लोगों के कान पर जूं तक भी नहीं रेंगती और रेंगे भी क्यों, आप को तो कोई आपत्ति नहीं, यदि पड़ी है तो उन दीनों पर जो आप के आश्रित हैं। स्मरण रहे कि यह विचार आप को भुला रहा है, आप के मानुषीय कर्तव्य सामान्य नहीं हैं। ईश्वर के समीप आप ही इन बातों के दोषी ठहराये जायेंगे और उत्तर दाता होंगे। संसार आप ही को दुर्नाम से स्मरण करेगा और इन दीनों की आहें आप के आगामी प्रताप को विनाश कर देंगी। तनिक शास्त्रों को देखो, राज्य नीति को पढ़ो और विचारो कि हमारे क्या कर्तव्य हैं, जब जनक राज दुलारी को अन्यदेश का राजा बल से पकड़ कर लेगया, किसी ने तनिक भी साहस न किया, नरेन्द्र विद्याधर को राक्षसद्वीप वाले लेगये तो किसी ने न पूछा, निचले पद की भवितव्यताओं की तो कोई गिनती ही नहीं, न जाने फिर आप लोग किस बात पर अहंकार करते हैं। शूरवीरो! जब तक तुम एक दूसरे पर अपने प्राण देने को उद्यत नहीं होजाते, तब लग तुम्हारे देश की उन्नति की संभावना कठिन है, याद रखो कि यदि यही दशा रही तो तुम्हारे शत्रु तुम सब को एक एक करके खा जायेंगे और तुम देखते ही

रह जाओगे और तुम्हारी यह सामर्थ्य, वीरता, साहस और दिलेरी मिट्टी में मिल जायेगी, इस का परिणाम यह होगा कि तुम अन्य वंशीओं के आगे सीस नवाते फिरोगे और कुछ न बन पड़ेगा, क्या जाने कई भाई इस विचार में हो कि राक्षस द्वीप वाले बली और वीर हैं, उन पर जय पानी असंभव है, परन्तु नहीं उनका विचार व्यर्थ है, हम निर्बल नहीं हैं वरंच वह निर्बल है जो हर अवसर पर हमारी सहायता के आकांक्षी रहते हैं, जैसा कि आप लोगों को विदित है, इस में सन्देह नहीं कि उनमें एक शक्ति काम कर रही है, जिस ने तुम्हारे धैर्य को निर्बल कर रखा है और वह ऐक्यता है जो सदैव तुम्हारी फूट पर प्रबल रहती है, हाय ! जब उन बनवासियों की आपत्ति का चित्र मेरी आखों के आगे आ जाता है, तो मेरा शरीर रोमांच हो जाता है, आह वह किस विचार से इतने दूर देश की यात्रा करके तुम्हारा देश देखने को पधारे और उन पर यह अत्याचार ! धिक्कार है हमारी वीरता और जीवन पर ! हे मित्रो ! तनिक ध्यान तो दो कि उनके देश के लोग हमें क्या कहेंगे, किस नाम से स्मरण करेंगे, अपनी बहु बेटियों की तो तुम ने कुछ परवाह न की, परन्तु वह एक विदेशीय महाराजा का पुत्र जो दैवयोग से तुम्हारे देश में आ गया, वह कैसा दुखित हो रहा है, हा ! उस के साथ राक्षस द्वीप वाले अत्याचारी ऐसा जुलम कर जायें और तुम डरपोकों के समान अब तक मौन धारे रहो ।”

पाठकगण ! वीर की वक्तृता का एक २ अक्षर शूरवीरों के हृदय में तीर की भांति छेद कर गया और वह अधिक श्रवण की शक्ति न रख कर बोल उठे:—

उपस्थित सभ्य–बस ! हमें अधिक सहन की सामर्थ्य नहीं, अब आप उन वनवासियों के हाल से सूचित करें कि उन पर क्या अत्याचार हुआ और वह कौन हैं ?

हनुमान—(कम्पायमान होकर) तुम लोगों के हृदय मुरदा हो गये हैं, दिल कायरता से मुरझा गये हैं, आप उन का वृत्तान्त सुन कर क्या करेंगे। तनिक आपही विचारो कि जब तुम्हारे मन में अपने देश की ही ममता नहीं, तो एक विदेशी की कब होगी, उस वनवासी की कथा सुनकर क्या करोगे जिसके वर्णन करने के लिये भी तो साहस की आवश्यकता है, उस के पुनर्कथन से मेरा हृदय टुकड़े २ होकर सिर घूम जाता है, परन्तु जब उस वीर वनवासी के धैर्य और साहस का विचार आता है, कि जिसने ऐसी आपत्ति में डूबे हुए होने पर भी सुग्रीव की दुखित अवस्था को देख कर दया धर्म का पालन किया है, और बड़े साहस और वीरता से उस बाली को जो कि अपने आप को बल में अद्वितीय समझता था, एक क्षण में परलोक पहुंचा दिया, इससे प्रत्यक्ष विदित होता है, कि वह वीर हमारी सहायता की भी कुछ आकांक्षा नहीं रखता वरंच स्वयं प्रबन्ध कर सकता है, परन्तु जो विचार मेरे हृदय को विदीर्ण कर रहा है, वह यह है कि कायर और

डरपोको हम पहिले गिने जावेंगे, उत्तरीय भारतवर्ष निवासी हम को बुरे नाम से स्मरण करगे, इतिहास हमारी कठोरता तथा निर्दयता का साक्षी देंगे, लज्जा और अनभिज्ञता जीवन पर्य्यन्त हमारा पीछा न छोड़ेंगे। भ्राताओ ! तुम ही विचारो कि सहायता करनी आवश्यक है या नहीं ?

चारों ओर से "नहीं २ उस अत्याचारी को अवश्यमेव दण्ड देंगे, उस वनावसी की सहायता के लिये अपने प्राण तक नौछावर कर देंगे परन्तु अपने देश की अप्रतिष्ठा नहीं सह सकेंगे, तनिक उसकी हालत को तो आप वर्णन करें।"

हनुमान—अच्छा देखें तुम्हारी सहायता किस सीमा तक है महाशयो ! श्रीरामचन्द्र जी का वृत्तान्त जिसको मैंने वन वासी शब्द से पुकारा है अतीव विस्मय जनक और खेदास्पद है, यह महाराज अयोध्या कोशलाऽधिपति दशरथ महाराज के चिरंजीव पुत्र हैं, यह वही रामचन्द्र हैं जिन्होंने १६ वर्ष की आयु में ताड़का राक्षसी और सुबाहु आदि राक्षसों का नाम संसार से उठा दिया था और कई एक बड़े २ वीरों के होते हुए मिथुलेश राजा जनक की राजदुलारी को वह धनुष जिस को देख कर बड़े २ शूरवीर धनुषधारी भी घबड़ा गये थे, एक पल में तोड़ कर व्याह लाया था जब इनके पिता महाशय ने इनको सकल गुण सम्पन्न देखा तो युवराज इनको बनाना चाहा, परन्तु शोक ! कि उनकी सौतेली माता यह बात सह न सकी, उसने अपने पुत्र भरत को राज्य और इनको १४ वर्ष

बनवास के भेजने के लिये स्वामी से प्रार्थना की, क्योंकि एक महान आपति काल में केकई ने महाराज दशरथ को पूर्ण सहायता दी थी और राजा उसको दो वर देने का प्रण कर चुका था, इस लिये उसने अपने वचन पालन करने के लिये जो कि क्षत्रियों का परम धर्म है, बाध्य हो गया, परन्तु ऐसे आज्ञाकारी सुयोग्य पुत्र को (जिसको कि अपने मुख से राज्य देने की आज्ञा दे चुका था) अब १४ वर्ष बनवास की आज्ञा देनी कठिन हो गई थी, वह चिन्ता सागर में डूब गया। श्री रामचन्द्र जी को ज्योंहीं इस समाचार की सूचना मिली, तत्काल पिता जी की सान्त्वना और निज माता को धैर्य दे बनवास के लिये उद्यत हो गये, छोटे भाई लक्ष्मण जी ने इनका वियोग न सहकर साथ दिया, मिथिलेश कुमारी जानकी जी को यद्यपि रामचन्द्र जी ने बहुत समझाया और भांति २ के बनवास के क्लेशों के चित्र खेंचकर भयभीत किया, परन्तु उसने यही उत्तर दिया कि स्वामिन ! यद्यपि माता, पिता, बहिन, भ्राता, कुटुम्ब, सहेलियां सास और सुसर आदि अतीव प्रिय और हितैषी हैं, परन्तु आप के बिना मेरे लिये यह सब क्लेश के कारण होंगे। धन भूषण सेवक, सेवकायें, अतलस और मखमल के लिहाफ़ और राज्य महल आदि आप के बिना चितावत क्लेश दाता हो जायेंगे, जैसे शरीर प्राणों के बिना और मछली जल के बिना सजीव नहीं रह सकती इसी प्रकार मेरा जीवन आप के बिना कठिन हो जावेगा आप के संग बनवास मेरे लिये अतीव सुखदायक होगा

बन के घास की बिछौना मेरे लिये घर के कोमल महोच्च बिस्तरों से अधिक कोमल और सुखदाई प्रतीत होंगे, आपके संग बन के फल फूल गृह के सुस्वाद भोजनों से अधिक स्वादिष्ट होंगे। हे स्वामिन् ! मैं आपके बिना यहां किसी प्रकार नहीं रह सकती और न ही स्त्री धर्म मुझ को यहां रहने की आज्ञा देता है ! जब रामचन्द्र जी ने उसको अपने संकल्प में दृढ़ समझा, तो अपने साथ उसको बन में ले आये। १३ वर्ष तक उस पतिव्रतधर्म पालिका देवी ने अति प्रसन्नता पूर्वक पति की सेवा में दिन व्यतीत किये और रामचन्द्र जीने उस अवसर में कई एक पापिष्ट जीवों का वध कर भूमि का भार उतारा, अंत में इस देश के देखने की लालसा से पंचवटी में सुशोभित हुए, जहां सूर्पनखा रावण की भगिनी उन के लघु भ्राता लक्ष्मण जी पर मोहित हो प्रेम को प्रकट करने लगी, लक्ष्मण जी ने उसको इस पाप कर्म की निवृत्ति के लिये बहुत यत्न किया, और अंत में उसके अधिक हठ करने पर उस को नाक काट कर उसे इस पाप कर्म का दण्ड दिया। तब वह रोती पीटती और चिल्लाती हुई अपने भाई खर दूषण के पास गई और उन को बदला लेने के लिये उद्यत किया, खर दूषण बहिन की यह दशा देख क्रोधाग्नि में दग्ध हो गये और १४००० राक्षस सेना सहित रामचन्द्र से युद्ध करने के लिये आये। आश्चर्य का विषय है कि एक ओर तो १४००० राक्षसी सेना और दूसरी ओर केवल दो भ्राता ! परन्तु इन दोनों वीर भ्राताओं ने उनके ऐसे दांत खट्टे किये कि राक्षसी

सेना इन का कुछ भी न बिगाड़ सकी, वरञ्च उन को इन के तीक्ष्ण बाणों की बली होना पड़ा, इतनी बड़ी सेना थोड़े से काल में विनष्ट होगई, रावण इसका बड़ा भ्राता इन से युद्ध को सामर्थ्य न समझ कर तस्करों की भांति छल से जानकी जी को अकेली देख विमान पर बैठा कर लंकापुरी में लेगया, जिसे सुग्रीव ने जोकि उस समय अपने ही क्लेश से क्लेशित था, अपने नेत्रों से देखा। जब रामचन्द्र जी और लक्ष्मणजी जानकी जी को ढूंढते हुए किष्किन्धा पहुंचे तो सुग्रीव को चिन्तातुर देख कर उनको दया आई और बाली को एक ही बाण से परलोक गमन करा सुग्रीव को राज्यारूढ़ किया। प्रिय स्वदेशी भ्राताओ! क्या उस पतिव्रता स्त्री की आहें जिस ने संसार के सुखों को त्याग कर स्त्री धर्म पालन करने के हित अपने पति के संग भयानक बन में रहना स्वीकार किया था, ऐसे अपवित्र शरीर के संसार से बीज नष्ट करने के लिये कृतकार्य न होंगी? क्या उसकी मानसिक अभिलाषा जिनको वह अपने हृदय में धारण कर बस्ती से बन को उत्तम समझती थी, रावण की भविष्यत् लालसाओं को विनष्ट कर देंगी? मित्रो! देखोगे कि रावण किस प्रकार नाश को प्राप्त होता है, यह मत समझो कि रामचन्द्र जी अकेले हैं और वह शूरवीर युद्ध सामग्री रहित हैं, और इनका रावण को पराजय करना कठिन है, नहीं वह अकेले नहीं धर्म उनकी रक्षा कर रहा है, परमात्मा उनका सहायक है, युद्ध सामग्री की कुछ चिन्ता नहीं, रावण को परास्त

करने के लिये उसका (रावण का) अपना पाप ही बहुत है । मित्रो ! तुम्हारा साहस क्यों घट गया और किस सोच में पड़ गये हो ? कुछ चिन्ता नहीं । यदि तुम रावण से युद्ध करने का साहस नहीं रखते तो वह स्वयं खर दूषण के समान उसको परास्त करने के लिये बहुत हैं ।

इन अन्तिम वचनों ने उपस्थित सभ्यों के हृदय पर कुछ ऐसा प्रभाव डाल दिया कि वह क्रोध वश हो कांपने लगे और ऊंचे शब्द से बोले " नहीं ! नहीं जब लग हम जानकी जी को रावण के पंजे से नहीं छुड़ा लेते, हमारे लिये विश्राम करना शापथ है" ।

पाठक गण ! इसी प्रकार अंगद और * नील आदि वानर द्वीप के हर एक प्रान्त में प्रचार कर रहे थे ।

---

* किष्किन्धा कांड सर्ग ३६ को देखोः—

पाठक गण ! हनुमान जी की वक्तृता सुन कर क्या जाने आप लोगों के हृदय में यह विचार समा गया हो कि हमने एक नवीन ही समाचार अपनी ओर से कपोलकल्पित लिख दिया है, मित्रो ! हमने कोई नवीन वृत्तान्त कल्पित नहीं किया, नहीं हम ऐसी माननीय पुस्तक में छिद्रान्वेषण रूप से हस्तक्षेप करना चाहते हैं, हमने तो केवल वाल्मीकि जी से उस फल दाता शब्दों का जो कि एक अमूल्य रत्न इसमें प्रकाशित हो रहे हैं, अनुवाद किया है, देखो वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा कांड ३६वें सर्ग को, यद्यपि इसमें प्रकट रूप से यह वर्णित है परन्तु यदि आप तनिक दत्तचित्त हो इस सर्ग को पढ़ और विचारें तो आप को विदित होजावेगा कि वास्त-

अड़तीसवां अध्याय

जाईये-ईश्वर आप की सहायता करे।

कि ष्किन्धा नगर का मैदान जो पम्पा झील के पूर्व दक्षिण में है, आज विचित्र लीला धारण कर रहा है, जहां तक दृष्टि जा सकती है, मनुष्य ही मनुष्य दीख पड़ते हैं, और सैंकड़ों तम्बू तने हैं, घोड़ों की टाप ध्वनि से समस्त मैदान गूंज रहा है, और हर जगह जंगी निशान आकाश में उड़ते हुए दिखाई दे रहे हैं, जिनको देखकर जान पड़ता है कि किसी राजा ने बाली की मृत्यु श्रवण कर किष्किन्धा पर आक्रमण कर दिया है, कदाचित यही विचार ठीक हो, क्योंकि वह स्वक्ष

विकमें अभिप्राय इसका क्या है। सर्ग ३७ के ५४ पृष्ठ की ४ पंक्तिमें जो शब्द देव मित्र गन्धर्व आदि लिखे हैं, उनमें स्पष्ट विदित होता है कि बड़े सुयोग्य और विद्वान महाराज रामचन्द्र जी के संग लंका के युद्ध में गये थे, बालमीकि रामायण आरण्यकाण्ड के ४०वें सर्ग के ५६ पृष्ठ पर मारीच के कथन से विदित होता है, कि रावण के अत्याचार से केवल अन्य वन्शी ही उसके विरोधी नहीं हो गये थे, वरंच उसकी प्रजा भी उससे प्रसन्न न थी।

चमक कर और नेजे बरछियां अपनी काल रूपी जिव्हा निकाल निकाल कर देखने वालों के हृदयों को कंपायमान कर रहे हैं, और वीर योधा इनकी परीक्षा करके इनको म्यान में डाल रहे हैं, और वह युवक अफसर जो एक हाथ से अपनी मूछों को ताओ दे रहा है, और दूसरे हाथ से किष्किन्धा की तरफ इशारा कर के अपने सिपाहियों से कुछ कह रहा है, मानो हमारे विचार की पुष्टि कर रहा है, हा! सुग्रीव दीन पर कैसी आपत्ति आन पड़ी, वह तो महाराज रामचन्द्रजी की सहायता में तत्पर था यह आपत्ति कहां से उपस्थित हो गई।

पाठकगण! बड़े विस्मित और चकित रूप से हम इस असाधारण अति समुदाय को देख रहे थे और मन में भांति भांति के सन्देह उत्पन्न होकर हमें चिंतातुर कर रहे थे, कि एकाएकी उस तम्बू को देखने से जो बड़ के वृक्ष की दाईं ओर तना है, हमारे विस्मित विचार प्रवाह को कुछ धैर्य हो गया है, क्योंकि उस में हमें अपने वीर सेनापति हनुमान जान पड़ते हैं, आहा! वह देखिये हनुमान कैसे प्रेम से राजा अंगद से मिल कर अब गज से मिल रहा है, ओहो! वह लो महाराजा रामचन्द्र व लक्ष्मण और सुग्रीव आदि भी उस बड़े खेमें से निकले हैं, जो राजा जामवन्त और सुखेन के तम्बू के बीच खड़ा है, क्या जानें यह तम्बू राजा इन्द्र जानू का है, और यह विदित होता है कि यह सब वीर लंका आक्रमण के लिये पधारे हैं, क्योंकि श्री रामचन्द्र जी प्रत्येक राजा

से मिल उस की सेना को देखते जाते हैं, और जिधर दृष्टि करते हैं प्रणामार्थ सब लोग शिर निवाते जाते हैं, जब सब सेना को देख चुके तो राजा इन्द्र जानू के तम्बू में जो सब से अधिक विस्तृत है, लौट आये और इस भांति सुग्रीव से वार्तालापआरंभहुआ।

सुग्रीव--(महाराज रामचन्द्र जी से) उस अदूर-दर्शी रावण को दण्ड देने के लिये प्रत्येक राजा कटिबद्ध हैं, अब केवल आप की आज्ञा की देरी है ।

रामचन्द्रजी—(कुछ काल सोचने के अनन्तर) सुग्रीव ! हमारा विचार है कि पहिले किसी को भेजकर मालूम कर लेना उचित है, कि सीता जी किस दशा में हैं, और रावण उस के विषय में क्या विचार रखता है, यदि वह सीता जी को अब भी भेज दे और अपने दोष की क्षमा चाहे, तो हम अब भी इस हिंसा युक्त कार्य से हस्त संकुचित करेंगे, क्योंकि युद्ध से दोनों को कलेश और ईश्वरीय सृष्टि का विनाश व्यर्थ होगा।

सुग्रीव-(हाथ जोड़ कर) "महाराज वह बड़ा अभिमानी पुरुष है, अपने सिवाय किसी को कुछ समझता नहीं" ।

रामचन्द्रजी-' नहीं कई वेर मनुष्य क्रोध की दशा में ऐसे कार्य कर बैठता है, जिनका उसे कदापि स्वप्न में भी करने का विचार नहीं होता, संभव है कि सूर्पनखा ने उस के तमोगुण की अग्नि को भड़का दिया हो, और क्रोध में आकर वह यह अनुचित व्यवहार कर बैठा हो और अब उस के विचार बदल गये हों ।

सब राजा लोग एक वेर हो बोल उठे "महाराज ! आप सत्य कहते हैं, परन्तु उस का अहंकार दूरदर्शिता को उसके निकट फटकने नहीं देता, इसके सिवाय किसकी सामर्थ्य है कि उस अभिमानी क्रोध पुञ्ज रूप को सम्मति दे सके"।

इन बातों को श्रवण कर रामचन्द्र अतीव विचार सागर में डूब गये और उपस्थित सभ्य भी चुपचाप होगये और कुछ काल पर्यंत रामचन्द्र जो शिर झुका कर कुछ सोचते रहे, फिर कहने लगे "नहीं २ यह उचित नहीं, पहिले अवश्य किसी को भेजना चाहिये"।

सुग्रीव तथा अन्य उपस्थित राजा लोगों ने एक मन हो हनुमानजी की ओर निहार कर कहा, "महाराज ! इसके सिवाय और कोई नजर नहीं आता जो यह काम कर सके, क्योंकि एक तो यह वेद शास्त्र के महान * पण्डित हैं जो बात करेंगे सोच विचार कर करेंगे और दूसरे यह रावण के स्वभाव और लंका के हर एक गली कूचे को भली भांति जानते हैं"।

रामचन्द्रजी सुग्रीव की वार्तालाप को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और अपनी अंगूठी उतार कर हनुमान को दी और कहा "यह अंगूठी सीता जी को देकर हमारी कुशल कहना और उन को धैर्य देकर शीघ्र आना"।

हनुमान–"महाराज ! यद्यपि मैं अपने आपको इस योग्य नहीं देखता जैसा कि सुग्रीवजी कहते हैं, तथापि आपके प्रताप

*देखो बाल्मीक रामायण पृष्ट ६० सर्ग ४३।

से इस कार्य्य को सफल करने का यत्न करूंगा" यह कह अंगूठी पकड़ ली और रामचन्द्रजी के चरणों में सीस नवा प्रणाम करने लगा परन्तु उन्होंने तत्काल उसे छाती से लगा लिया और बोले:—

"अच्छा भाई जाइये ईश्वर आप की सहायता करें"।

जब हनुमान चलने को उद्यत हुए तो सुग्रीव ने कुछ सोच कर अंगद, गज, तार, गन्धमादन, जामवन्त और सर्व की ओर निहार कर कहा, आप लोग भी हनुमानजी के साथ जायें, तो अच्छा है क्या जाने कहीं इनको सहायता की अवश्यकता पड़ जाय, परन्तु लंका में जाने से पूर्व कौवीर के स्थान, पोष्करस, सिद्ध देश दाढ़ानदी और मैनाक पर्वत पर जाना, क्योंकि रावण प्रायः इन स्थानों में आया जाया करता है, कुछ आश्चर्य नहीं कि सीताजी वहीं मिल जावें और हम सब की मनोकामना सिद्ध हो" यह सुनते ही सब ने मिल कर रामचन्द्र के चरणों में सीस नवा आशीर्वाद ली और सुग्रीव को प्रणाम कर के वहां से चल पड़े। खेद का विषय है कि उन्हों ने इतनी इतनी कठिनतायें झेली और इतनी दूर की यात्रा की, परन्तु फिर भी निष्फल हुए। तार, अंगद, जामवन्त के उत्साह भंग हो गए, गन्धमादन शिर पर हाथ रख कर वहीं बैठ गया, इनकी यह दशा देख हनुमान उच्च स्वर से बोले--मित्रो! तुम्हारी यह दशा देख मैं चकित हो रहा हूं कि आप अभी से साहस छोड़ बैठे हैं, आगे को क्या करोगे? तनिक विचारो तो सही, तुम लोग

सोचो तो सही कि तुम उसकी तलाश में हो जिसका कोई नियत स्थान नहीं, कुछ चिन्ता नहीं यदि यहां कृतकार्य्य नहीं हुये। मैनाक पर्वत अभी शेष है वहां देखेंगे, लंका में ढूढ़ेंगे यदि वहां भी भाग्योदय न हुए तो फिर और स्थान देखेंगे, स्मरण रहे कि बिना मिले हम भी वापस नहीं जावेंगे, चाहे कुछ ही क्यों न हो —वीरो! जितनी चाहें आपत्तियां क्यों न झेलनी पड़ें, यदि साहस और धैर्य को न छोड़ेंगे, तो अवश्य कार्य सफल होगा, तुम भी साहस धर कटिवद्ध हो कार्य की सफलता के अर्थ यत्न करो, घबराना बुद्धिमानों का काम नहीं'। हनुमान जी के कथन ने उन साहस विहीन हृदयों में एक ऐसी शक्ति उत्पन्नकर दी कि उनके विचार एकाएकी बदल गये, कुम्हलाये हुए मुख कमल एकाएक प्रफुल्लित हो गये और वह सब उच्च स्वर से बोल उठे "नहीं २ हमने साहस नहीं छोड़ा जैसे कि आप का विचार है, निःसन्देह जब तक सीता जी का पता नहीं मिलता तब तक हम लोगों को चैन नहीं पड़ता"।

इतना कह कर वहां से आगे को गमन किया, जब मैनाक पर्वत अर्थात् परक शिला पर पहुंचे तो उन्हें विचित्र मन्दिर के चिन्ह दिखाई दिये, परन्तु उस मन्दिर में पहुंचने का कोई मार्ग दृष्टिगोचर न हुआ, तो अतीव चकित हुए, मन ही मन में यही उपजा कि सीता जी अवश्य यहीं मिलेंगी, इस विचार ने उनके साहस को और भी बढ़ा दिया, और बड़ी सावधानी से द्वार ढूंढने लगे, बड़ी कठिनाई से एक अतीव अन्धकारमय टनल

देखने में आई, जो पर्वत चीर कर बनाई गई थी, और उस मन्दिर में पहुंचने का एक मात्र यही मार्ग प्रतीत होता था, उसको देखकर सब प्रसन्नता से कूद पड़े और खुशी से उसके भीतर यह कहते हुए चल दिये—"निःसन्देह रावण ने सीता जी को यहां छिपा रक्खा होगा" जब कुछ दूर इसी अन्ध कूप मार्ग में गये तो और घोर अन्धकार आ गया, यहां तक कि वह एक दूसरे को देख भी न सकते थे, पांव ठोकरें खा २ कर और भी निराश कर रहे थे, सांस घुटने से यमलोक यात्रा का संदेह हो रहा था, मन संकुचित हो अपना पूर्व वेग दिखला रहा था, जीवन काल थोड़ा ही शेष भासता था, परन्तु हमारा शूरवीर हनुमान सब के धैर्य को बढ़ाता हुआ, आगे केशरी सिंह के समान जा रहा था, एकाएक कुछ चांदनी सी प्रतीत हुई, जिसने उनके मुरझाये हुए हृदयों को किंचित् प्रफुल्लित कर दिया, और पांव भी अपना वेग दिखाने लगे, और थोड़ी देर में यह सब खुले मैदान में पहुंच गये, ओहो! यहां की शोभा देख सब वीरों के क्लेश दूर हो गये, और अकृत कार्य्य विचार निवृत हो गये, अब देखिये यह कैसे साहस से एक वाटिका में भ्रमण करते हुए उस ओर जा रहे हैं, जिधर विचित्र मन्दिर अपनी विचित्र शोभा और मनोरमता से कर्म्मकार की बुद्धि की साक्षी दे रहे हैं, इस विचित्र मन्दिर के निकट पहुंच कर उन्होंने एक वृद्ध तपस्विनी को देखा, जो मृग छाला ओढ़ें ईश्वर उपासना में मग्न थी, और थोड़ी दूर एक अद्भुत

विमान * पड़ा था, हनुमान जी ने अतीव विस्मित हो देख कर कहा:—

"तुम कौन हो और ऐसे कठिन स्थान में तुम्हारा आगमन कैसे हुआ" हनुमान ने रामचन्द्र जी महाराज की गाथा ऐसे हृदय स्पर्शी शब्दों में सुनाई कि सुनकर उसका हृदय भी चकना चूर हो गया, और ठण्डी सांस लेकर कहा "अच्छा पुत्र ! ईश्वर आप की मनोकामना सिद्ध करें, मैं तुम को भोजन कराने के अतिरिक्त और कोई सहायता नहीं दे सकती"।

हनुमान जी ने हाथ जोड़ कर कहा 'माता जी भोजन की तो इस समय कोई इच्छा नहीं, सब आप की कृपा है, हां यहां से निकलने का कोई और मार्ग हो तो बतला दीजिये, क्योंकि यह मार्ग जिससे हम लोग यहां पहुंचे हैं, अतीव कठिन है इस से जाने के लिये बहुत काल की आवश्यकता है, और हमारे पुनर्गमन में बहुत थोड़े दिन शेष रहे हैं।

तपस्विन —आपका कहना ठीक है, निस्सन्देह जिस का एक बेर इस अन्धकूप मार्ग में प्रवेश हुआ, फिर जीवित नहीं निकला, (कुछ काल विचार करने के अनन्तर) अच्छा चूंकि तुम उपकारार्थ क्लेश सहन कर रहे हो, इस * विमान में

* देखो बालमीकि रामायण पृष्ठ ६३सर्ग ५० किष्किन्धाकाण्ड ।

*बालमीकि रामायण पृष्ठ ६५ सर्ग५३ किष्किन्धा काण्ड४ थीपंक्ति में लिखाहै किउस तपस्विनीने कहाकि जितने हमारे पुण्यहैं उनका फल तुमको देती हूं जिससे तुमलोग यहां से चले जाओ तुम लोग

(अंगुली से दिखलाकर) चढ़ कर आकाश मार्ग में चले जाओ, यहां अधिक ठहरना उचित नहीं—

यह सुनकर हनुमान जी और अन्य सब उपस्थित सज्जन अतीव प्रसन्न हुए, तपस्विनी जी को सब ने धन्यवाद दिया, और विमान में बैठकर वहां से समुद्र तट पर जा पहुंचे, तो

अपने नेत्र बन्द कर लो, बालमीकि जी का कथन है कि यह सुनकर सबने नेत्र मूंद लिये, तब उसने एक पल में आकाश मार्ग द्वारा सब को बाहर कर दिया, यद्यपि इस कथन से हमारे लेख की पूर्णरूप से साक्षी नहीं मिलती, परन्तु अनुमान अवश्य होता है कि वही विमान जो वहां पड़ा था, तपस्विनी जी ने उनको दे दिया होगा क्योंकि आकाश यात्रा और समुद्र पार होने का कारण इसका पुष्टिकारक प्रमाण है, यद्यपि रामायण के पाठ से स्पष्ट रूप से यह कहीं नहीं लिखा मिलता, कि हनुमान जी विमानारूढ़ हो समुद्र पार गये हों, परन्तु निम्न लिखित कथन भी हम को इस बात का निश्चय नहीं दिलाते, कि उन्होंने कूद कर समुद्र को जिसका पाट४०० कोस था पार किया हो, १म,(सुन्दरकाण्ड पृष्ठ १से २? बाल्मीकी रामायण) में लिखा है कि "हनुमान जी ने विचार किया कि जिस मार्ग से देवता लोग गमन करते हैं, उस मार्ग से गमन कर सीता जी को ढूंढूंगा। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि हमारे शास्त्रों या पुराणों में हमारे देवताओं का मार्ग कौन सा वर्णन किया गया है, तो तो इसका उत्तर हमको यही मिलता है "आकाश मार्ग" अर्थात भूमि से बहुत ऊंचे विमानारूढ़ हो यात्रा करते थे, और उसी ऊंचे मार्ग को बुद्धिमानों ने देव मार्ग नियत किया था, दूसरे,यदि एक शूरवीर से शूरवीर आकाश की ओर कूदकर ऊंचे जाना चाह

तार ने न जाने क्या सोचकर ठगडी सांस भरी और कुछ काल तक कुछ सोचता रहा और अन्त में यह कहने लगा; आह ! क्या सीता जी का कुछ पता न मिलेगा, उस अत्याचारी ने न जाने उनको कहां छिपा रखा है, जो कहीं पता नहीं

और वह चाहे भूमगडल से वहुत ऊंचे भी चढ़ जाये, तो चार पांच गज ऊंचाई ही से वापस आयेगा,हां यदि सन्मुख कूदना चाहे तो निस्सन्देह कुछ दूर तक जा सकता है, परन्तु ४०० कोस का फाट इस भांति कूद जाना पूर्णतः असम्भव प्रतीत होता है, यदि मान भी लिया जावे तो रामायण के लेख से यह विदित नहीं होता, कि हनुमान जी इस प्रकार कूद गये थे। तीसरे, सुंदरकागड पृष्ठ ३ सू० १पं १७ बाल्मीकि जी हनुमान जी के यहां से गमन के विषय में वर्णन करते हैं हनुमान जी की छाया ऐसी प्रतीत होती थी कि जैसे जहाज जा रहा है हनुमान जी का स्वरूप देख कर मेघ भागने लगे और हनुमान जी मेरू पर्वत के समान प्रतीत होते थे, जब समुद्र के मध्य में पहुंचे तो ऐसा होताथा कि जैसे गरुड़ जी और जब कुछ आगे बढ़े तो बादलों में चन्द्रमा के समान कभी गुप्त और कभी प्रकट प्रतीत होते थे, अब सब से अधिक विचारनीय विषय यह है कि कूदने वाले की छाया कुछ काल स्थिर रहता है या नहीं, दत्तता साक्षी देती है कि छाया प्रतीत तो होती है परन्तु तत्काल लुप्त हो जाती है, समगामी वस्तु की अपेक्षा यदि हनुमान जी उस विमान में न थे, किन्तु वेग शक्ति से कूद गये थे तो जहाज के समान उनकी छाया धीरे २ किसी प्रकार से जा रही थी और देर तक भिन्न २ आकारों में दृष्टिगोचर होती रही थी, इस से स्पष्ट विदित है कि वह उछल कर नहीं गये, वरंच उस विमान पर गये थे।

मिलता है। (जामवन्त की ओर देखकर) जामवन्त ! अब सीता जी के मिलने की तो कोई आशा नहीं रही, जहां तहां सब स्थानों में देखा परन्तु कुछ पता नहीं मिला, पर्वतों की अन्धकार मय कन्दराओं को देखा और वहां से भी अकृतकार्यता और चकितता के सिवाय कुछ भी न मिला, कौवेर सिद्ध देश गाढ़ नदी के तट (उन स्थानों में जिन का पता सुग्रीव जी ने दिया था) उनको देख लिया, परन्तु वहां से कोई पता नहीं मिला, हां क्या जाने लंका में हों तो हों, इधर तो उनका कहीं चिन्ह भी नहीं मिलता, परन्तु लंका में जाना भी सुगम नहीं है, कहीं उस (रावण) को खबर हो जावे तो वह किसी को भी जीता न छोड़ेगा, इतना कह कर सिर नीचा कर चुपका हो गया तब जामवन्त बोला—

जामवन्त—भाई इस वीरता का प्रशंसा पत्र हनुमान जी पर छोड़ा गया है, क्योंकि यह उस (रावण) के आचार स्वभाव और निवास स्थानादि को भली भांति जानता है, दूसरे वह (हनुमान) रावण के वंश से परिचित है, और वह कई वेर लंका में आप भी जा चुका है, उस के कई मित्र भी वहां अवश्य होंगे और उनको देख कर किसी को कुछ संदेह भी न होगा।

जामवन्त के कथन को सुनकर मुरझाये हुये मुख कमल कुछ प्रफुल्लित से हो गये, कृतकार्यता ने अकृतकार्यता को हृदय से उठा दिया, पहिले तो सब धीरे २ परस्पर बात चीत करते रहे फिर अंगद ने कहा:—

"हनुमान जी ! आपने सुना यह लोग क्या कह रहे हैं ? आप के सिवाय इस कार्य्य को करने वाला और तो कोई नजर नहीं आता, यह लोग तो साहस छोड़ बैठे हैं"।

हनुमान—"हां हां मैं सब सुन रहा हूं, यदि यही बात है तो लीजिये यहां क्या विलम्ब है" ।

इतना कह विमान में बैठ एक दो मनुष्यों को संग ले यह जा वह जा, अन्त में तत्काल लोप हो गये और थोड़ी देर में समुद्र पार हो कूटाचल पर्वत पर पहुंच गये, और वहां पहुंच कर एक कन्दिरा में (जो सब की दृष्टि से छिपी थी) विमान को उतारा और आप उस पर्वत के सब से ऊंचे शिखर पर न जाने किस विचार से जा खड़े हुए ।

आह ! वहां से जहां कि हमारा शूरवीर जो उपस्थित हुआ है, दक्षिनाभिमुख होकर देखें तो विचित्र लीला दिखाई देती है, जिधर देखें सूर्य भगवान की वह रश्मियें जिन की आभा को सन्ध्या देवी के आगमन ने परास्त कर दिया है, और वह महान प्रकाश जिस की ओर देखने से आंखें चुंधिया जाती थी, पीला पड़ गया है, तथापि लंका के ऊंचे मन्दिरों पर अपनी विचित्र ही लीला दिखा रहा है, यहां तक कि देखने वालों को तृप्ति नहीं होती, हां ! नीचे देखने से कई मन्दिरों की छाया जो उस खाई के जल पर जिस ने मानों लंका को चारों ओर से घेर कर आक्रमण किया हुआ है, और जिस पर सूर्य की किरणें अपना वेग अभी दिखला रही हैं, देखने से

बेबस हो कहना पड़ता है कि मन्दिरों की रचना दर्शनीय और अद्वितीय है, देखये समस्त मन्दिरों की कलसियें जो दिखाई दे रही हैं सब सुनहरी हैं और कारीगर की सुयोग्यता प्रकट कर रहीं हैं, लंका नगर का उत्तरीय द्वार जो यहां से अच्छी तरह दिखाई दे रहा है, कैसा खुला और ऊंचा है, इस के दोनों ओर दो वीर नंगी तलवारें उठायेछ ाती ताने पहरे पर खड़े हैं, जिन को हमारा महावीर बड़ी देर से देख रहा है, कुछ काल पर्यंत तो हनुमान जी इस को देखते रहे. फिर न जाने क्या सोच कर नीचे आये और अपने संगियों की ओर निहार कर कहने लगे :—

"तुम लोग यहाँ पर विमान की रक्षा करते रहो, जब तक कि मैं वापस न आऊं"।

यह कह कर कुछ विचारते हुए वहां से चल दिये, जब शहर थोड़ी दूर रह गया तो मन ही मन में कहने लगे "नहीं २ मेरा इस समय रावण के पास जाना उचित नहीं, वरञ्च उचित तो यह है कि जब तक सीता जी के दर्शन न कर लूं, सब की दृष्टि से गुप्त रहूं, जिस से कि उस अत्याचारी (रावण) को मेरे आने की खबर ही न हो, क्या जाने वह मेरी अभिलाषा को न जान ले और सीताजी के दर्शन ही न करने दे, (आप ही आप) हैं ! तो मैं फिर सीताजी को किस विधि से ढूंढ सकता हूं। मुझ को तो यह भी विदित नहीं कि वह है कहां जब लग किसी को निर्दर्शक बना लूं । मनोभिलाषा सिद्ध होनी कठिन है,

नहीं २ भेद प्रकट की कुछ आवश्यकता नहीं, दो दिन में स्वयं पता निकाल लूंगा। लंका का ऐसा कौन स्थान है जिसको मैं नहीं जानता, यह कह कर वहीं खड़ा हो गया और कुछ काल के अनन्तर कहने लगा "हां निस्संदेह यही ठीक है मैं ऐसा ही करूंगा" और वहां से आगे बढ़ा परन्तु दो चार पग चल-कर फिर यह विचार पलट गया और कहने लगा, "ईश्वर न करे कि मुझ को कोई इस समय देख ले और रावण को विदित हो जाये और मेरी कामना पूर्ण न हो, और आशा निराशा रूप धारण कर ले, इस दशा में अकृतकार्य्यता और लज्जा सदैव के लिये मुझे झेलनी पड़े और न जाने श्रीरामचन्द्र जी तथा सुग्रीव के मन में क्या २ विचार उपजें, तो फिर, अब मुझे क्या करना चाहिये' इतना कह कर विचार सागर में डूब वहीं स्थंभित हो गया, और कुछ काल विचार के अनन्तर उसे युक्ति सूझी और उसके साथ ही, मुखाकार परिवर्तन हो गया और देह में फुरती सी आ गई, और मन ही मन में यह कहने लगा "आहा! महाराष्ट्र से क्यों न मिलूं वह भी तो यहीं रहता है और मेरा परम प्रिय मित्र है, वह किसी प्रकार मेरी अभिलाषा को प्रकट न करेगा, इतना कह ऊपर की ओर निहार कर "आहा सूर्य्य भगवान भी अस्त हो गये और समय भी बहुत उत्तम है, चलो महाराष्ट्र से मिलकर इस बात का परिचय लें।"

३९वां अध्याय

मनोकामना सिद्ध ।

रात्रि महाअन्धकार युक्त है और आकास में कृष्ण मेघों के खगड और भी रात्रि को भयानक कर रहे हैं हाथ को हाथ नहीं सूझता, हां कभी २ उत्तर की ओर विद्युत चमक से कुछ २ मार्ग दीख पड़ता है ऐसे भयानक समय में हमारा महावीर अपने परम प्रिय मित्र के घर से निकल उस बाग की ओर मुख किये जा रहा है, जो अशोक वाटिका के नाम से सुप्रसिद्ध है, और जिस के चारों ओर ऊंची २ दीवारें रक्षा कर रही हैं, और जो आगमन के रोकने का बीड़ा उठा चुकी हैं, हां उत्तर की ओर आगमन का एक द्वार है परन्तु वहां पर भी एक भद्रवीर पुरुष खड़ा है जो रावण की आज्ञा के बिना किसी को उस के निकट फटकने नहीं देता दिन के समय तो उसके आकार से ही हृदय कांप उठता है परन्तु रात्रि काल को उसकी खड्ग की चमक देखने वाले के हृदय को छिन्न भिन्न कर देती है और

आने वालों के प्राणों का भय दे साहस भंग करने में चतुर है, आहा ! ज्यूंही किसी के आगमन की आहट इस भद्रवीर के करणगोचर हुई और वह ललकार कर बोला। कौन है ? जो इस समय अपने प्राणों से निराश हो आ रहा है।

हनुमान—"भाई मुझे आप से कुछ आवश्यक कार्य है"।

द्वारपाल—"इस समय यहां काम वाम से कुछ मतलब नहीं इधर आने की कदापि आज्ञा नहीं, यदि प्राण प्यारे हैं तो वहीं से लौट जाओ"।

हनुमान—"भाई! वह काम इतना आवश्यक है कि प्राण भी इस पर न्योछावर हैं"।

द्वारपाल—बस २ अधिक बातें न बनाओ अन्यथा यह देखो (खड्ग को उठा कर) !

हनुमान—अच्छा जो ईश्वर करे मुझे भी इस समय लौटना लज्जास्पद है।

द्वारपाल—(कुछ सोच कर) तुम कौन हो और यहां क्या काम है ?

हनुमान—मैं एक विदेशी हूं और सीताजी की खबर को आया हूं।

द्वारपाल—(हंस कर) आहा ! ठीक कहा स्पष्ट क्यों नहीं कहते कि तुम्हारे रुधिर का प्यासा हूं अरे बांकरे ! हम वेतन किस बात का लेते हैं ? केवल इस लिये कि महाराज की आज्ञा बिना कोई सीता जी को न मिल सके, जा चला जा 'नहीं तो एक ही वार से सिर तन से जुदा होगा"।

हनुमान—भाई इस में आप का कुछ हरज नहीं, अभी उनसे मिलकर वापस आ जाऊंगा, क्रोध में क्यों आते हो।

द्वारपाल—"क्रोध की कोई बात नहीं, तुम को एक वेर कह दिया फिर बकवास कैसी"।

हनुमान—"हम ने बहुत चाहा और क्षमा की परन्तु खेद। यह प्रतीत होता है कि तुम्हारे प्राणान्त का समय निकट आ गया है"।

हनुमान जी का यह कथन सुनते ही द्वारपाल क्रोधाग्नि से संतप्त हो गया और क्रोध से थर २ कांपता हुआ खड्ग लेकर हनुमान पर आक्रमण किया परन्तु महावीर जी ने उस की खड्ग को अपनी ढाल पर रोका और एक ऐसा गदा प्रहार किया कि उस का सिर चूर २ हो गया और चक्कर खाकर भूमि पर लेट गया, और उधर प्रकाश ने रात्रि की अन्धकार रूपी ओढ़नी को फोड़ कर मेघों को छिन्न भिन्न कर अपना कार्य्य आरम्भ किया और हमारा महावीर अशोक वाटिका में जा प्रविष्ट हुआ।

आहा! इस समय इसकी दृष्टि कैसी प्रसन्नसता से सीता जी की तलाश में इधर उधर चारों ओर जा रही है, परन्तु सीता जी को न देख कर चिन्तातुर हो निराश प्रगट करती है फिर धैर्य्य धार साहस कर आगे ही आगे बढ़ रहा है अब जहां कहीं सघन वृक्ष आगे दिखाई पड़ते हैं, और जिन में कृत्रिम प्रकाश प्रकाशित है वहां पर उस के मन में किसी के

होने का विचार उत्पन्न होता है, जब उन वृक्षों के निकट पहुंचा तो एक ऊंचा विचित्र मन्दिर दृष्टि गोचर हुआ, जिस की धरा भूमि तल से कुछ ऊंची है, और चारों ओर दालान बने हुए हैं, और जिस की छत को संगमरमर पाषाण के गोल स्तंभ उठाए हुए हैं, और इन दालानों के आगे एक बड़ा भारी कमरा है, जिस को हम एक बारादरी कह सकते हैं, जिस में बिना किसी रुकावट के वायु का आवागमन होता है, इस की भीतें संगमरमर की बनी हुई हैं और कई स्थानों में सुनहरी चित्रकारी अतीव मनोरंजक है, और भान्ति २ के जवाहरात भी स्थान २ में जड़े हुए हैं, और सजावट के सामान से सुशोभित है, उत्तरीय दालान में एक विचित्र पलंग बिछा है, जिस के पावे अपनी अतुल चमक दमक दिखला रहे हैं परन्तु इस पर शयन करने वाला एक छोटा सामान्य सा पुरुष प्रतीत होता है, क्योंकि न तो उस पर कोई उत्तम रजाई है, और न ही स्वच्छ वस्त्र दिखाई देता है, हां एक साधारण सी चादर ओढ़े करवट लिए हुए पड़ा है, और उस की दाहिनी ओर एक वृद्धा स्त्री आसन पर बैठी है, पाठकगण ! इस चित्र को देख कर हनुमान जी और भी चकित हुए और वृक्षों की ओट में छिप कर इस का प्रकृत भेद जानने की चेष्टा करने लगे, अभी थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था कि उस पलंग पर लेटी हुई स्त्री की ठण्डी सांस रूपी वायु वेग ने उस वृद्धा के मन को ही नहीं हिला दिया वरंच हमारे महावीर को भी

कंपायमान कर एक पग आगे बढ़ने का साहस बढ़ा दिया, और ज्यूं ही यह एक पग आगे बढ़े और उस स्त्री को जिस के विषय में भांति २ के विचार हृदय से मस्तिष्क और मस्तिष्क से हृदय में प्रवेश कर रहे थे, पलंग पर सिर नीचे किए हुए बैठे देखा। उस के कृष्ण सुन्दर लम्बे बाल दोनों कपोलों पर लटक रहे थे और उनके बीच में चन्द्र के तुल्य जो कृष्ण घटाओं में से निकलता है, मुखारविंद दिखाई दिया। तो इस को देखते ही हनुमान जी का समस्त सन्देह निवारण हो गया और सीता जी के होने का अनुमान प्रत्यक्ष हुआ और अब अतीव अधैर्य से आंख खोल २ कर उस की ओर निहारने लगा, इतने में उस वृद्धा ने कहा :—

सीता ! तेरे रात दिन के विलाप ने देख तेरी क्या दशा करदी है, प्रति क्षण की चिन्ता अच्छी नहीं।

सीता—हे कृपामयी माता ! आपका कथन निःसंदेह सत्य है, मैं आप को साहार्दिक कृतज्ञ हूं, और यह आप ही की जिव्हा रस अमृत का प्रभाव है जिस ने मेरे मन को स्थिर रखा है। आप के सहायप्रद कथन मेरे चिन्ता भार को कभी २ न्यून कर देते हैं, अन्यथा मुझ में यह शक्ति कहां है कि मैं ऐसी चिन्ता सेना से सामना करती। माता मैं बहुतेरा अपने न सम्भलने वाले मन को सम्भालती हूं, कई प्रकार के विचारों में डालती हूं परन्तु जब मुझे अपनी कामना का जिस के पूर्ण करने के लिए मैं निर्जन बन में निकली थी और जिस की पूर्ति की मैंने

अपने हृदय में दृढ़ प्रतिज्ञा की थी। स्मरण करती हूं तो यह मन जल विहीन मछली के समान तड़फने लगता है। हा! कैसी दुर्भाग्य हूं कि ऐसे समय पर अपने स्वामी की सेवा न कर सकी। उनको धैर्य देना तो दूर मैं अभागनी उलटी उन की चिंता का कारण बनी, यदि मेरे प्राण छूट जाते तो अच्छा था, उन के मन को धैर्य्य तो आ जाता। हाय क्या जानूं वह कहां २ भटकते फिरते होंगे, उन को पर्वत शिखरों के गमन से कैसे क्लेश हुए होंगे, हा! कहीं लक्ष्मण जी पर सन्देह न करलें, कि वह मुझे अकेली छोड़ कर क्यों चला गया, (कुछ काल मौन धारण के अनन्तर) हा! अब उन को कौन समझाये कि वह दीन निर्दोष है उस का रंचक दोष नहीं मैंने ही उस को कठोर भाषण करके भेजा था हाय मेरे प्राण कैसे निर्लज्ज और ढीट हैं जो निकल नहीं जाते, यमदूत भी तो इन से डरते हैं, हे परमात्मन्! मैंने कौन सा ऐसा घोर पाप किया है, जिस के कारण मुझ को यह बुरे दिन देखने पड़े, रावण के अनुचित वाक्य सहन करने पड़े, हे धरती माता! तू ही दया कर और मुझे अपने गर्भ में धारण कर और मुझे नित्य के क्लेश से छुड़ादे, हाय मृत्यु के सिवा इस से छुटकारे का कोई उपाय नहीं दीखता, इतना कह कर बेसुध सी हो गई मानों चिन्ता पर्वत उस के सिर पर आ गिरा और निर्बल ग्रीवा टेढ़ी हो गई।

हा! उस समय उसके क्लेश की सीमा कौन जान सकता है, काटें तो रुधिर की विन्दु न थी, नारायण जाने इस समय

उस की दृष्टि किस को देख रही थी, नेत्र ऐसे खुले हैं कि पलकें परस्पर मिलने का नाम हो नहीं लेतीं, सीता जी के क्लेश और चिन्ता को प्रकाश भी न सह सका, और मेघरूप वस्त्र से मुख ढांप लिया परन्तु वारम्वार उस से छिप कर बादलों के बीच में से निकल२ कर मानों पुकार रहा है कि निःसन्देह सीता जी के क्लेश ने मुझे भी क्लेशित कर दिया है। यह लो वर्षा की बूंद भी गिरने लगी, जिस को देख कर निश्चय होता है कि नहीं २ यह जल नहीं चन्द्रमा के आंसू हैं।

पाठकगण! जानकी जी की यह दशा देखकर हनुमान जी का शरीर रोमांच होगया, सर्वेन्द्रियां कुछ कालके लिये निस्तब्ध हो गईं और भांति २ के विचार क्लेशित करने लगे। हनुमान समय परिवर्तन की निन्दा कर उस को धिक्कार दे रहा था, कि मन्द समय से सीता जी का रूप धारण कर हृदय में प्रवेश कर गया और उस की बाल्यावस्था रामचन्द्र जी से सुनी थी स्मरण आ गई, तो यकायक इस प्रकार बोल उठा, हे देव! तेरी घटना का पार किसी ने नहीं पाया, हा! यह वही सीता है जो किसी समय राजा जनक जी की नेत्र ज्योतिः और माता की प्राण प्रिया बनी हुई थीं, और जिस की प्राप्ति के लिये बड़े २ राजा महाराजा धनुष के न टूटने से लज्जातुर हो वापस लौट गये थे, और राजा दशरथ का वंश रामचन्द्र जी का विवाह सीता जी से होने पर प्रसन्नता से फूला नहीं समाता था, हा! क्यों यह वही पतिव्रता सीता महाराणी है जिस ने

समस्त ऐश्वर्य्य भोग को परित्याग कर साधिनी स्वरूप में केवल रामचन्द्र जी के साथ इस अभिप्राय से रहना स्वीकार किया था कि आपत्ति काल में इनकी सहायक हो अपने पतिव्रत धर्म्म की पालना करूं परन्तु हे काल ! तू वड़ा अन्यायी और निर्दयी है, हे रावण ! तू अत्यन्त भ्रष्टाचारी और अत्याचारी है तुझको तनिक भी इसकी दशा पर दया न आई, और इस पतिव्रता की अभिलाषाओं को विदीर्ण कर दिया, महाराजा रामचन्द्र जी के मन को कल्पा कर लक्ष्मण जी को अपने विनाश के लिये उद्यत किया स्मरण रख कि अब वह दिन समीप है जबकि तू अपने कर्मों का फल भोगेगा और उस समय पश्चाताप के सिवा कुछ बन न पड़ेगा।

पाठकगण ! इन वाक्यों के सुनते ही सीता महाराणी का जो मनरूपी जहाज़ अथाह समुद्र में डूब रहा था, तट पर आ निकला और उसके वह विचार जो उस समय इधर उधर भ्रमण कर रहे थे एक चित्त हो गये, वही पलकें जो एक क्षण पूर्व निस्तब्ध हो रहीं थीं शीघ्रता से चलने लगीं और मन की बाग को श्रवण इंद्रियों की ओर झुक गईं जिधर से शब्द ध्वनि आई थी और श्री रामचन्द्र जी के प्रेम का प्रवाह वेग से बहने लगा और वेबस हो यह कहने लगी:—

“भाई ! तू कौन है जो इस आपत्ति ग्रसिता की दशा पर शोक कर रहा है कृपा पूर्वक मुझे दर्शन दे”।

हनुमान जी ने तत्काल निकट आकर चरण वंदना की

और मान पूर्वक हाथ बान्ध कर खड़ा हो गया, परन्तु इसे देख सीता जी झिझक गईं और बहुत समय तक चुप चाप हो कुछ सोचती रहीं और फिर यह कहने लगीं कि तुम कौन हो और यहाँ कैसे आये हो ?

हनुमान—"माता ! मैं जाति का *बानर और श्रीरामचन्द्र जी का सेवक हूं और आपकी सुध लेने के निमित्त यहाँ आया हूं।

सीता—(विचार पूर्वक देखकर) क्या कहा स्वामी जी का दास ! कब से ? मैंने तो तुमको कभी नहीं देखा, सत्य कहो ? देखना कोई फरेब न करना मैं अनाथ हूं।

हनुमान—माता आप धैर्य्यवलंबन करें, किसी प्रकार से न घबरायें, मैं उनका सेवक हूं (अंगूठी निकालकर) यह देखिये महाराज की अंगूठी है जो उन्होंने एक मात्र आपको दिखलाने के लिये चिन्ह रूप से दी है, यह कह कर सुग्रीव और बाली की सारी गाथा कह सुनाई, सीता जी कुछ काल तक तो

---

*हमारे वह भोले भाले भाई जिनके मन में क्या जाने अभी तक यही सन्देह हो कि हनुमान जी मनुष्य नहीं थे वरंच बन्दर थे सीता जी के उस वाक्य पर ध्यान दें कि क्या पशु से भी यह पूछने की आवश्यक्ता होती है कि तुम कौन हो, नहीं कदापि नहीं उस का तो आकार ही देखकर हम पहिचान सक्ते हैं कि वह अमुक भाँति का पशु है और यह प्रश्न एक मात्र मनुष्यों पर ही किया जा सकता है जो भिन्न २ जातियों और सम्पदायों में विभक्त हैं देखो बालमीकी रामायण सुन्दर काण्ड पृष्ट ४ सर्ग ३४ ।

अंगूठी को देखकर सोचती रहीं और कई प्रकार के विचार इनके मन में उपजते रहे, अन्त में यही सिद्धान्त ठहरा कि जो कुछ इसने कहा सत्य है।

सीता—तो मुझको कब तक यह आपत्ति झेलनी पड़ेगी।

हनुमान—माता आप किञ्चित् फिकर न करें, अब केवल मेरे जाने की देर है, कि आप देखेंगी फिर बानर लोग इस रावण के अहंकार को किस प्रकार विध्वन्स करते हैं और इस की बड़ी सेना को जिस पर इसको इतना गर्व है कैसे दलन करते हैं।

सीता—पुत्र ! तेरी बातें सुन कर मेरे अधैर्य धारी मन को धैर्य आया परमात्मा तुम्हारे साहस व बल को वर्द्धन करें, धैर्य बढ़ावे (हाथ से चूड़ी उतार कर) यह चूड़ी स्वामी जी को देना और हाथ जोड़ कर मेरी ओर से प्रार्थना करना कि शान्ति और धैर्य से कार्य साधन करें, राक्षस लोग अतीव निर्दय अत्याचारी, शठ और नीच हैं कहीं इनके माया जाल में न फंस जाना बड़ी सावधानता से कार्य साधन करना।

हनुमान—'(चूड़ी लेकर) आप इन बातों का किञ्चित विचार न करें, हम लोग इन दुष्टों के आचार व्यवहार को भली भांति जानते हैं"।

पाठकवृन्द ! यहां तो इस प्रकार का वार्तालाप हो रहा था उधर द्वारपाल के मृतक शरीर को देख कर रावण को सूचित किया गया और उसकी आज्ञा से बहुत से योधा द्वारपाल के मारने वाले की तलाश में निकले, वह देखिये लोग कैसे भागे चले आते हैं यह लो अब तो इधर भी आने लगे।

चालीसवां अध्याय

रावण के न्याय भवन में हनुमान जी की निर्भय वार्तालाप !

अभी दिन का १ म, पहर है और दिन भी वही जिस दिन महावीर अशोक वाटिका में गया था, इस समय सूर्य भगवान की तीव्र किरणें भूमि पर जहां तहां धूप की चटाई बिछा रही हैं भीत और कपाटों की छाया जो कुछ काल पहिले आनन्द पूर्वक भूमि पर शयन किये थी इनको देख कर निर्बल मनुष्य के समान पीछे २ हट रही है, परन्तु सूर्य की तीव्र किरणें प्रबल वेग से इनका पीछा किये जा रही हैं देखिये जहां थोड़ी देर पहिले छाया थी अब वहां धूप भूमि से आलिंगन कर रही है, इस प्रकार मनुष्य के जीवन की घड़ियें क्षण २ में परिवर्तन हो रही हैं, सारांश यह है कि यह वह समय है कि समस्त संसार प्रकाशित दिन की स्वागत में मग्न हैं बाजारों में क्रय विक्रय हो रहा है, ऐसे समय में हमारा ध्यान जहां पहुंचता है वह लंका नगर के राज्य भवन का वह विस्तृत मैदान है जिसकी एक ओर तो राज मार्ग है

और तीनों ओर बड़े २ ऊंचे मन्दिर आकाश से वार्तालाप कर रहे हैं, जिनकी भांति २ की कलसियें स्वर्ण व रौप्यमय चित्र-कारी, कारीगरों की कौशलता दिखा रही है और स्वर्ण प्रभूत की साक्षी दे रही है जिनको देखकर तत्काल कहना पड़ता है कि स्वर्ण के प्रभूत होने के कारण यहां स्वर्ण का वह मान नहीं, जैसे अन्य देशों में है यद्यपि समस्त मन्दिर अपने निराले आ-कार में अतीव मनोहर और अद्वितीय हैं परन्तु वह मन्दिर जो आकाश मार्ग में वायु संग भ्रमन कर रही है सब से बढ़ गया है इसकी सुनहरी कलशियें शहर के समस्त मन्दिरों को घूर २ कर अहंकार मय दृष्टि से देख रही हैं इसके आगमन द्वार के सन्मुख एक फुलवाड़ी है जिस में नाना प्रकार के पुष्प खिले हुए कैसे सुन्दर और मनोहर हैं जिनके देखने से मन नहीं भरता, क्या जाने यह सर्व साधारण के मनोरञ्जनार्थ निर्मित हैं आहा ! जैसे इस द्वार से प्रवेश करें तो एक डेवढ़ी आती है इसके आगे एक विस्तृत दालान है जिसमें कृष्ण व श्वेत पाषाण से सतरञ्जी रूप फरश बना हुआ शीशों के समान स्वच्छ और चमकीला है, इस में प्रवेश करते ही हिले जिधर दृष्टि पड़ती है वह एक रक्त वर्ण का अद्भुत कालीन है जिस ने शतरञ्जी फरश के अर्द्ध भाग को अपने नीचे ले लिया है और मध्य में एक जड़ाऊ राज्य सिंहासन है जिस पर महा-राजा रावण, गोरवर्ण, विशाल नेत्र, बड़ा सिर, गोल मुख पर कृष्ण शमश्रु धारण किये सिंहासन पर विराजमान एक अद्भुत

स्वच्छ वस्त्रधारी पुरुष से जो कि उसकी दाहनी ओर बैठा है कह रहा है।

"मन्त्री जी आपने कुछ मालूम किया है कि वह मनुष्य कौन है"।

मन्त्री—महाराज ! मालूम क्या, अपनी आंखों से देखा है वही पवन का पुत्र है जिसने मंगल पुर के युद्ध में वरुण को परास्त किया था।

रावण—(अतीव चकितसा से) "हैं ! क्या कहा पवन का पुत्र हनुमान"।

मन्त्री—"जी हां वही २"।

रावण—"नहीं २ कपापि नहीं, तुम भूलते हो ! तुम ने पहिचाना नहीं कोई और होगा"।

मन्त्री—"महाराज प्रत्यक्ष में प्रमाण की क्या आवश्यकता है ! वह स्वयं प्रसन्नता पूर्वक मेघनाथ के संग आ रहा है अभी देख लीजियेगा"।

इतने में कोलाहल सुनाई दिया सब की दृष्टि झट पट द्वार पर पड़ी और कुछ काल में जन समुदाय इतना अन्दर आ गया कि मनुष्य पर मनुष्य गिरने लगा और बड़ी कठिनता से मेघ नाद और हनुमान आगे बढ़े। हनुमान को देखते ही रावण की क्रोधाग्नि प्रदीप्त हो गई, नेत्रों से अग्नि निकल कर दृष्टि से चिं-गारे निकलने लगे, बदन कांपने लगा हृदय में छिद्र हो गये, क्रोधान्ध हो हनुमान से कहने लगा।

"क्या रणधीर तुम्हारे ही अप्रतिष्ठा से मारा गया यह दूत का काम कब से स्वीकार किया ! और दूत भी किस के, एक वनवासी के धिक् ! धिक् !"

हनुमान—"महाराज ! शान्ति और धैर्य्यवलम्बन कीजिये, क्रोध करने की कोई बात नहीं मैं दूत नहीं हूं वरञ्च आप का वही प्राचीन शुभचिन्तक हूं और इसी विचार ने मुझको यहां आने का साहस दिया है वरञ्च मेरी इतनी सामर्थ्य कहां कि आप के विरुद्ध आचरण करता"।

रावण—आहा ! क्या खूब कैसी विचित्र शुभचिन्तकता की, उस दीन द्वारपाल का व्यर्थ बध किया, मेरी आज्ञा पर तनिक ध्यान न दिया, बल से वाटिका में प्रवेश किया क्या इसी का नाम शुभचिन्तकता है।

हनुमान—महाराज ! समय ने यही करने की आज्ञा दी कि आज्ञा प्राप्ति करने के बिना सीता जी से मिलूं और इसी विचार ने रणधीर को मारने के लिये उद्यत किया।

रावण—(क्रोध से भृकुटी चढ़ा कर) "वह कौन सी बात थी जिसने तुम से यह अनुचित कार्य्य कराया।

हनुमान—रामचन्द्र जी की आपत्तिमय दशा देख कौन पुरुष है जो रुदन न कर दे, कौन सा पाषाण हृदय है जो द्रव न जाये तनिक विचारो तो सही कि उन्होंने किस दशा में और क्यों वनवास धारण किया ? केवल इस लिये कि संसार में यह उत्तम उदाहरण स्थापित हो कि सन्तान को माता

पिता का ऐसा आज्ञाकारी होना चाहिये, राज्य को त्याग मुनिभेष धारण कर, लोगों को दिखला दिया कि धर्म्म के आगे धन कुछ चीज़ नहीं, आहा! सीता जी का ऐसी दशा में उनसे बिछुड़ना कोई थोड़ी बात नहीं, आप ही कहें कि मनुष्य सर्व श्रेष्ठ जीव कहलाता है केवल इस लिये कि वह बुराई भलाई को पहचानता है, दूसरे की आपत्ति में सहायक हो सकता है। अब आप ही न्याय कीजिये कि मैं उनकी ऐसी दशा देख किस प्रकार रुक सकता था!

रावण—"क्या यह उनको उचित था कि वह सूर्पनखा को कुदृष्टि से देखते और खर दूषण का वध करते।

हनुमान—"सूर्पनखा के विषय में नितान्त मिथ्या और झूठा और दोषारोपण है आप यह आशा उनसे कदापि न करें हां उन्होंने खर दूषण को अवश्य मारा है परन्तु वह भी क्यों केवल अपनी प्राण रक्षा के लिये जो किसी प्रकार से भी शास्त्र के विरुद्ध नहीं है क्या उनको लज्जा न आई? कि १४ सहस्र सेना ले उन पर चढ़ाई कर दी परन्तु उन दोनों के धैर्य्य और बल को देखें किस विधि उन्होंने उनका नाम धरातल से मिटा दिया, (कुछ सोचकर) आहा! मुझे निश्चय हो गया अवश्य यही कारण है कि जिसने आपको इस दुराचार कार्य के लिये उद्यत किया, वरञ्च आप जैसे बुद्धिमान से ऐसी सम्भावना कब हो सकती थी।

रावण—"आज तुम्हारा कथन ऐसा अप्रतिष्ठा द्योतक

क्यों है, क्या प्राचीन मेल मिलाप को एकाएकी दूर कर दिया।

हनुमान—नहीं २ मैं आप का वैसा ही सहायक हूं प्राण न्योछावर करने को उद्यत हूं, मुझे प्रतिक्षण आप के कल्याण शुभता की धुन लगी रहती है, अधिकतर यहां आने का भी यही उद्देश्य है कि आपको समझाकर सीताजी को ले जाऊं और रामचन्द्र जी से क्षमा याचना करूं जिस से संग्राम न होने पावे।

रावण—(ईषत हंस कर) ओहो ! क्या जाने इसी विचार से तुम यहां आये हो हमारा तो विचार था कि तुम बड़े विचारवान और हर एक बात को भली भांति समझते हो परन्तु यह विचार हमारा मिथ्या निकला, भाई तनिक विचारो कि उन वनवासियों से जिन का नाम लेते लज्जा आती है हमारे लिये प्रार्थना करोगे, यह वचन मुख से निकालते हुए तुम को शरम नहीं आती ? क्या तुम्हारे कहने से उस दिव्य स्वरूपादेवी को जिस ने मेरे हृदय में वास किया हुआ है भेज दूंगा ! कदापि नहीं ! जाओ उनसे कहदो कि इस व्यर्थ कल्पना को मन से उठादें अन्यथा प्राणों से भी हाथ धो बैठेंगे।

हनुमान—यह विषय अति विचारणीय है भली भांति सोच समझ कर उत्तर दीजिये, ईश्वर की कृपा से आप चारों वेदों के वक्ता और षट्शास्त्र के ज्ञाता हैं भलाई बुराई को भली भांति जानते हैं बड़े आश्चर्य का विषय है कि आप जैसे विद्वानों का पर स्त्री के पक्ष में ऐसा विचार हो, अपराध क्षमा कीजिये ? क्या मन्दोदरी प्रभृति महाराणियें सीता जी से न्यून सुन्दर हैं।

नहीं; मेरे निकट आप को जिस दुर्विचार ने इस कर्म के लिये उद्यत किया है वही सूर्पनखा का विलाप और खर दूषण का बध है इस में किंचित सन्देह नहीं, क्रोध से संतप्त मनुष्य अयोग्य कर्म भी कर बैठता है, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा सीता जी को मेरे संग भेज दीजिये, आपही विचारें कि जो मनुष्य देह धारण कर सर्व सृष्टि से पतित हो जाय धर्म्म का विचार न करे क्या वह घृणित दृष्टि से न देखा जावेगा ?

आहार निद्रा भयमैथुनं च सामान्य मेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मोहितेषामधिको विशेषः धर्मेणहीनः पशुभिःसमान ॥

रावण—हां हां मैं सब कुछ जानता हूं तुम्हारी शिक्षा की कुछ आवश्यकता नहीं जो हुआ सो हुआ परन्तु अब तो वह बात है कि सिर जाय पर बात न जाए, हम अपनी प्रतिष्ठाको भंग नहीं कर सकते, मैं जब तक सीता को अपने रनिवास में नहीं डाल लेता, शान्ति नहीं आती, क्या हुआ मन्दोदरी आदि रानियें भी अतीव स्वरूपा हैं परन्तु इस समय जिसका प्यारा स्वरूप मेरे में बस रहा है वह सीता ही है, जैसे चन्द्रमा को देख कर चकोर को तृप्ति नहीं आती उसी प्रकार सीता जी को देखे बिना मेरी दशा है, ज्योति २ हा है चाहे वह दीपक की हो व अग्नि की हो परन्तु परवाना दोनों पर ही आशक्त नहीं होता, इसका यही कारण है कि मनको जो भाया उसी के फंदे में फंस गया।

हनुमान—महाराज ! सीता जी को सामान्य स्त्रियों के

तुल्य न समझें, वह पतिव्रता है उनके ऊर्द्ध श्वांस साधारण ठण्डी श्वांस नहीं वरंच संसार को दग्ध करने वाले हैं जिस ने तनिक भी इसके विषय में दुर्विचार किया, मानों लोक परलोक से गया। मैं आप से सत्य कहता हूं कि आप इस दुर्विचार को छोड़ दें। महाराज रामचन्द्र को सामान्य पुरुष न समझें, धैर्य और पराक्रम का अनुमान खर और दूषण के बध से कर लीजिये, उन के बाणों की शक्ति देखनी हो तो अंगद से पूछिये, जिसका पिता बाली संसार के बीरों में अग्र-गण्य था, एक ही बाण से परलोक गमन कर गया आप के कथन से दुर्लक्षण प्रतीत होते हैं, जान पड़ता है कि आप इन्द्रिय-शक्त होने से अपने वंश का और अपना विनाश किये बिना न रहेंगे, हां इस दुष्ट काम ने जिस पर आक्रमण किया केवल उसका ही वध नहीं किया वरञ्च उसके पड़ोसियों को भी नष्ट किया जो इस दुष्ट काम का सेवक बना वहीं नेकी का विनास कर अत्याचारियों का शिरोमणि बिना संसार में घृणित दृष्टि से देखा गया, बड़े विषाद का विषय है कि आप जैसे विद्वान ऐसे चाण्डाल के फन्दे में फंसे परमेश्वर के लिये अपनी दशा पर दया कीजिये और सीता जी को संग लेकर रामचन्द्र जी के चरणों में पहुंच कर उनसे क्षमा मांगिये इस में कुछ सन्देह नहीं कि इस समय मेरी बातें आप को अतीव कडुवी भासती होंगी, परन्तु स्मरण रहे कि वह इस समय समीप ही है, जब कि आप मेरे इस समय के कथय को स्मरण करके पछतावेंगे,

और मेरी इन बातों को शुभ-सूचक समझेंगे और प्रतिष्ठा से देखेंगे" ।

रावण—(क्रोध में आकर) अदूरदर्शी ! बस चुप रह अधिक बकवास न कर मैंने तेरे वृद्धों का बहुत लिहाज किया उनके उपकार के भार को भली भांति जांचा और भी बहुत से कारण हैं जिन से मैंने तेरे अप्रतिष्ठाकारक बचनों को सहन किया परन्तु शोक तुम्हारी मृत्यु तुम को प्रेरे हुए है अन्यथा तुम्हारी यह शक्ति कहां कि जो इतने निर्भय होकर बोल रहे हो और हमको धमका रहे हो, मैं सत्य कहता हूं यदि और कोई ऐसा काम करता तो उसकी जिव्हा निकलवा देता, परन्तु तेरे क्षुद्र प्राणों पर दया आती है, तेरी प्राण रक्षा इसी में है कि मेरी आंखों से दूर हो जा, अन्यथा अभी प्राणों से हाथ धो बैठेगा, उन बनवासियों से कह दो कि मौन साधन कर पड़े रहें यदि कुछ बल देखना चाहते हैं तो वह भी देख लें । उन्हें भी थोड़ा मजा चखा दें ।

हनुमान—(त्योहरी चढ़ा कर) मेरा भी बार २ इसी बात पर जोर देना और रामचन्द्र जी के क्रोध को शांत करना इसी लिये था कि हमारे वृद्धों से आप का प्रेम था अन्यथा हमको क्या ? तुम्हारा वंश और तुम चूलहे में पड़ो व मिट्टी में मिलो, परन्तु यह स्मरण रहे कि जिन लोगों ने रामचन्द्र जी को आपत्ति काल में साथ दिया है, उनकी युद्ध शक्ति को देख कर निस्संदेह कहना पड़ता है कि लंका का विनाश और आप

के नष्ट होने का पूर्ण प्रबन्ध हो चुका है, केवल मेरे जाने का विलम्ब है, नहीं २ वह समझे कि दारू में चिनगारी लगने की देर है वह भी सुलग रही है केवल हाथ बढ़ाने की कसर बाकी है, कि आग लगी और चटाक पटाक का शोर मचा * और लंका का तख्ता उल्टा।

*लंका दाह के विषय में कोई सम्मति प्रकट करने से पूर्व उस समय के आचार व्यवहार का देखना आवश्क है कि उनसे क्या सिद्ध होता है। सुन्दर काण्ड पृष्ठ ८४ सर्ग ५२।

१म, विभीषण के कथन से रावण ने हनुमान जी के प्राणा को छोड़ा, अर्थात प्राण रक्षा का प्रण किया तो फिर कैसे हो सकता है कि इस ने फिर ऐसा अयोग्य दण्ड देना स्वीकार किया हो हां! यदि जीवन दान देने के अनन्तर हनुमान उससे अप्रतिष्ठा से वर्ताव करता, या कोई क्लेश पहुंचाने का यत्न करता, तो सम्भव था कि वह भी अपने विचार बदल लेता, परन्तु दोनों में से कोई बात नहीं हुई। (देखो उपरोक्त पृ० ५२) तो फिर कैसे सम्भव है कि एक विद्वान पुरुष बिना किसी कारण अपने विचार को क्षण मात्र में बदल ले। (२) यद्यपि रामायण के लेख से यह कहीं नहीं मिलता कि हनुमान बन्दर (पशु) था। यदि हम इस समय के लिये ऐसा मान भी लेवें तो कैसे हो सकता है कि सहस्रशः राक्षसों के होने पर जिसकी संख्या गोस्वामी तुलसी दास जी ने करोड़ों की लिखी है। देखो तुलसी रामायण बम्बई (पृ० ६८८ से ६९१) एक बन्दर को जब कि इसे घसीटते हुए लंका के गली कूचों में ले जा रहे थे एक लोहे का खंबा उखाड़ने का अवकाश दिया हो, जिस से हनुमान ने राक्षसों को मार २ कर भगा दिया, और स्वयं लंका

हनुमान की प्रबल वेग वाणी सुनकर उपस्थित जनों के शरीर रोमांच हो गये, मुख में अंगुली डाल बड़े चकित हो हनुमान की ओर देखने लग गये, और एक ऐसा सन्नाटा था कि जिसने सब को गोदी में ले लिया था। रावण के मन की दशा तो ईश्वर जाने क्या है, परन्तु उसके मस्तक की त्यौरी

के मन्दिरों पर चढ़ कर घरों को दग्ध करना आरम्भ कर दिया हो यदि यह भी मान लें तो भी बुद्धि नहीं मानती कि ऐसा हुआ हो क्योंकि लंका के मन्दिर पक्के थे और पक्के मन्दिरों को जब लग भीतर से अग्नि न लगाई जावे उसका दग्ध होना कठिन है (देखो सुन्दर काण्ड पृष्ठ ५४) हां यदि घास फूस की झोंपड़ियें मन्दिरों के स्थान में होतीं तो विना चू चरां हम मानने को तय्यार थे परन्तु रामायण में कहीं यह लिखा नहीं मिलता। (३य) एक थोड़े से काल में समस्त लंका जो चूने से बनी थी, विभीषण और अशोक वाटिका के अतिरिक्त दग्ध होकर कृष्ण राख हो जाना जैसा कि उक्त सर्ग में वर्णित है अतीव चकितकारक है।

चाहे कुछ ही क्यों न हो हम यह भी मान लेते यदि निम्न लिखित वार्ता हम को सन्तोष देती, जब जीव उपात्त राक्षस कुम्भकरण को जगाने गया, तो सीता जी को लाने हनुमान के आने का समस्त वर्णन उसे सुनाया परन्तु लंका के दग्ध करने का वर्णन नहीं किया (लंका कांड पृष्ठ ६८, ६९ सर्ग ६०) वरञ्च सुन्दरकांड सर्ग ५३ पृष्ठ ६५ के देखने से विदित होता है कि सहस्र स्त्रियें बाल बच्चों सहित दग्ध होकर भस्म होगई थीं, और सहस्रों गिर कर मर गई थीं। (२य) हनुमान के जाने के अनन्तर जब रावण

के चित्र उसकी क्रोधाग्नि को प्रकट कर रहे हैं, आंखें लाल हो
कर आकृति पलट गई, नङ्गी खड्ग लेकर उठा परन्तु विभीषण ने
(रावण का भ्राता जो इस की दाईं ओर बैठा कौतुक देख रहा
था) तत्काल उसे पकड़ लिया और बोला ।

हा ! हा !! क्या करते हो दूतपर प्रहार करना तुम्हारी प्रतिष्ठा

ने उन लोगों को बुलाया जो उस समय अनुपस्थित थे मंत्री ने आकर
कहा कि आप चिंतातुर क्यों होते हैं, मैं आप का वह सेनापति हूं जिस
से देवता, दानव, गन्धर्व और राक्षस लोग डरते हैं, वानरों की क्या
शक्ति है कि मेरे होते हुए चूं कर सकें, खेद ! मैं उस समय (जब
हनुमानआयाथा)अपने घरमें आनंदमें मगनथा,हनुमान धोखादेकर
चला गया तो क्या परवाह है ! लंका कांड सं० ८० पृष्ठ ८० पाटक-
गण ! तनिक विचार तो करें, कि लंका में ऐसा सर्व-नाश हो कि
सर्व-दग्ध होकर भस्मी-भूत हो, विशेष करके उसी मन्त्री का जैसा
कि ६६ सर्ग पृष्ठ ५३ सुन्दर कांड से विदित होता है कि सब से
पूर्व उसी का घर दग्ध किया गया था तो फिर उसका यह कथन
कि मैं अपने गृह में आनन्द से शयन कर रहा था, क्या तात्पर्य
रखता है : आप ही न्याय करें, (३य) दुर्मुख मन्त्री रावण से
कहता है कि आप क्यों विचार में पड़े हैं, वानर सेना कदापि जय नहीं
पासकती क्या हुआ वह (हनुमान) धोखे से ऐसे कर गया वह तो
चोरों के समान आया था, लंका सर्ग ८० पृष्ठ ९ पाठक महाशय ! उप-
रोक्त वार्ताओं को तोलो और विचारो कि इनसे क्या सिद्ध होता है ।

इनके अतिरिक्त और बहुतसे वर्णनहैं जिनसे लंका का दग्ध होना
कदापिसिद्ध नहीं होता और नहीं तुलसी दास तथा वाल्मीकिजी इस

के लिये अनुचित है व्यर्थ तुमने बैठे बिठाए शिर पीड़ा खरीदली।

हनुमान—शीघ्रता से अपराध क्षमा शिरो पीड़ा! यह क्यों नहीं कहते कि शिरो पीड़ा होगी शिर भी नहीं रहेगा।

यह वचन सुनते ही रावण की क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी बिभीषण को क्रोध से पीछे हटा दिया और दो चार ऐसे

विषय में ऐक्यमत हैं, वरञ्च दोनों के कथन में अतीव अन्तर है, बम्बई नगर में प्रकाशित तुलसी रामायण की पृष्ट ६८८ से ६९१ तक पढ़ने का यत्न कीजिये। (४र्थ) सकल वेद शास्त्र वर्णन करते हैं कि निर्दोषों का वध और किसी गृह का दग्ध करना महा पाप है, तो किस विधि मानने के योग्य हो सकता है कि हनुमान जैसे महात्मा ने जिसको रामायण में पण्डित धर्मात्मा माना गया है, ऐसा किया हो कदापि हनुमान ने ऐसा नहीं किया तो फिर प्रश्न यह उठता है कि फिर वास्तविक क्या बात थी, जिस को इतना बढ़ा दिया गया है।

पाठकवृन्द! बुद्धिमानों ने जलना या जलाना तीन प्रकार का माना है १म, अग्नि से २य, अन्य के ऐश्वर्य्य को देख ईर्षाग्नि से ३य, दूसरे के कठोर भाषण वा आगामी आपत्तियों की सम्भावना से १ भुक्ताग्नि से तो शरीर जलकर भस्म होजाता है परन्तु मनुष्य का हृदय कमल जो प्रसन्नता की दशा में पद्म के समान प्रफुल्लित होता है उपरोक्त दशाओं में ठीक वैसे सुकड़ जाता है जैसे थोड़ी सी अग्नि से त्वचा, सो यही अन्तिम दशा लंका निवासियों की समझें, परञ्च वास्तव में लंका का दाह नहीं हुआ, जैसा कि सर्व साधारण में प्रसिद्ध है। हां लंका निवासी पुरुषों और रावण का मन हनुमान जी के वीर वचनों और आगामी आपत्तियों की सम्भावना से दग्ध

४१वां अध्याय

सेना आक्रमण।

ब हमारा विचार हम को किष्किन्धा के उस विस्तृत मैदान में जो झील पंपा के निकट है और जहां बहुत से लम्बे चौड़े तम्बू कनातें लगी हैं। उस समय पहुंचाता है जब कि सूर्य्य भगवान निस्तब्धावस्था धारण कर पश्चिमी गामी हो रहे हैं, आहा! यह कैसा पवित्र समय है कि सन्ध्या देवी के आगमन से उन लोगों की आत्मा जिनका परमात्मा को लग्न है कमल के समान खिलकर एकान्त पवित्र स्थान की खोज में व्याकुल हो रही है, परन्तु उन मनुष्यों की आत्मा जो दिन के उजाले की रुकावट को दूर होते देख इन्द्रिय जात कामनाओं की पूर्ति तथा उचित अनुचित व्यवसायों की सहायिका रात्रि की गोद में बैठना चाहते हैं खौफ से सुकड़ी जा रही है! हा कैसी शोकास्पद दशा है उन लोगों की जो धर्माधर्म का विचार नहीं करते। प्रिय मित्रो! प्रकाश कारक सूर्य की प्रकाश युक्त किरणें उनके रुधिर को खुशक करने में भय नहीं खातीं और रात्रि के,

मनोहर तारागण अपनी आंखें निकाल २ कर इनको पाप कर्म्मों से रोकने के लिये यत्न करते हैं, परन्तु यह अपनी इन्द्रिय शक्ति में ऐसे मदमस्त हैं कि इन सबको किञ्चित परवाह नहीं करते और अपनी आत्मा का बध करते हुए पाप करने को उद्यत हो जाते हैं, ऐसे समय में हमारे महराजा रामचन्द्र जी अपने मानसिक विचारों को भीतर ही भीतर दमन किये कैसे बैठे हैं जैसे खिलने वाले फूल। इतने में लक्ष्मण जी उदास सी सूरत बनाए और सिर झुकाए आकर बैठ गये, और बोले—

महाराज ! हनुमान अब तक वापस नहीं आया।

रामचन्द्र—हनुमान आज नहीं कल आ जावेगा परन्तु तुम्हारा प्रति क्षण चिंतातुर रहना अच्छा नहीं, देखो वृद्धों का कथन है, कि जीवन के दिनों में जो क्षण चिंता और फिकर में व्यतीत हो उनको भी उत्तम समझना चाहिये क्योंकि रुकावट के बिना उन्नति असम्भव है, शत्रुओं के आक्रमण पर दुर्मनस हो खिन्न नहीं होना चाहिये, कठिनता के समय परेशान और निराश होना उचित नहीं शूरवीर बनो, साहस धरो, और ईश्वर पर भरोसा रक्खो देखो भविष्यत में क्या होता है।

लक्ष्मण कुछ उत्तर देना चाहता ही था कि इतने में हनुमान, सुग्रीव, अंगद आदि डेरे में आ पहुंचे जिनको देखते ही लक्ष्मण जी प्रसन्न हो गये और हनुमान जी से कुछ पूछना चाहा परन्तु वह इसकी ओर ध्यान करने के स्थान में रामचन्द्र

जी के चरणों में गिर पड़ा, उन्हों ने तत्काल उठा कर छाती से लगा लिया, इसी प्रकार क्रमशः सब ने पाद प्रणाम किया और यह समाचार कि हनुमान आदि सीता की खबर लेकर आ गये हैं, एक क्षण में सब सेना में फैल गया, समस्त राजपुत्र रामचन्द्र जी की सेवा में उपस्थित होने लगे, और हमारे महावीर ने सबसे पहले सीताजी की चूड़ी रामचन्द्र के चरणों में रक्खी और तदनंतर समस्त व्योरा कह सुनाया, रावण की बुरी बातों को सुन कर उपस्थित महाशयों के मुख क्रोध से लाल हो गये, और उसके अहंकार वाक्य रूप चिनगारे इन के कर्णों द्वारा हृदय में प्रविष्ट होने की देर थी कि धूंआं बन २ कर नेत्रों से निकलने लगे, थोड़ी देर तो सब चुप रहे फिर राज ने कहा।

वस अधिक विलम्ब का समय नहीं, रावण के अधिष्ठाताके अयुक्त वाक्यों का उत्तर हमारी खड्ग और वाणों के प्रहार भली भांति देंगे, हमें पहिले ही विश्वास था कि वह कुकर्मी सीधे मार्ग पर कभी नहीं चलेगा। चारों ओर से यही अवाज गूंज उठी। सार यह है कि उसी समय सम्मति करके नील* को रसद एकत्र करने का काम सुपुर्द किया गया, और ऋषभ और बली मुख को सफर मैना सेना का अध्यक्ष नियत कर प्रातःकाल ही चलने की आज्ञा दी गई।

प्रातःकाल होते ही असंख्य सेना किष्किन्धा से चल कर

* लंका कांड सर्ग १४।

सातवें दिन समुद्र के तट पर आ पहुंची नियमानुसार संध्या वन्दन से अनन्तर सब ने भोजन किया फिर समस्त राजा महाराजा श्रीरामचन्द्रजी के निवास भवन में पधारे और समुद्र के पार होने के विषय में वार्तालाप होने लगी, अन्त में यह निश्चय हुआ कि समुद्र पर एक पुल बांधा जाय, जिस से सेना को पार उतरने में किञ्चित् क्लेश न हो और यह काम सुयोग्य विश्वकर्मा इञ्जिनीयर के पुत्र नल के सुपुर्द किया जिस ने इस भार को प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया और उसी समय सेना को सामग्री एकत्र करने की आज्ञा दी, जैसा कि देखिये हर एक सिपाही कैसी दिलेरी से कटिबध हो सामग्री एकत्र कर रहा है, दस पचास कोस के अन्तर का कुछ विचार नहीं, जहां से जो वस्तु मिली तत्काल लाई गई और पुल की तय्यारी आरम्भ हो गई !
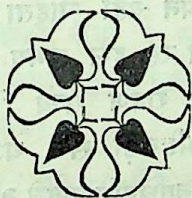
४२वां अध्याय

रावण का दरबार ।

प्रातःकाल का मनोहर समय है, लंका के राज्य भवनों में प्रत्येक स्थान में हवन हो रहे हैं, सुगन्धित सामग्री की सुगन्ध प्रत्येक भवन को सुगन्धित कर रहा है, सामवेद की ऋचायें पण्डित लोग ऐसी मधुर बाणी से पढ़ रहे हैं कि सुनने वालों की मानसिक सर्व व्यथायें दूर कर देता है हृदय कमल पद्म के समान प्रफुल्लित हो जाता है, और बेबस मन यही चाहता है कि सांसारिक कार्य त्याग इन्हीं को सुनते रहें इस समय हमारा दृश्य लंका का मुख्य दरबार है जहां रावण राज्य सिंहासन पर आरूढ़ है बिभीषण और मेघनाद भी बड़ी सज धज से उसकी दाईं ओर बैठे हैं मन्त्री और सेनाधिपति अपने २ स्थान पर नियुक्त हैं, परन्तु सब आगामी समय की प्रतीक्षा के लिये ऐसे मौन धारे बैठे हैं जैसे योगीश्वर परमात्मा के ध्यान में, परन्तु नहीं परमात्मा चिंतन शक्ति के प्रताप से उस का मुख तो प्रफुल्लित और अनुपम रूप में प्रकाशित होता है और इनके मुख तो परे-

शान और चिंतातुर दीख पड़ते हैं। आहा ! रावण के मुख को तो देखिये कैसा पांडु सा है अकृत कार्यता और उदासीनता टपक रहा है, भांति २ के विचार उत्पन्न होकर इसके मस्तिष्क को भ्रमा रहे हैं और चिंता से शिर भूमि की ओर झुका हुआ है, उपस्थित दरबारियों में से कोई भी प्रसन्न वदन नहीं दीखता बहुत देर तक सन्नाटा छाया रहा और अन्त में रावण का मुख खुला।

रावण—मालूम नहीं होता रामचन्द्र ने इतनी सेना कैसे एकत्र कर ली ? उसके पास तो चिंता खेद और क्लेश आदि की सेना होनी चाहिये थी, यह शूर वीर सेना समुदाय कहां से एकत्र हो गई, निस्संदेह यह सुग्रीव का पुरुषार्थ है।

मंत्री—महाराज ! इस समय समुद्र के पार कोसों तक सेना ही सेना दीख पड़ती है। संघातक खड्गों की जिव्हा और बरछियों की नोकें चमकती हुई दीख पड़ती हैं और समुद्र पार उतरने के लिये बड़े परिश्रम से पुल बांध रहे हैं, एक दो दिन में ही पार उतर आवेंगे।

रावण—ओहो इतनी सेना ? और अब समुद्र के पार होने के लिये भी पुल बांध रहे हैं, इतना कह विस्मित सा होकर मंत्री की ओर देखने लगा।

मंत्री—महाराज ! जो कुछ मैंने प्रार्थना की है वह मैंने स्वयं अपनी आंखों देखा है, कोई श्रवण मात्र नहीं, समस्त वानर द्वीप के वीर रामचन्द्र की ओर युद्ध के लिये कटिबद्ध हैं।

यह सुनते ही रावण चकित हो मन्त्री के मुख की ओर देखते का देखता रह गया, पाठकवृन्द देखिये यही रावण है जो अपने तुल्य किसी को नहीं समझता था, *आज १० करोड़ सेना के होने पर भी कैसा घबरा रहा है भांति २ के विचार ही इसके अन्त:करण को क्लेशित कर रहे हैं, मुख की आभा भ्रष्ट सी हो गई है समस्त अंग शिथिल हो गये हैं, वही मुख्य दरबार जिस में बीरों को बीरता के उपदेश आलसियों के मनों को भी उत्साहित करते थे आज उसी में निरासता और आलस्यता बरस रही है इसका कारण क्या ? धर्माधर्म की अविवेचना और इन्द्रियाशक्ति का परिणाम । प्यारे पाठकगण रावण को ऐसे चिंतातुर देखकर परहस्त मन्त्री ने कहा ।

महाराज—आप क्यों चिंता करते हैं हम लोग आप के लिये अपने प्राणों तक को न्योछावर कर देंगे और आप को क्लेशित न होने देंगे। परन्तु यदि आप की यही दशा रही तो हमारे साहस भी वैसे ही नष्ट हो जावंगे जैसे जल के बुलबुले नष्ट हो जाते हैं ।

दुर्मुख—महाराज ! आप व्यर्थ इतनी चिन्ता कर रहे हैं रामचन्द्र की सामर्थ्य है कि हमारा सामना कर सकें । कुछ भय नहीं यदि वानर लोग भी इस की सहायता के लिये उद्यत हैं, तनिक विचार तो कीजिये कि इन्द्र, यमराज, कुवेर, वरुण आदि क्या इस से न्यून थे परन्तु कैसे मारे गये जैसे गज के

* देखो बालमीकी रामायण लंका काण्ड स० २४ पृष्ट १२

पांव से चीवटियें, निःसन्देह इन को भी तभी तक जीता जानिये जब लग संग्राम नहीं होता।

रावण—इस समय जो तुम इस प्रकार बातें बना रहे हो उस समय कहां थे ? जब हनुमान मेरी प्रतिष्ठा दरबार में भंग करके चला गया था उस वक्त अकेला मेघनाद उसके मुकाबले के लिये निकला तुम्हारी शक्ल तक न दिखाई दी ।

* परहस्त–महाराज ! हमें तो खबर ही पीछे हुई थी में तो बड़े आनन्द से निज गृह में बैठा था, और इसके सिवा वह तो छिपकर आया और अज्ञात रूप ही धोखा देकर चला गया।

रावण—माना कि तुम लोग उस समय विद्यमान् न थे परन्तु जो विद्यमान् थे उन्हों ने क्या कर लिया जो तुम कर लोगे, क्या लज्जा की बात नहीं ? कि वह अकेला और हम लोग इतने। पाठकगण ! इतने में कुम्भकरण भी आ गया और वह रावण की वार्तालाप सुनकर बोला।

राजन् ! इस प्रकार चिंतातुर होने से क्या लाभ है। आप को भलि भांति विदित है कि सत्य के आगे मिथ्या कुछ वस्तु नहीं, फिर यह कैसे हो सकता था कि यह लोग उस वीर को जिसका आत्मा सत्य से प्रकाशित था, जीत सकते यह तो समझ रहे थे कि आपने यह कार्य्य उत्तम नहीं किया फिर वह किस प्रकार उसका सामना कर सकते थे राजन ! मिथ्या पुंज के विनाशार्थ सत्य रूप एक चिनगारी बहुत है। हा ! खेद आप

* देखो लंका काण्ड पृ० ८

जैसे बुद्धिमान् विद्वान् इन्द्रिय के वश हो जायें, हा! यह चिन्ह वंश विनाश और राज्य अपभ्रंश के प्रतीत होते हैं, बड़े ही उत्तम भाग्य हों, जो रामचन्द्र जी को जीत सकें, रावण को अशांत देख कर, परन्तु कुछ भय नहीं एक बेर तो रामचन्द्र क्या समस्त वानर वंश को वह बल दिखाऊंगा कि यह फिर इधर को कभी मुख न करेंगे और जब तक मेरे प्राण हैं आप का बाल भी बींगा न होने दूंगा।

विभीषण—जो इन सब की बातें श्रवण कर रहा था वे बस क्रोध में आकर बोल उठा "महाराज! मैं सत्य कहता हूं कि यह मन्त्री जितने हैं सब झूठी श्लाघा करने वाले हैं इन में किसी की सामर्थ नहीं जो रामचन्द्र जी का सामना कर सके, यह आप के मित्र नहीं वरञ्च शत्रु हैं आपने देख लिया है कि अकेले रामचन्द्र जी ने १४ हजार राक्षसों का कैसे विनाश कर दिया परन्तु अब तो उनके साथ समस्त वानर द्वीप प्रान देने को उद्यत हैं। इन सब बातों को छोड़ कर आप केवल हनुमान की वीरता को देखें कि वह किस विध बल दिखला कर निकल गया था, मेघनाद प्रभृति उस का कुछ भी बिगाड़ न सके और अब वह कैसे कह सकते हैं कि हम रामचन्द्र प्रभृति को परास्त करेंगे, यह नितांत मिथ्या है, मेरी बुद्धि अनुसार तो यही शुभ कर है कि आप सीता जी को भेज दें और अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करलें।

मेघनाद—(क्रोध में आकर) "चचा खेद! तुम वृद्ध

होकर ऐसी हीन बातें करते हो कि दूसरों का साहस भी सुन कर नष्ट हो जाये, ऐसा भयभीत होना अच्छा नहीं, यदि पिता जी ऐसा कर्म कर चुके हैं तो कुछ चिन्ता नहीं परन्तु अब हम को डर कर सीता को भेज देना भी उचित नहीं क्योंकि पुरुष का एक प्रण होता है, किस की सामर्थ्य है कि जो मेरे सामने खड़ा होसके, इन्द्र यमराज आदि तो मेरे दर्शन से कंपायमान होते हैं रामचन्द्र प्रभृति क्या वस्तु है।

विभीषण—मेघनाद ! इस में किंचित् सन्देह नहीं कि तुम बड़े सुयोग्य और वीर हो परन्तु देखो धर्मशास्त्र में लिखा है कि यदि पिता कोई ऐसा अनुचित काम करे जो धर्म के विरुद्ध और उस की प्रतिष्ठा के अयोग्य हो, तथा वंश विनाश कारक हो, तो ऐसी दशा में सन्तान को उचित है कि उन को समझा कर यथार्थ मार्ग पर लाये। यदि वह न माने तो उस से अलग हो जायें, इस लिये हे पुत्र ! यह तेरा धर्म्म है कि महाराज को समझा कर उन का यह व्यर्थ विचार दूर कर' नहीं तो स्मरण रक्खो कि बुद्धिमानों के निकट तुम बुद्धिशील नहीं गिने जावेंगे (रावण की ओर निहार कर) महाराज ! मैं फिर प्रार्थना करता हूं कि सीता जी को भेज कर आप निश्चिन्त हो राज्य कीजिये।

विभीषण की बातें श्रवण कर रावण का मुख क्रोध से लाल हो गया, और क्रोधाग्नि से संतप्त होकर बोला।

विभीषण ! मुझे परम खेद है, कि गृह शत्रु जो सुनते थे

वह तुम को ही देखा ! अरे ! कुपात्र यह तो हम को प्रत्यक्ष प्रतीत हो गया है, कि गुप्त रीति से तू रामचन्द्र से मिला हुआ है, और हमारा अशुभ चाहता है, भला मेघनाद को क्यों बहका रहा है। अफसोस ! कि तुम मेरे भाई हो अन्यथा अभी इन बातों का परिणाम देख लेते, अब यदि भला चाहते हो तो मेरी आंखों से दूर हो जाओ, तुम्हारा यहां रहना मेरे लिये आखेटक के उस कल्पित गज के समान है जिस को देख बन के हाथी सजातीय समझ उस के पास आ जाते हैं और बेचारे अपने प्राण गवाते अथवा बन्धन में पड़ते हैं।

विभीषण—महाराज ! यदि आपका यही विचार है तो सत्य वचन मेरा नमस्कार है, इतना कह कर अपने मन्त्रियों को संग ले विमान में बैठ कर रामचन्द्र जी के पास चला गया, जब विभीषण चला गया तो रावण ने सकसारण मन्त्रियों को दशावलोकनार्थ रामचन्द्र जी की सेना में भेजा और मेघनाद प्रभृति को युद्ध सामग्री एकत्र करने की आज्ञा दी।

४३वां अध्याय

सम्मति ।
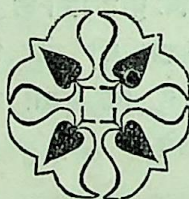
अब हम अपने पाठकगण को जिस स्थान का चित्र खेंच कर दिखलाना चाहते हैं वह सुमेरु गिरि पर्वत है, और जो लंका नगर से दक्षिण की ओर थोड़ी दूर है, यद्यपि यह पर्वत ऊंचाई में बहुत ऊंचा नहीं परन्तु लम्बाई चौड़ाई में सब से बढ़ कर है, इस पर चढ़ कर जो प्राकृतिक दृश्य दिखलाई देता है वह अतीव मनोहर है एक ओर समुद्र का जल अपनी अनूठी लहरें दिखला रहा है, जिस पर सूर्य्य की किरणें इस की शोभा को और भी बढ़ा रही हैं दूसरी ओर लंका का दृश्य दीख रहा है, और इधर उधर हरित वर्ण के वृक्ष झूमते हुए और भी आनन्द बढ़ा रहे हैं। और इनके बीच में कई स्थानों में तम्बू तने हैं, और ठौर ठौर पर युद्ध के झण्डे और भी शोभा बढ़ा रहे हैं, इन सब के मध्य में वह तम्बू जो समस्त तम्बूओं से ऊंचा और सुन्दर है और जिस के इतस्ततः नंगी तलवारें निकाले बड़े २ युवक फिर रहे हैं, और जिस पर सब से ऊंची रक्त वर्ण की ध्वजा उड़ती हुई

शत्रुओं के मन को बिला रही है, महाराज रामचन्द्र जी का डेरा है, जिस में वानरद्वीप के राजा और वीर बैठे हुए हैं * अंगद के अकृतकार्य्य हो लौट आने तथा रावण की अदूरदर्शिता पर खेद प्रकट कर रहे हैं।

सुग्रीव—महाराज ! आप व्यर्थ खेद प्रकट कर रहे हैं। वह बुद्धि विहीन वंश का शत्रु जब तक युद्ध क्षेत्र में हमारे योद्धाओं के हाथ न देख लेगा अपने हठ को नहीं छोड़ेगा।

†सुखेन—निःसन्देह सुग्रीव सत्य कहता है अब विलम्ब का समय नहीं, जहां तक सम्भव हो शीघ्र लंका को घेर लेना उचित है।

विभीषण-'आहा' आप लोग क्या विचार रहे हैं, किस सोच में पड़े हैं रावण तो अपना पूर्ण प्रबंध कर युद्ध के लिए उद्यतहै।

*-महाराज रामचन्द्र जी ने अंगद को भेजकर एक बेर फिर रावण को समझाने का यत्न लिया परन्तु अभागा रावण अपना हठ धर्म को छोड़ने को उद्यत न हुआ। कई ग्रंथ कर्ताओं ने लिखा है कि अंगद रावण के दरबार में जाकर अपना पद इस नियम से जमाया था कि यदि रावण उसका कोई अध्यक्ष इसके पांव को भूमि से उठावेगा तो वह रामचन्द्र जी को युद्ध यत्न त्याग और सीता जी को ऐसे ही छोड़ देने के लिये तैयार करेगा, परन्तु बालमीकी रामायण में वह कहीं नहीं लिखा और न ही किसी अन्य वंश जाति इतिहास लेखक ने इस बात का वर्णन किया है देखो बालमीकी रामायण सर्ग ४१ लंका कांड पृ० ४४।

†यह धर्मराज का पुत्र था।

सुग्रीव—"क्या इस विषय में कुछ ताजा समाचार आप को मिला है" ?

विभीषण–हां! हां! अभी मेरे मन्त्रियों ने खबर दी है कि अंगद के आने के अनन्तर रावण ने पूर्वी द्वार पर परहस्त, दक्षिनी द्वार पर महोदर, पश्चिमी द्वार पर मेघनाद और उत्तरीय द्वार पर सकसारण को असंख्य सेना सहित नियत किया है।

सुग्रीव चकित हो रामचन्द्र जी की ओर देखने लगा, तब रामचन्द्र जी ने कहा।

(कुछ काल सोचने के अनन्तर) अच्छा परहस्त के संमुख युद्ध करने को विभीषण, कामोद महोदर से, सतबली और अंगद मेघनाद से तुम (सुग्रीव) और गज सकसारण के सामने हम और हनुमान रहेंगे, मेघवर्ण, मेहकूट पालोपगण, राजा सूर्य्य के पुत्र और सोमुख तथा दुर्मुख, ब्रह्मा के पुत्र यहां की रक्षा में नियुक्त हों, गवाच्छगवी, नल, नील जौर जामवन्त यह चारों हम लोगों की सहायता के लिये उद्यत रहें और युद्ध के समय जहां पर आवश्यकता हो सहायता के लिये पहुंच जायें।

लक्ष्मण—(हाथ जोड़कर) महाराज मैं आप को अकेला नहीं जाने दूंगा, मैं आपके चरणों के साथ रहूंगा।

रामचन्द्र–(कुछ विचारने के अनन्तर) अच्छा तुम ने भी उत्तरीय द्वार पर हमारे संग रहना।

४४वां अध्याय

लंका दुर्ग को घेरना ।

विद्यु नभ मण्डल में गर्भों, चमके ज्यों असिधारा ।
सुखराम दास लंका नगरी के, घिरि गये सकल दुवारा ॥

अमृत वेला है, सुमेरुगिरि के इतस्ततः के उद्यान में जहां कि थोड़ी देर पहिले घोर अंधकार युक्त रात्रि ने शांतिनिःशब्द को विस्तृत कर रक्खा था इस समय वानरद्वीप के शूर वीरों और योधाओं से भरपूर है साहसी उद्यत योधा भांति २ के वस्त्र पहिर खड़े इन के तीव्र वेगा घोड़े जिन के रोम रोम से वीरता टपक रही है इनको मौन धारण किये खड़ा नहीं रहने देते सिरों को हिला २ पाओं को उठा २ भूमि पर मारते हुए करवटियें बदल रहे हैं, जिन पर सवार नेजे ताने खड़्ग निकाले बैठे हैं और बाग डोर इस जोर से खेंचे हुए हैं कि इन दोनों की ग्रीवा दोहरी हुई जाती है और इससे अतिरिक्त इस बात का तनिक विचार और परवाह न करके किसी आने वाले समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं इनके आगे सहस्रशः पैदल खड़्ग निकाल छाती ताने आगे खड़े हैं, और इनकी तलवारों

र सूर्य्य की किरणें घबरा २ कर पड़ती हैं, और इतस्ततः
पनी दमक को विस्तीर्ण कर रही है, देखने वालों की दृष्टि
सको देखकर लोहे की दीवार के धोखे में आ जाती है इनके
ागे वह वीर सेना है जो गदा युद्ध में प्रवीण और अद्वितीय
और जो उनके आगे हैं वह धनुष विद्या में निपुण हैं जिनके
र अजगर के समान मुष्टि प्रमाण जिव्हा निकाले भयानक
मय दिखा रहे हैं जब सब सेना भली भांति कटिबद्ध होकर
ड़ी हो गई तो प्रत्येक सेनापति अपनी आधीन सेना को वीरता
काशक शब्दों से साहस बढ़ाने लगा, यद्यपि इस समय बड़े
ड़े योद्धाओं के शब्द सुनाई दे रहे हैं परन्तु इस समय साहस
र्द्धक बल युक्त जो शब्द हमारे कानों में पड़ रहे हैं वह हनु-
ान जी की गर्ज के हैं सुनिये क्या कह रहे हैं वीरो! सुभाग्यवश
ह समय आगया है जिसकी तुम चिरकाल से प्रतीक्षा कर
हे थे और मन में विचार प्रवाह काल में फंसे हुए थे आज
ुम्हारी उन तलवारों का फल जो चिरकाल से अपनी मियानों
में पड़ी हुई तड़फ रही थीं देखने का समय आगया है मुझ
को इस बात के कथन की आवश्यकता नहीं कि वानर द्वीप
के भाग्य का फैसला आप लोगों के साहस पर निर्भर है
क्योंकि तुम लोग स्वयं अपने देश के क्लेशों को समझ रहे हो,
और देशीय स्वतन्त्रता का भार अपने पर ले चुके हो, हां इतना
कथन कर देना आवश्यक समझता हूं कि यदि तुम लोगों
ने तनिक भी आलस किया तो स्मरण रहे कि केवल आप

लोगों को ही लज्जा सहारनी न पड़ेगी वरञ्च वानर द्वीप का बच्चा २ इसके परिणाम का भागी होगा, राक्षस लोग पहिले से भी अधिक क्लेश देंगे और इसके अतिरिक्त तुम्हारे देश को जीवित मृतक पद प्राप्त होगा वीरो ! युद्ध भूमि में शत्रु पर आक्रमण कर प्राण दे देना सच्चे सिपाहियों का धर्म्म है, ऐसे समय उपदेश करने की आवश्यकता नहीं, हां इतना स्वयं अवश्य विचार लें कि यदि तुम लोगों में कोई दुःसाहसी हो व संग्राम से डरता हो वा जिसको अपने प्राण प्रिय हों, वह खुशी से तलवार त्याग अभी चला जावे हम को भी उस की आवश्यकता नहीं" ।

सिपाही—उच्च स्वर से नहीं २ हम में कोई भी ऐसा कायर नहीं है हम लोग जीवन देने को उद्यत हैं अभी आप को विदित हो जावेगा, कि हम किस प्रकार राक्षसों का वध करते हैं। हमारे बाण किस विधि उनके अपवित्र शरीरों में धंसकर इन को नष्ट करते हैं, महाराज ! आप धैर्य्यावलम्बन करें हम लोगों में कोई ऐसा भयातुर नहीं जो संग्राम में पीठ दिखला बंश को कलंकित करे और बानर द्वीप का शत्रु कहलाये, हमने राजपूत ंश में इस लिये जन्म धारण नहीं किया, कि प्राण बचा कर घर में जा बैठें हमारा राजपूती रुधिर हमारे शरीर में खौल रहा है हमारी पियासी खड़गें और भयानक तीर शत्रु बध्र के लिये बड़ी आधीरता से आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

हनुमान—(प्रसन्न होकर) हां ! हां आप लोगों से यही

आशा है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारे हाथ से राक्षसों का बचना कठिन वरञ्च असम्भव है इस प्रकार हमारा महावीर सेनापति कह ही रहा था कि शंखों की ध्वनि कानों में पड़ी जिसको सुनते ही सब सेना ने दुर्ग पर आक्रमण किया, सवारों के आगमन से भूमि कांप उठी, रथों और शस्त्रों की झनझनाहट और गदाओं के प्रति दनिक दुर्ग द्वारों पर प्रहारों से आकाश गूंज उठा, बाणों की वर्षा से सूर्य्य भगवान की तीव्र किरणें भी मध्यम पड़ गईं युद्ध सम्बन्धी बाजों की ध्वनि वायु में गूंज कर वीरों का साहस बढ़ाने लगी।

उधर दुर्ग (किला) से सेनापतियों (परहस्त और मेघनाद आदि) के वीर सिपाहियों ने भी अपने रुधिर पिपास बाणों से पूर्ण रूप से उत्तर देकर बानर लोगों को तंग कर रक्खा है, क्या मजाल है कि एक बाण भी खाली जावे, आह ! क्षणमात्र में वीरों के रुधिर से भूमि लाल हो गई, सैकड़ों घायल वीरों के घाओं से रुधिर के फव्वारे उछल रहे हैं, और कई एक विघातक संग्राम भूमि में शयन किये पड़े हैं परन्तु बानर लोग संग्राम में ऐसे तत्पर हैं कि उनकी ओर तनिक ध्यान भी नहीं करते, हां राक्षस उनकी यह दशा देख कर रावण के जय जय कारे बुला रहे हैं, वीर हनुमान सुग्रीव और अंगद इन जयकारों से तनिक भी नहीं घबराते और अपने बाहुबल प्रताप के सहारे बड़े वेग से धनुषों को तान २ तीरों को छोड़ रहे हैं, यदि कोई विचार मन में उपजता है तो वह यह रावण की

सेना तो ऊंचे दुर्ग छिद्रों से इन पर वाण चला रही है और इन के बाण व्यर्थ जा रहे हैं इसी लिये समस्त सेना ने द्वारों पर आक्रमण किया है कि उसको तोड़कर भीतर चले जावें यद्यपि राक्षस लोग नाना प्रकार से उनको रोक रहे हैं परन्तु नहीं वीर लोग बाणों की वर्षा और अपने प्राणों का तनिक भय न कर अपने कार्य्य में तन मन से दृढ़ द्वार भंग करने में तत्पर हैं ओहो ! कैसे बल से गदा प्रहार कर रहे हैं जिन के धमाधम के शब्द से कान भी बहरे हुए जाते हैं वह लो उत्तरी द्वार तो टूट गया और वानर लोग छाती ताने केसरी सिंहों के समान भीतर घुसने लगे इधर परहस्त की सेना ने बड़ी वीरता से इन को रोक लिया अब तो आक्रमण कर्त्ताओं का एक पद भी आगे न जा सका वरञ्च बन्धन माली और जम्बू माली के आधीन सेना ने तो यह वीरता दिखलाई कि वानर लोगों को कुछ पीछे ही हटना पड़ा और विस्तृत मैदान में जो लंका दुर्ग के बाहर है परस्पर युद्ध होने लगा एक पल भर में वीरों की तीक्ष्ण धार खड्गों ने सहस्रों योधाओं को सदैव के लिये भूमि पर सुला दिया नेजे और बरछियें निर्भय हो वीरों की ग्रीवा का रुधिर पान करने लगीं गदा प्रहार जिस पर हुआ उसका सिर फट गया और बेसुध हो भूमि पर गिर पड़ा, परस्पर बड़े वेग से खड्ग अपना काम करने लगीं ।

कियो आक्रमण जब हनुमाना, रण में मचा महा घमसाना ।
तोड़ दियो परहस्त अभिमाना, गर्जो गर्जो अतिशय बलवाना ॥

मेघनाद परहस्त को पराजित देख सहायतार्थ आया और सिंह के समान गुंजारता हुआ आक्रमण करने लगा, परन्तु देखिये वीर लक्ष्मण जी ने उसे किस प्रकार रोक लिया है, महाराज रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी की यह वीरता देख शाबाश शाबाश कही और उधर जंगी बाजों की ध्वनि के शब्द से आकाश गूंज उठा और सुखेन के शंख का शब्द सुनते ही गज और गवाक्ष भी आ गर्जे, मेघनाद ने क्रोधित हो ऐसे वेग से लक्ष्मण जी पर गदा प्रहार किया कि यदि उसके मस्तक पर छू जाती तो सिर टुकड़े २ हो जाता परन्तु रथवान की बुद्धि देखिये कि कैसे शीघ्रता से रथ को चक्र दे बचा कर ले गया है रथवाही की फुर्ती ने मेघनाद की क्रोधाग्नि को और भी बढ़ा दिया और यह अतीव क्रोध से बाण वर्षा करने लगा परन्तु इसका उत्तर वीर लक्ष्मण जी साथ के साथ दे रहे हैं, गज गवाक्ष ने भी बाण वर्षा से राक्षसों का नाक में दम कर दिया, आशा थी कि शीघ्र ही राक्षस लोग पीठ दिखलाते परन्तु परहस्त और निकुम्भ के सहायतार्थ आने पर उनका साहस बढ़ गया और उखड़े हुए पद फिर स्थिर हो गये और बड़े वेग से गर्जते हुए आक्रमण करने लगे, आहा ! राक्षसों को रावण की जय २ पुकार कर आक्रमण करने की देर थी, कि महाराज रामचन्द्र जी की सेना में क्रोधाग्नि भड़क उठी, वीरता के मद से उन्मादित हो साहस प्रवाह में सवार हो कर परस्पर एक दूसरे की सुध भूल गये और तीक्ष्ण खड्गें वीरों की कड़ी अस्थियें चबाने लगीं, तीक्ष्ण

बरछियें पसलियों से रुधिर प्रवाह चलाने लगीं, एक क्षण में सहस्रों जीव मारे गये, अंगद और हनुमान के क्रमशः आक्रमणों ने राक्षसी सेना में हल चल डाल दी, उनके पाँव मैदान से उखड़ गये, सुखेन की बीर सेना तो यह कह रही है जिस प्रकार हो सके आज ही इनका विनाश कर दें, परन्तु सूर्य्य भगवान अधिक विनाश न देख सका और पश्चिम दिशा में जा छिपा और बेबश हो शूरवीरों को अपना जोश कल पर रखना पड़ेगा।

संघार रात्रि ॥

अर्द्ध रात्रि का समय है जब कि घोर अन्धकार के होने से हाथ को हाथ प्रतीत नहीं होता, घटा टोप तिमिर चारों दिशाओं में छा रहा है समस्त संसार अन्धकार मय प्रतीत होता है, सुमेरु गिरि की ऊंची २ चोटियें इस समय अतीव भयानक प्रतीत होती हैं, परन्तु इसकी उस समथल भूमिका से जहां पर कृत्रिम प्रकार से उजाला हो रहा है, बहुत से तम्बू दिखाई देते हैं जहां से कुछ मनुष्यों के बोलने की आवाज भी आरही हैं वह प्रायः वही सिपाही हैं जो महाराज रामचन्द्र जी के कैंप के रखवाले है, आहा ! निःसन्देह यही ठीक है वह देखिये समस्त सेना के इतस्ततः कैसे २ जवान नंगी तलवारें कांधों पर रखे, युद्ध के लिये उद्यत ऐसे देखने में भासते हैं जैसे दीवार खड़ी है, क्या सामर्थ्य है कि पक्षी भी इन की आज्ञा के बिना अन्दर घुस सकें, या पास भी आ सके । पाठक गण

यह दीवार एक स्थान ही नहीं वरञ्च तीन स्थानों में दो दो सौ गज के अन्तर पर इसी प्रकार रखवाले खड़े हैं । क्योंकि रात्रि में शत्रु आक्रमण न कर सके, हैं ! यह सब बातें करते २ चुप क्यों हो गये इनके मुख बन्द क्यों हो गये ? क्या इन पर निद्रा ने अपना डेरा डाल दिया है या मौन धारण की आज्ञा मिल गई है, नहीं महाराज ! यहां कुछ भेद है, वह देखिये वह असाध्य प्रकाश की चमक जो प्रायः पहले के चक्र (बिगड़) से आ रही है उसने इनके मुख को बन्द कर सचेत कर दिया है और यही कारण है कि यह लोग बड़े चकित हो उसी ओर को निहार रहे हैं, न जाने इस में क्या भेद है कि देखते २ समस्त सेना में हलचली मच गई है और अब प्रत्येक सिपाही शास्त्रास्त्र धारण किये ईशान कोण की ओर जा रहा है और क्षण भर में समस्त सिपाही एक २ गज के अन्तर पर कटि-बद्ध हो स्थिर हो गये हैं एका एक शंख ध्वनि की गूंज कानों में आई, आह ! यह शंख ध्वनि नहीं थी वरञ्च किसी कमानी वाले यन्त्र की कूक थी, जिसके सुनते ही सेना ने दायां पांव उठाया और सब के सब इस प्रकार आगे बढ़े जिस प्रकार आज कल की सेना "क्युइकमार्च" के शब्द से आगे बढ़ती हैं, महाबीर हनुमान जी दाईं ओर सेना के आगे जा रहे थे कुछ दूर ऊपर जाकर न जाने क्या कहा कि जिसको सुनते ही उस के आधीन की सेना तीन भागों में विभक्त हो गई और इसी प्रकार से सामन्त अंगद भी अपनी २ सेना को लेकर आगे

बढ़े और कुछ ही दूर आगे बढ़े होंगे कि शत्रु ने आक्रमण कर दिया और नील ने जिस के आधीन यह विभाग था इस वेग से शंख बजाया कि आकाश भी गूंज उठा पशु पक्षी भी भयभीत हो अपने २ घोसलों में दबक गये, और इतने अवसर में हमारा वीर सेना लेकर शत्रु पर जा टूटा और तीव्र संग्राम होते लग गया और दोनों ओर के सिपाही वाण वर्षा करने लग गये। आहा ! इस समय यदि कुछ सुनाई देता है तो यही कि मारलो, मारलो, जाने न पावें, थोड़ी देर में सहस्रों वीर अपनी वीरता दिखला मृत्यु शय्या पर लेट गये, कई तन शिर से भिन्न होकर असार संसार को साक्षी देने लगे। जब लग सेना में कुछ अन्तर रहा और वाण वर्षा करते रहे परन्तु अब खड्ग की कटाकट की आवाज और गदा प्रहारों की चोट बारी की कठिन अस्थियों के तोड़ने वाली ध्वनि सुनाई देने लगी या आंखों को चुन्धिया देने वाली बरछियों की तीक्ष्ण नोकें साहसी वीरों की पसलियों में छेद करती हुई दिखलाई देती हैं, आहा ! ज्यूं ही धूम्र सेनापति के शिर अंगद ने गदा की वार की और वह वार सह न सका और मृत के समान अचेत हो गिर पड़ा और इस को गिरते देख रावण की सेना में कोलाहल मच गया, सबके सब क्रोध में आ रामचन्द्र जी की सेना पर आक्रमित हुए। आहा ! मेघनाद और परहस्त को देखिये कैसे क्रोध में आ वानरी सेना को काट रहे हैं दीन अंगद यद्यपि घाओं से घायल हो रहा है तथापि शत्रुओं पर वार करने

में तनिक त्रुटि नहीं करता, वीर हनुमान जो निकुम्भ से संग्राम कर रहा था अंगद पर शत्रुओं की प्रबलता देख क्रोध से संतप्त हो गया, जामवन्त को उस के सन्मुख छोड़, नल और नील को साथ लेकर आपत्ति की भांति मेघनाद आदि पर जा टूटा, इन को बढ़ते देख सब के साहस बढ़ गये और वीरता के मद में ऐसे मादित हो गये कि वही मशालें जो प्रकाश का काम दे रही थीं, नेजे और बरछियों का काम देने लगीं। हमारे महावीर बली हनुमान ने इन का ऐसा साहस देख उच्च स्वर से कहा 'निःसन्देह हमें इस समय प्रकाश की कुछ आवश्यकता नहीं चमकीले बाणों के फल तीरों की मुखियां और तलवारों की धारें प्रकाश के लिये बहुत हैं यही रात्रि दीपक है, वीरो ! इन अधर्मी नपुंसकों की क्या सामर्थ्य है, कि तुम्हारे सामने खड़े रह सकें, मारो ! मारो !" इस कथन ने बानर लोगों के मन में एक अतीव शक्ति उत्पन्न करदी और आगे बढ़कर घोर भयानक संग्राम करने लगे, एक क्षण में मृतकों के ढेर लग गये, हनुमान और मेघनाद का हाथों हाथ संग्राम होने लगा, देर तक परस्पर मल्ल युद्ध होता रहा परन्तु कोई भी विजय न पा सका, मेघनाद की यह कार्य्यवाही श्लाघनीय है कि अभी तो इधर ऐसे संग्राम में कटिबद्ध था कि उधर देखते के देखते ही लोप हो गया, और परहस्त संग्राम में खड़ा हुआ देख पड़ा। उस समय मेघनाद को वहां न देख कर सब को विश्वय हो गया है, कि वह भाग गया है और

राक्षसों के पांव भी संग्राम से उखड़ते हुए दिखाई दिये इस लिये यह वीर तो इनके पीछे लग रहे थे उधर मेघनाद ने ऐसी फुर्ती की कि विमानारूढ़ होकर उस स्थान पर जा पहुंचा (जहां महाराज रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी प्रभृति वज्रदृष्टि से जो रावण का एक मुखिया सेनापति था लड़ रहे थे) और झटाझट बाण वर्षा करनी आरम्भ करदी यद्यपि यह दोनों भाई सुग्रीव, सुखेन, विभीषण प्रभृति बाण का उत्तर तत्काल दे रहे हैं, परन्तु वीर मेघनाद के बाणों ने इन को चकित कर दिया है, क्योंकि शत्रु का कोई चिन्ह भी प्रतीत नहीं होता कि कहां से वार कर रहा है अन्त में बहुत ही सोच विचार के अनन्तर विभीषण ने कहा कि आप मेघनाद की माया से बचते रहो, यह अतीव मायावी है, इसे छल बहुत आते हैं, इस से युद्ध समझ कर सावधानता से कीजिये इस में तनिक सन्देह नहीं कि ऐसी असाधारण शीघ्रता एक मात्र मेघनाद का क्रोध है महाराज रामचन्द्र जी ने यह सुन कर अग्नि बाण धनुष से छोड़ा जो विद्युत के समान चमकता हुआ धनुष से निकल ऊंचे आकाश में जा प्रकाशित दिन के समान उजाला दिखला विभीषण के कथन की साक्षी दे गया, परन्तु इतने में मेघनाद ने दो *सर्प नामी बाण झटाझट निज धनुष से छोड़े यद्यपि इन वीरों ने अपनी रक्षा में किंचित् त्रुटि न रक्खी, परन्तु दोनों के वक्षस्थल घायल हो गये और थोड़े ही काल में वह बेसुध

* एक प्रकार के बाण थे जिनके फण सांप के मुख के समान होते हैं ।

हो गये इनको इस दशा में देख कर सुग्रीव ने सब से पहले यह काम किया कि उन को विश्रामालय में ले गया त्रिभीषण और सुखेन ने धनुष विद्या की शक्ति ऐसी प्रकट की, कि यदि मेघनाद वहां से भाग न जाता, तो उस के प्राण बचने कठिन थे, उधर जब हमारा महावीर सेनापति और नल नील प्रभृति रावण की सेना को परास्त कर के वापस आये तो महाराज रामचन्द्र और लक्ष्मण जी की यह दशा देख कर अतीव चिंतातुर हुए। इस समय समस्त सरदार निराशता का पट ओढ़े चारों ओर महाराज रामचन्द्र और लक्ष्मण जी के पास (जो बेसुध पड़े हैं रुदन करते हुए) बैठे हैं, और हर एक के मुख से उदासीनता टपक रही है।

विभीषण—(घाव को ध्यान से देखकर) ईश्वर ने बड़ी कृपा की कि इनके घाव कोई ऐसे गहरे और सन्देहमय नहीं हैं।

हनुमान—महाराज ! तो इसका क्या कारण है कि यह ऐसे बेसुध पड़े हैं ?

विभीषण-'यह केवल बाणों के बिष का फल है, सो देखिये अभी औषधि हुई जाती है, यह कह कर अपने मन्त्री से कुछ कहा जिसने तत्काल बूटी लाकर सुखेन के हाथ में दी, जो देखिये दोनों भ्राताओं के घाव पर लगा रहा है, और विभीषण इसे पानी में रोगियों के पिलाने के लिये घोर रहा है—पाठकगण ! इस बूटी के प्रताप से मूर्छितों के घाव में तत्काल शांति आगई, थोड़ी देर में दोनों भाई उठकर बैठ गये, और विभीषण तथा

व की ओर निहार कर यह कहने लगे, "आहा ! विदित इस बाण में क्या जादू था, कि लगते ही शरीर में अग्नि लग गई और बेसुधी छा गई हम ने बहुतेरा अपने आप को संभाला परन्तु व्यर्थ हुआ"।

विभीषण—महाराज यह दुष्ट मेघनाद इसी प्रकार रता है। धर्म युद्ध तो यह जानता ही नहीं, जब दूसरे को जयी देखा छल पर कमर बांधी।

रामचन्द्र—अतीव शोक है, कि यह लोग बात २ में धर्म्माचरण करते हैं, इन को परलोक का भी कुछ विचार हीं।

विभीषण—"जब मन्द भाग्य होते हैं तो बुद्धि मलीन हो जाती है। धर्म्माधर्म्म का कुछ विचार नहीं रहता"

महाराज रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी को आरोग्यावस्था में देख कर सेनाध्यक्षों और सेना के शरीर में प्राण आ गये और सेना में हर्ष से बाजे बजने लगे।

४५वां अध्याय

२य युद्ध ३य दिन, वीर हनुमान और धूम्र।
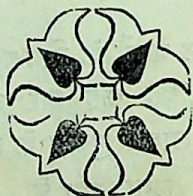
दिन का प्रथम पहर समाप्त हो चुका है, सूर्य की तीक्ष्ण किरणें इन वीरों की खड़गों पर जो संग्राम भूमि में बड़ी निर्दयता से एक दूसरे पर वार कर रहे हैं। पड़ कर भयानक दृश्य दिखला रही हैं, दोनों ओर की सेनायें इस समय कुछ ऐसे जोश में हैं कि इनको शरीर की भी कुछ सुध नहीं प्रत्येक निज कर्त्तव्य पालन में तत्पर हैं। अरोग्य वीरों के शरीरों से पसीना पानी के समान बह रहा है, और घायलों के शरीरों में रुधिर के फव्वारे उछल रहे हैं, परन्तु यह लोग संग्राम कार्य में तत्पर हैं कि इन बातों की कुछ भी परवाह नहीं करते और बड़ी सावधानी से एक दूसरे पर वार कर रहे हैं। महावीर हनुमान अपनी सेना की कमान बड़ी बुद्धिमत्ता से कर रहा है, साहस वेग प्रवाह प्रति नाड़ी में लहरें मार रहा है, वीरता पसीना का रूप धारण किये मस्तिष्क से टपक रही, और युद्ध के विचार मन में मानों रूप धारण कर

रहे हैं, और दृष्टि बड़ी सावधानी से पहिले अपनी सेना पर पड़ती है, और फिर शत्रु दल पर जाकर चारों ओर फैल जाती है।

पाठक महाशय ! रावण की सेना में जिसको सेनापति का पद प्राप्त है, वह धूम्र है, जो देखिये निजाश्रित सेना को किस बीरता से उद्यत कर रहा है, और आप भी देवांतक और नरांतक के सहित आक्रमण कर रहा है, इसका आक्रमण देख रामचन्द्र जी की सेना में ऐसा जोश फैल गया है कि सब के मुख रक्त वर्ण हो गये हैं। यह दशा देख हमारा बीर ऐसा गर्जा कि आकाश भी गूञ्ज उठा और शत्रु सेना के बड़े २ योद्धा तक कम्पायमान हो उठे। उधर सांग्रामिक वाद्य बड़े जोर शोर से बजने लगे और देखते के देखते ऐसा घोर संग्राम होने लगा कि पहिले कभी सुनने में भी न आया था, उस समय धूलि से रणक्षेत्र में ऐसा अन्धकार छा गया कि मित्र शत्रु का भी पहिचान न हो सकती थी, खड्ग निर्दयता से चलने लगी, शूरवों ने खेद से तड़प २ कर पांव भूमि पर फैलाने आरम्भ कर दिये सहस्रों तन शिर से भिन्न होकर पृथिवी पर पड़े हैं, जिस के सिर कंदुक (गेंद) के समान इधर उधर लुड़क रहे हैं। धूम्र हमारे वीर का साहस देख इस पर आ टूटा दोनों ने एक दूसरे पर सहस्रों खड्ग प्रहार किये, यहां तक कि दोनों के शरीर रुधिराक्रांत होगये, खड्गधारा प्रहारों से मन्द पड़ गईं अब दोनों वीर खड्ग को त्याग गदा युद्ध करने लगे, परन्तु जैसे धूम्र ने कूद कर गदा प्रहार करना चाहा, हनुमान

जी ने निज वीरता से अपनी ढाल पर रोक लिया और घूम कर अपनी गदा का ऐसा प्रहार किया कि उसकी कटि टूट गई अस्थियें चूर चूर हो गईं और बेसुध हो भूमि पर गिर पड़ा, और ऐसा गिरा कि फिर उठने की सामर्थ्य न रही। नरांतक और देवांतक प्रभृति बहुत से योद्धा इन्द्र जानु और गवांची के हाथ से परलोक गमन कर गये. बस फिर क्या था रावण की सेना का साहस हत हो गया भागने के सिवा कुछ बस न चला और महाराज रामचन्द्र जी की सेना प्रसन्नता से जय २ कारे करती हुई निज केम्प में आ गई।

४६ वां अध्याय

तीसरा दिन हनुमान और वज्र रुष्ट का संग्राम।

सुर्यागमन सुनकर रात्रि अन्धकार संसार को शोक दृष्टि से देखती हुई कूच कर गई और शूर वीर हनुमान अंगद गज गवी और जामवन्त प्रभृति अपनी २ आधीन सेना को लेकर संग्राम में आ विराजे, दूसरी ओर से वज्र रुष्ट महापारस, महोदर अति वीर प्रभृति आ गर्जे संग्राम वाद्य बजा शंख ध्वनित हुए युद्ध यंत्रों ने भांति २ के उत्साहप्रद राग अलापने आरम्भ किये। वह खड्गें जो थोड़ी देर पहिले मियानों में छिपी हुई थीं एकाएक निकल पड़ीं धनुष चढ़ाये गये, नेजे झुक गये, वीर आगे बढ़ २ कर एक दूसरे पर वार करने लगे और बड़े वेग से संग्राम होने लगा, हमारे महावीर सेनापति की सेना पहिले से बढ़ कर जोश दिखलाने लगी, क्या सिपाही क्या अध्यक्ष सब के नेत्र वीरता और जोश से लाल हो गये और रुधिर नाड़ी २ में वीरता से लहरें मारने लगा। उधर रावण की सेना यद्यपि इनसे अधिकतर जोश दिखाती और छाती ताने

सामना करने को तत्पर है परन्तु इनमें वह साहस, फुर्ती और सावधानी प्रतीत नहीं होती, जो एक शूर वीर में होनी उचित है वरञ्च इनके मन भय से दबे हुए शरीर ढीले पड़े हुए दिखलाई देते हैं जो प्रायः तीन दिन के नित्य पराजय और वीर धूम्र की मृत्यु ने इनके साहस को घटा दिया है और बज्र रुष्ट इनकी यह दशा देख तत्काल घोड़े को दौड़ा कर इनके निकट पहुंचा, और ऐसा मन्त्र फूंका कि इनकी खड्गें जो रुक रुक कर चल रही थीं तत्काल विद्युत के समान रण भूमि में उपस्थित वीर सिपाहियों पर पड़ने लगीं क्षणमात्र में रुधिर की नदियें बहने लगीं मृतक योधाओं के शरीरों के ढेर लग गये एक क्षण में प्रलय ने अपना रूप दिखला दिया, ओहो! वीर अङ्गद और बज्र रुष्ट का संग्राम हो पड़ा, देर तक दोनों परस्पर बाणों की वर्षा करते रहे यहां तक कि दोनों के शरीर छलनी से हो गये, बाण समाप्त हो गये तो भी इन वीरों ने साहस न छोड़ा और खड्गें निकाल लीं और एक दूसरे पर वार करने लगे बज्र रुष्ट की खड्ग की धारा कैसे चल रही है कि अंगद को इससे अतिरिक्त कि अपनी रक्षा कर उसे वार देने का समय ही नहीं देती यह समीप था कि वह बेसुध हो भूमि पर गिर पड़े कि एकाएक हमारे सेनापति हनुमान जी की उधर दृष्टि जापड़ी कि महापारस से संग्राम कर रहा था, इसने तत्काल एक तीर बज्र रुष्ट पर ऐसा चलाया जो उसका हृदय विदीर्ण करता हुआ छाती से पार निकल गया और शत्रु पर

ऐसा ललकारता हुआ झपटा कि सुनने वालों के मन कांप उठे, अन्तःकरण फट गये और अचेत हो उसकी ओर देख ही रहे थे, कि हमारे महावीर ने बड़े वेग से उस पर गदा का प्रहार किया वीर वज्र रुष्ट जो पहिले वाण से घायल हो चुका था इसका संहार न सह सका और बेसुध घोड़े पर से गिर पड़ा वज्र रुष्ट की यह दशा देख महापासर और अति वीर क्रोध में भर गये, और घोर संग्राम होने लगा, गदाओं ने अपूर्व वेग धारण किया, वाण व खड्गों ने अनर्थ कर दिया, बाणों की वर्षा ने सूर्य्य के प्रकाश को जीत लिया, वीर गजगवी और जामवन्त ललकार २ शत्रुओं को काटने लगे, और परहस्त तड़प २ कर प्राण देने लगा। यद्यपि महापारस भी एक कार्य्य कुशलवीर है परन्तु इस समय जो सब से बढ़ कर हाथ चल रहा है वह हमारे महावीर सेनापति का है, जिसका एक भी वार खाली नहीं जाता और जिधर कोप दृष्टि करता है समुदाय का समुदाय विनाश करता जाता है:—

जिधर आंख उठाये, सर्व नाश ही नाश है।

पाठकवृन्द ! रामचन्द्र जी की सेना ने ऐसा साहस और वीरता दिखलाई कि शत्रु दल को सिवा भागने के और कुछ न सूझा और विजय हमारे वीर की हुई।

४७वां अध्याय

शूरवीर हनुमान और अनुकम्पन।

रावण ने तो समस्त रात्रि करवटें ले ले कर निकाल दी, परन्तु प्रातः होते अनुकम्पन और महापारस को बहुत सी सेना दे युद्ध भूमि में भेजा, उधर से अंगद मादन सुग्रीव और शूरवीर हनुमान वीर सेना लेकर आ गर्जे, जंगी निशान काल रूप धारकर आकाश में उड़ने लगे संग्राम वाद्य की ध्वनि गूंज २ कर वीरों का जोश बढ़ाने लगी, जिसको सुन कर अधिक धैर्यावलम्बन की सामर्थ्य को त्याग परस्पर शत्रु दल पर जा टूटे तीक्ष्ण खड्गें बड़ी फुरती से चमकीं, और लाल हो गईं, नेजों ने बीरों के सिरों को उछालना आरम्भ किया और निर्दय बरछियां उनकी अस्थियों को तोड़ने लगीं, आहा बीर अनुकम्पन को देखिये कैसी विचित्र कार्य्य दक्षता दिखला रहा है कि इस का प्रत्येक बाण शत्रुओं को घायल किये जाता है उधर से गन्दमादन और सुखेन और हनुमान ने भी इनके वीरों का उत्तर दे देकर इनका नाक में दम कर रक्खा है सार यह है कि वह वह समय है जब कि हर एक शूर बीर के मन में यही विचार

गूंज रहा है कि जिस प्रकार हो सके आज शत्रुदमन कर प्रतिष्ठा प्राप्त करें और वह सब इसी प्रकार मगन वीरता के मद में मदातुर हैं, यहां तक कि किसी को निज शरीर की सुध नहीं इन के पांव बध हुए वीरों की छातियों पर पड़ रहे हैं और यह उनको रौंधते हुए आगे बढ़ २ कर खड्गों का वार करते जाते हैं और इस के अनन्तर बहुत देर तक घोर संग्राम होता रहा यहां तक कि दोनों ओर की सेना घबरा गई और सहस्रों वीर अपने संगियों के मृतक शरीरों को चकितता से देखते हुए मृत्यु शय्या पर लेट गए और अनुकम्पन भी जो हमारे महावीर की सेना से लड़ रहा था, विजय न पा सका और एक ही तीर के प्रहार से शिर नीचे झुका भूमि पर गिर पड़ा। गन्धमादन सेनापति के हाथ से मारा गया और सुग्रीव ने उस को भी गन्धमादन के ही साथ रण भूमि में सुला कर निज जोश को ठण्डा किया।

पाठकगण! आज की विजय का धुरन्धर हमारा वीर सेनापति हनुमान ही था। वह देखिये रावण की सेना किस विधि हार कर पीठ दिखाये जा रही है।

अड़तालीसवां अध्याय

५म, दिवस संग्राम।

वीर हनुमान और कुम्भकर्ण।

तीन चार दिन की निरन्तर हार और नित्य की पराजय उन शूरवीरों की मृत्यु ने जो युद्ध में मारे गये थे रावण को अतीव दुर्मन और चिन्तातुर कर दिया रात्रि तो जैसे कैसे निकाली, प्रातःकाल होते ही कुम्भकर्ण को बुला कर कहने लगाः—

क्षमा करना—आप के विश्राम में बाधा डाली है, कुसमय आने की तकलीफ दी ! परन्तु क्या करूं बेवश हूं। तुम्हारे सिवाये कोई दूसरा दिखाई नहीं देता जो रामचन्द्र और वानरी सेना के सन्मुख जा सके। हां ! बड़े २ शूरवीर जिन के आश्रय यह राजधानी सुप्रसिद्ध थी युद्ध में परलोक गमन कर चुके हैं सहस्रों वीर प्राण दे चुके हैं कोश खाली दीख पड़ता है और कार्य साफल्यता की कोई भी आशा नहीं प्रतीत होती।"

कुम्भकर्ण—'यह समय चिंतासागर में डूबने का नहीं वरञ्च वीरता और साहस से काम लेने का अग्नि की वह चिनगारी

जो चिरकाल के शांति रूप भण्डार में पड़ी हुई सुलग रही थी एक दिन तो भड़कनी ही थी। यदि इस समय ऐसा आतुर और चिंतातुर होना था तो यह पहिले विचारना था अपने मन्त्री तथा बन्धुवर्ग के कथन पर आचरण करना था खेद तो यह है कि उस समय हम लोगों ने बहुतेरा समझाया अनेक यत्न किये परन्तु आपने एक न मानी केवल हमारा समझाना ही नहीं वरञ्च खर और दूषण की सहस्रों राक्षसों सहित मृत्यु राम लक्ष्मण की वीरता का चित्र तुमको दिखला चुकी थी, तथापि हम लोगों की प्रार्थनाओं पर किञ्चित् ध्यान देने के स्थान इस विपरीताचरण पर तुम दृढ़ प्रतिज्ञ हो गये, यहां तक कि साधु प्रकृति विभीषण को इस बात से घर घाट छोड़ना पड़ा सोये हुये सिंह को जगाना और फिर सुख मय शांति चाहना असम्भव है।

जैसी करनी वैसी भरनी। (ग्रंथ कर्त्ता)

राजन! "यद्यपि वह समय तो हाथ से जाता रहा है और सहस्रों वीर मारे जा चुके हैं परन्तु अब भी उनके क्रोध को शांति करने का यदि कोई उपाय है तो वह यह है कि आप सीता महारानी को साथ लेकर श्री रामचन्द्र जी से अपने कुकर्मों की क्षमा प्रार्थना कीजिये आप लङ्का की दशा पर ध्यान दें और अपना वंश विनाश न होने दें।"

रावण—(क्रोध में आकर) "बस, जी बस मैं इससे अधिक श्रवण की सामर्थ्य नहीं रखता, मैं दूधारी बालक नहीं हूं मैं

अपनी प्रतिज्ञा पर वैसे ही दृढ़ हूं जैसे कि पहिले था और आगे भी रहूंगा। कुछ चिन्ता नहीं यदि तुम लोग रामचन्द्र से डर कर संग्राम से भागते हो तो मैं अकेला ही अपने वीरों का बदला लेने को बहुत हूं" यह कह और नीचे सिर झुका कर कुछ सोचने लगा।

उधर कुम्भकरण मन ही मन में यह कह रहा था, "हा मैंने बहुतेरा चाहा, यावत्सामर्थ्य यत्न किया कि किसी प्रकार यह आपत्ति टल जाय सर्व साधारण का वध और वंशविनाश न हो परन्तु खेद ! कि दैव की यही इच्छा है, कि पौलस्तमुनि का वंश अब देर तक पृथ्वी पर न रहे, इतने में रावण ने एक वेर कुम्भकरण की ओर देखा और ठण्डी सांस भर कर फिर शिर झुका लिया, रावण की यह दशा देखते ही कुम्भकरणं को भ्रातृ भाव ने आकर्षित किया और कहने लगा:—

"राजन ! मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं था कि आप को कल्पाऊं और दुखित करूं यह कभी न समझें कि मैं संग्राम से डर कर पीछे हटता हूं नहीं ! नहीं ! मैं आप का सच्चा हितैषी और आज्ञाकारी भ्राता हूं जब लग मेरे शरीर में प्राण हैं आप किसी बात का विचार न करें, यदि तारा मण्डल भूमि पर और भूमि तारामण्डल के स्थल चला जावे तो सम्भव है परन्तु मेरे जीते जी आप पर कोई क्रूर दृष्टि करे यह सम्भव नहीं:—

कुम्भकरण का वाक्य सुनकर मंत्रियों में से एक ने कहा—

महा प्रतापी तुम दशकंधर, तुम समान नहीं कोई धुरन्धर।
शंका करो नेक नहिं मन में, संहारो वैरी को रण में॥
राम लक्ष्मण अरु हनुमाना, कुम्भ के आगे कीट समाना।
कहे दास शंका तज दीजे, केवल युद्ध माहिं चित दीजे॥

रावण ने प्रसन्न होकर कुम्भकरण को गले से लगा लिया और कहने लगाः—निस्सन्देह आप ऐसे ही वीर हैं मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारे होते हुए मुझे किसी वीर का भय नहीं। रामचन्द्र को पराजय करना और बानर देश वासियों को विजय करना जिस के भाग्य में लिखा है वह तुम ही हो। लाखों वीर सहस्रों योधा केवल प्रतीक्षा कर रहे हैं, जाओ शीघ्र जाकर उनका पराजय से मिलाप करादो।

उधर जब ही गुप्तचरों ने रामचन्द्र जी को विदित किया कि कुम्भकरण आज बड़े वेग से बड़े २ योधाओं को संग ले युद्ध की तैय्यारी कर रहा है तब उन्हों ने तत्काल विभीषण तथा अन्य अधिकारियों से सम्मति की और स्वयं *रणवेष्टन

*रणवेष्टन और अन्य युद्ध सामग्री राजा वरुण ने राजा रामचन्द्रजी को भेंट की थी (देखो महाभारत वन पर्व फैजी कृत अनुवाद यह जो प्रायः कथन है, और रामलीलाओं में भी देखा जाता है कि युद्ध के समय रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी को हनुमान कन्धे पर उडाते हैं यह नितांत भूल है, बाल्मीकी रामायण के पाठ से स्पष्ट पाया जाता है कि वह रथों पर सवार होते थे प्राचीन काल में गज अश्व आदि के अतिरिक्त एक ऐसा यान था जो युद्ध के समय बहुत काम आता था और युद्धों में प्रायः इन ही पर आरूढ़ होकर युद्ध करते थे, (देखो बाल्मीकी रामायण पृ० १२६ सर्ग १०८)।

और शस्त्र धारण कर हनुमान, सुग्रीव, सुखेन, नल नील और जामवन्त को साथ ले लाल ध्वजा झुलाते हुए रण भूमि में आ विराजे।

आहा इस समय रामचन्द्र जी का हृदय देखने के योग्य है आगे २ असंख्य पैदल सेना है और उसके पीछे सवार और रथ हैं, प्रत्येक सेनापति की भिन्न २ पताका वायु में झुम रही है और युद्ध वाद्यों से प्राचीन काल के वीरों के उत्साह वर्द्धक राग निकल रहे हैं और वह वीरता के मद से उन्मादितों के समान झूमते हुए जा रहे हैं, जिनको देख कर अचेय कहना पड़ता है कि आज महा संग्राम होगा, जब ही रण भूमि के निकट पहुंचे हमारा बीर घोड़ा दौड़ाता हुआ आगे बढ़ा और उच्च स्वर से कुछ कहा जिसको सुनते ही बीरों के धनुष खिच गये और अपने २ स्थान पर खड़े हो युद्ध काल की प्रतीक्षा करने लगे, इतने में कुम्भकरण युद्ध वेष्टन पहिरे मस्त हाथी पर चढ़ सहस्रशः बीरों के साथ रण भूमि में आ पहुंचा और हाथी से उतर कर वायु वेग गामी घोड़ों के रथ पर जिसको आज कल के "बैलरों" की उपमा दी जावे तो अत्युक्ति नहीं। आरूढ़ हुआ और रथ को आगे बढ़ा ही रहा था कि दोनों ओर शंख ध्वनि हुई और युद्ध वाद्य की गर्ज से रणभूमि गूंज उठी घोड़ें भी चौकन्ने हो गये और घोर संग्राम आरम्भ हो गया। कुम्भकरण के सामने से महाराज रामचन्द्र जी की ओर से वीर को नव शत्रु से सामने की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई वह वही

हमारा महाबीर सेनापति है। जो देखिये महाराज रामचन्द्र जी के चरणों में प्रणाम कर सुखेन, नल और नील से कह रहा है कि "यावत्सामर्थ्य आप लोग महाराजा रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी की रक्षा में तत्पर रहें इन्हीं की रक्षा और खबरदारी को अपना मुख्य उद्देश्य समझें ऐसा न हो कि शत्रु छल से इनको किसी तरह का क्लेश दें हमारी समस्त आशायें इन्हीं पर निर्भर हैं" इतना कह कर छाती ताने धनुष खैंचे घोड़े को चक्कर देता हुआ कुम्भकरण के समीप जाकर उच्च स्वर से बोला।

"सावधान संभल जा इन दीन सिपाहियों से क्यों अप्रतिष्ठत हो रहा है" इतना कह कर एक बाण अपने धनुष से छोड़ा जिसको उसने अपने बाण से काट दिया और अतीव क्रोध में आकर हनुमान पर बाणों की वर्षा करने लगा, जिनका उत्तर हमारा महाबीर देखिये तत्काल दे रहा है, इस प्रकार देर तक दोनों का संग्राम होता रहा हमारे बीर हनुमान जी की बीरता से कुम्भकरण क्रोध से जल गया, और अजगर के समान मुख से क्रोध के चिनगारे उड़ाता हुआ वार करने लगा। आहा! इतने बाण बरसे कि दोनों बीरों के शरीर छलनी से हो गये देह से रुधिर प्रवाह बहने लगा, यद्यपि हमारा बीर इस समय सिख नख घायल हो चुका है परन्तु इस वीरता से वार पर वार कर रहा है और बड़े २ ऐसे वाक्य ऊंची स्वर से कहता है कि सुनने वालों के मन कांप जाते है आहा घोड़े को

तो देखिये कैसी फुरती से चक्कर लगा रहा है, जिससे कि शत्रुका लक्ष अपने मालिक को बनने ही नहीं देता, यह अचम्भा देख कर महापारस और अति वीर प्रभृति योधा सब इसी ओर झुक पड़े, प्रकट रूप में इन सब ने हमारे वीर को घेर लिया है परन्तु उसकी ओर देखिये कैसी सावधानी और शीघ्रता से अपनी रक्षा करता हुआ शत्रु पर वार कर रहा है और अहरतेजी भी इस समय श्लाघानीय है ज्यूं ही हनुमान महा-पारस पर आक्रमण कर अपना मार्ग निकालने लगा कुम्भकरण ने बड़े क्रोध के साथ धनुष बान छोड़ा जो इसके युद्ध वेष्टन को चीरता हुआ पहलू को जखमी कर निकल गया परन्तु घोड़ ने इस समय वह चालाकी दिखलाई कि शत्रु दल में से जो आगे आया और सब को रौंधता हुआ अपनी सेना में आ निकला इसको जाते देखकर रावण की सेना ने जय कार प्रसन्नता द्योतक बुलाये, मानों यह समझे कि वह हार कर भाग गया है, इधर सुखेन ने तत्काल प्रबल करण बूटी घाव पर लगा कुछ काल विश्राम करने को कहा और सुग्रीव कुम्भरण से संग्राम करने लगा, यद्यपि सुखेन और उसकी आधीन सेना सीमा से अधिक साहस दिखला रही है परन्तु शत्रु को निहारे किस बिधि बाण चला रहा है और जब यह लोग उस पर आक्रमण करते हैं, तो रथ को ऐसा चक्कर दे जाता है कि धूल के सिवा कुछ दीख ही नहीं पड़ता और थोड़ी देर में फिर आ उपस्थित होता है, इस का एक २ बाण पांच २ दस २

वीरों को यमपुरी का सन्देशा पहुंचाता है, वह देखिये कैसी दीनता से देखते हुए वीर भूमि पर तड़प रहे हैं जैसे सुग्रीव अंगद, जामवन्त प्रभृति ने क्रोध में आकर आक्रमण किया, सहस्रों राक्षसों का बध हो गया कई घायल हो पावों के नीचे मर गये कुम्भकरण और सुग्रीव का परस्पर सामना हो गया, देर तक आपस में वार करते रहे, अन्त में सुग्रीव के सिर पर एक गदा ऐसी वेग से लगी कि दीन बे सुध हो भूमि पर गिर पड़ा, और कुम्भकरण ने शीघ्रता से उसे रण भूमि से उठा लिया, पहिले सुग्रीव को शत्रु के हाथ में आये देखकर जामवन्त अंगद प्रभृति का साहस टूट गया उधर रावण की सेना ने प्रसन्नता से " रावण की जय ध्वनि मचा दी। परन्तु जब ही यह शब्द हमारे वीर के कानों में पड़ा और सुग्रीव को शत्रु के काबू में सुना तत्काल अश्वारूढ़ हो शत्रु पर आक्रमण करता हुआ ललकार कर बोला " छल से वार करना और एक बेसुध वीर को उठा ले जाना वीरता नहीं है वीर संग्राम में ऐसा नहीं किया करते यदि मैं ऐसा करना चाहता तो तुम को कभी का परलोक गमन करा देता परन्तु मैं ऐसा करना अधर्म और युद्ध नियमों के विपरीत समझता हूं।

कुम्भकरण—क्यों इतने मिथ्या भाषण और आत्मश्लाघा से अपना मन प्रसन्न करता है, तुम सब में मुझे मारने या पकड़ने वाला कोई नहीं ज्ञान पड़ता है कि तू अपने जीवन को नहीं चाहता या तू उस वीरता का घमण्ड करता है जो

मेरी अनपस्थित में कर गया था, परन्तु स्मरण रख कि तू मेरा सामना करने को शक्ति नहीं रखता ।

हनुमान—" मैं तुम लोगों को भलि भाँति जानता हूं और तुम्हारे साहस को भी जान चुका हूं, तुम्हारे वन्श की जो सामर्थ्य है वह महाराज वरुण के युद्ध में भली भांति देख चुका हूं तनिक विचार और देख कि मैं कौन हूं ।

यह कहा और दोनों एक दूसरे पर टूट पड़े और परस्पर ऐसा पराक्रम दिखलाया कि जिसे देख कर बड़े २ वीरताभिमानियों के छक्के छूट गये, और किसी को पास आने की हिम्मत न पड़ी, और वीर सेनापति को देखिये कैसी वीरता से छाती ताने कुम्भकरण को उत्तर प्रत्युत्तर दे रहा है, जो तीर शत्रु इस पर मारता है उसे अपने तीर से काट देता है, या ढाल पर रोक लेता है अन्त में उस वीर ने केसरीसिंह के समान धावा किया, और उसे पराजित होता देख महापारस अति वीर और निकुम्भ प्रभृति इसी ओर झुक पड़े उधर से महाराज रामचन्द्र जी, लछमण जी अंगद नल, नील भी सहायतार्थ आ पहुंचे रथों और घोड़ों की हल चल से भूमि कम्पायमान होने लगी खड्ग पर खड्ग नेजे पर नेजे तीर पर तीर और गदा पर गदा पड़ने लगी, यह समस्त अस्त्र चुम्बक पत्थर से बन गये, जिनमें से अग्नि के चिनगारे उड़ २ कर आकाश को जा रहे हैं, जो सिपाही साहस और वीरता में अद्वितीय हैं, वह तो प्राणों की परवाह न करते हुए आगे बढ़े जाते हैं और

एक ही चोट से शत्रु विनाश करते हैं परन्तु दुर्बल मन से भीरू भागने का मार्ग ढूंड रहे हैं और इस बात की खोज में हैं कि कहीं चूहे का बिल मिले तो उसमें घुस जायं सार यह है कि हमारे महावीर के आधीन सेना ने दिल खोल कर हाथ दिखाये और वीर लक्ष्मण जी तथा अंगद ने शत्रु को बाणों से नाक में दम कर दिया और एक दूसरे पर सवार पैदल गिरने लगे मुरदों के ढेर लग गये।

पाठक गण! अपनी सेना को पराजित होते देख कर कुम्भकरण ने क्रोध में आ जोर से शंख बजाया और समस्त सेना को एकाएक धावा करने की आज्ञा दी।

कुम्भकरण जोश में आकर लक्ष्मण जी पर टूट पड़ा परन्तु महाराज रामचन्द्र जी ने उस राक्षस के दमन करने के लिये धनुष से तीक्षण बाण छोड़ा जो उसका संग्राम वेष्टन और छाती को वेध कर पार निकल गया, और कुम्भकरण बेसुध हो भूमि पर गिर पड़ा।

कुम्भकरण परलोक, यात्री भयो तत्काल।
नाश रूप संसार में, बचा कौन सब काल॥

कुम्भकरण को मृत्यु शय्या पर लेटा देख कर शत्रु दल में हाहाकार मच गया युद्ध बन्द हो गया और शेष बची हुई शत्रु सेना अतीव निराश हो रावण के पास चली गई।

४९वां अध्याय

छठे दिन का युद्ध।

वीर लक्ष्मण और मेघनाद।

आज रावण की सेना असाधाण रीति से वीरता प्रकाश कर रही है, बड़े २ वीर युद्ध के लिये उद्यत हैं इनका संकेत के द्वारा वार्तालाप करना और परस्पर साहस बढ़ाने के लिये मुसकराना हमारी चकितता को और भी बढ़ा रहा है, कहां इनका बार २ की पराजयता से चिंतातुर होना राज्य विनाश की सम्भावना और कहां इस समय इस प्रकार हास्य करना इसमें अवश्य कुछ भेद प्रतीत होता है।

पाठक गण! इनके बढ़े हुए साहस को देख हम से भी रहा नहीं गया, और हाल जानने के लिये अपने विचार की बाग को उधर ले जाना पड़ा, सुनिये कम्पन और परजंग से क्या कह रहा है।

कम्पन–"परजंग! जहां तक सम्भव हो शत्रुओं को सोच विचार करने का अवसर ही न दिया जावे, ऐसा न हो कि वह हमारे भेद को जान कर कृतकार्यता में विघ्न कारक हों।

कंपन (प्रसन्न होकर) हां हां ! निःसन्देह ऐसा ही होना चाहिये क्योंकि महाराज के सामने हमारे कुंवर (मेघनाद) प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि उन का फैसला कर दूंगा। इस लिये हमें भी यही उचित है कि अपनी ओर से किंचित त्रुटि न करें वरञ्च यथाशक्य प्रतिज्ञा पालन में सहायता दें।

परजंग—(कुछ धीरे से कहकर) ऐं क्या ? इस में कुछ हानि है।

कंपन—"हां हानि का क्या कथन ! परम हानि ही नहीं वरञ्च अपने अकृतकार्य होने का पूर्ण विश्वास है, और व्यर्थ लज्जातुर होने का भय है। क्योंकि राम लक्ष्मण धनुष विद्या में ऐसे प्रवीण हैं कि आज समस्त पृथ्वी पर इन के तुल्य कोई नहीं और हनुमान ऐसा चतुर सेनापति है कि उस के विपरीत कामना पूर्ण करना अतीव कठिन वरञ्च असंभव है।"

परजंग—अच्छा जब वह सामने ही न होंगे तो कृतकार्य्य कैसे हो सकते हैं ?

कंपन—(कान में कुछ कह कर) बस एक एक सब के लिये बहुत है। आनन्द ! आप इन बातों का किंचित विचार न करें, जहां तक हो सके ऐसा युद्ध करने का यत्न करो कि शत्रु को शरीर तक की सुध न रहे फिर देखना हम कैसे कार्य साफल्य करते हैं।

परजंग-(प्रसन्नता से) बहुत अच्छा मेरी ओर से निश्चित रहें, यह कह कर अपनी आधीन सेना से जो इतने काल में

कुछ आगे बढ़ गई थी ? जा मिला, उधर से सेनापति द्विविद, मयन्द, गज, जामवन्त, नल, सुग्रीव, अंगद और हमारा वीर हनुमान सेनापति असंख्य सेना सहित आ पहुंचा और दोनों सेना आमने सामने खड़ी होगई। आहा ! इस समय के दृश्य को देख स्वयं कहना पड़ता है कि आज अवश्य अनर्थ होगा। सहस्रों जीवों का वध हो जायगा जहां तक देखने में आता है। जंगी सेना ही सेना दिखाई देती है और दोनों ओर के वीर सिपाही कमान चढ़ाये धनुष टंकारे आज्ञा की प्रतीक्षा में हैं। ज्यों ही युद्ध वाद्य बजा। शंखों ने गर्ज कर युद्ध की आज्ञा दी, धनुष के खैंचने का शब्द आने लगा, तीर भी अभी चिल्लों में पड़े अपने रुधिराक्रान्त जिव्हा को छिपाये हुए थे वीर योधाओं के शरीरों में धस गये, कई तो मांस को काटते और अस्थियों को विदीर्ण करते हुए कटि से पार हो गये। क्षण भर में रंग भूमि ने भयानक रूप धारण कर लिया वीरों ने शूरवीरता के प्रमाण देने आरम्भ किये, देर तक धनुष युद्ध परस्पर होता रहा, एकाएक राक्षसी सेना ने आक्रमण किया और दोनों ओर ऐसा घमसान मचा कि अपने पराये की सुध भी न रही नेजे बरछियों और खड्गों के प्रहारों ने कई शिर धड़ से भिन्न कर दिये और वीरों का अमूल्य रुधिर पानी के समान प्रवाहित हो गया।

उभय परस्पर सेन में, युद्ध भई अति घोर।
क्षण भीतर संग्राम में, रक्त बहा चहुं ओर॥

अस्त्र शस्त्र के शब्द ने, सब सुध दई भुलाय।
सुखरामदास लाखों सुभट, रण में दिये लिटाय॥
महा भयानक युद्ध यह, रहा बहुत ही काल।
धनुष गदा अरु खड्ग ने, किये हनन विकराल॥

तनक हमारे वीर की खड्ग को देखिये, कैसी शीघ्रतासे चल रही है, कि शत्रु को वार करने का अवसर ही नहीं देता और न वह अभागे ही अपनी रक्षा ही कर सकते हैं। उधर अङ्गद प्रभृति वीरता प्रकट कर रहे हैं, सहस्रों के प्राण निकल गये, असंख्य राक्षस और सहस्रों वीर अध्यक्ष्य भूमि पर बेसुध हो गिर पड़े, राक्षसी सेना भागने को उद्यत थी और मार खाकर पराजित होना चाहती थी कि एकाएकी रक्ताक्रन्त बाणों की वर्षा होनी आरम्भ हो गई। हा हा! जिस को तनिक बाण छू भी गया, भूमि पर गिर परलोक यात्रा कर गया, यह लो देखना नल जामवन्त प्रभृति अचेत भूमि पर पड़े हैं, इनको इस दशा में देख कर हमारा वार सुग्रीव के पास गया, परन्तु वह अभी इसे देख हीं रहा था कि एक बाण रणभूमि से होता हुआ उसके पांव पर लगा और किञ्चित काल में यह भी बेसुध हो अग्रगामी मित्रों का साथी बना; इन सब की यह दशा देख शूरवीर लक्ष्मण जी केसरी सिंह के समान गर्जते हुए वहां आ पहुंचे, ऐसी महान् शक्ति दिखलाई कि राक्षसी सेना सामना करने की सामर्थ न लाकर भागने को उद्यत हो गई और वीर लक्ष्मण जी विजय पताका उड़ाते हुए बाहर आए कि एक

बाण* उनके युद्ध वेष्टन को वेधन कर वक्षस्थल में आ धसा और पार निकल गया, महाराज रामचन्द्र जी (जिनका रथ-वाही देखिये रथ को कैसे उड़ाये आ रहा है) जूंही ऊपर

* जिसका फल बरछी के फल के समान है ।

प्राचीन काल भारत में युद्धास्त्र नाना भांति के होते थे कई कर्त्ताओं के नाम से प्रसिद्ध थे जैसे कि इन्द्रबाण, ब्रह्मास्त्र प्रभृति, ब्रह्मास्त्र एक ऐसा बाण था कि उस में विष खुराक किया जाता था और उसके लगने से जीवन की आशा छूट जाती थी सुना गया है कि आज कल की पूर्वी अफरीका में जंगली (बाने) लोग इसी प्रकार के बाणों से काम लेते हैं और कई शस्त्रों के मुख जिस वस्तु से मिलते थे, जैसे हल, मगुद, प्रयज्ञ आदि इसी प्रकार इंगलिस्तान में भो १म, एडवर्ड के समय में भी एक युद्धास्त्र था जिसका नाम युद्ध का भेड़िया था और ३य, एडवर्ड के राज्य में 'बिल्ली का घर' और आरा था जो डैमक के युद्धमें बरते जाते थे।

कई रामायण कर्त्ता लिखते हैं कि लक्ष्मणजी को शक्ति (विष-क्रांतबाण) के लगने के समय हनुमान वहां विद्यमान न था वह उस समय नारद जी से रामचन्द्रजी की श्लाघा के राग सुन रहा था यद्यपि उनका यह लेख हमारे वीर रत्न की प्रतिष्ठा और रामचन्द्रजी के चरणों में पूर्ण भक्ति प्रकट करता है, क्योंकि वह लिखते हैं कि हनुमान जी की उपस्थिति में मेघनाद कुछ भी नहीं कर सक्ता था परन्तु पाठक महाशय ! यह व्यवस्था एक प्रकार से उनकी महत्वता प्रकट नहीं करती वरञ्च उनके जीवन में कलंक रूप है, कि ऐसे महा संग्राम के समय एक वीर सेनापति का और

दृष्टि की और मेघनाद को देखा कि विमानारूढ़ हो वार कर रहा है, आपने तत्काल निज धनुष से अग्नि बाण चलाया, और इसी प्रकार तीन चार बाण चलाये परन्तु मेघनाद की फुर्ती को देखिये, कि वह अपना विमान किस वेग से लिये जाता है कि कठिनता से कभी २ दृष्टिगोचर होता है और इस लिये अब तक महाराजा रामचन्द्रजी के शत्रु विघातक बाणों से बचा है, अन्यथा चिरकाल का भूमि पर लेटा हुआ देखने में आता, मेघनाद का विमान जब तक रणभूमि के ऊपर चक्कर बांधे चढ़ता रहा उन्होंने भी उस का पीछा न छोड़ा, परन्तु सीमा से अधिक उसका पीछा किया तो लुप्त हो गया और रावण की शेष सेना प्रसन्नता के ढोल बजाती हुई रावण के निकट जा पहुंची इधर महाराज रामचन्द्र जी ने शत्रु का नाम भी न देखा तो लक्ष्मण जी के पास (जो उस समय बेसुध हो कर गिर पड़े थे) आए और लक्ष्मण जी को रुधिराक्रान्त तथा कनकशक्ति विहीन देखा और चकित से हो मन में कहने लगे:—

भावी अटल प्रबल है. धारे रूप बहु रूप ।
क्षण पल में वह और ही, कर देवे स्वरूप ॥

वह भी कौन सा जिस पर युद्ध का सब से अधिक भार हो रण भूमि से मुख मोड़ रङ्गभूमि में जा लगे और रणभूमि की कुछ भी सुध न रहे थोड़ी सी बात नहीं, इस से यह परिणाम मिलता है कि हनुमान युद्ध नियमों से अनभिज्ञ और रणछोड़ थे, परन्तु प्रसन्नता का विषय है कि वाल्मीकि रामायण में हम इस लेख को नहीं देखते। (देखो वाल्मीकि रामायण लंका कांड पृ० ९२, ९३)।

इतने में सुखेन गवाच प्रभृति भी आ पहुंचे और उनवीरों को जो बेसुध पड़े थे, ध्यान पूर्वक देखा, लक्ष्मण जी के अतिरिक्त सब घायल हुए योधाओं के घावों पर जिन के घाव नाम मात्र थे और विष के कारण बेसुध पड़े थे सुवर्ण कणी बूटी लगाई जिस के लगते ही सब वीरों ने सुध संभाल ली, हा! खेद! लक्ष्मण जी का घाव इतना गहरा था कि दो तीन प्रकार की बूटियें जो वहां विद्यमान थीं, क्रमशः लगाई गईं परन्तु उन्होंने अपना तनिक भी फल न दिखलाया और घाव जनित व्याधि बढ़ती गई, अर्थात् जैसे २ औषधि लगाई, घाव बढ़ता गया अन्त में उनको उठा कर कैंप में ले आये।

५०वां अध्याय

संजीवनी बूटी।

संसार का क्या भरोसा है इससे शिक्षा लेनी चाहिये।

पाठकगण! संसार शिक्षागार है इस में अहंकार करना किसी को उचित नहीं मनुष्य कुछ सोचता है भाग्य में कुछ होता है आहा यह वही लक्ष्मण जी हैं जो कुछ काल पूर्व केसरी सिंह के समान गर्जते हुए रणभूमि में शत्रु दलन कर रहे थे और अब अचेत हाथ पांव फैलाये रुधिराक्रान्त भूमि पर लेटे हैं। इन के एक ओर तो सुखेन, सुग्रीव, हनुमान, प्रभृति और द्वितीय ओर महाराज रामचन्द्र जी सिर झुकाये बैठे हैं, इन वीरों के क्लेश चिन्ता का अनुमान कौन कर सकता है, जिव्हा के समार्थ्य नहीं कि वर्णन करे और लेखनी में शक्ति नहीं कि लिख सके।

लक्ष्मण जी की भोली भाली मूर्ति उनका मधुर भाषण आज्ञानुयायी स्वाभाव, देश त्याग, बनवास आगमन के लिये उद्यत हो अपने सुखों को ज्येष्ट भ्राता के लिये न्योछावर करना आदि सब बातें रामचन्द्रजी के हृदय में रूप धारण कर आई

और बेबस हो हृदय कांप उठा, मन घबरा गया और नेत्रों से जल धारा बह निकली, यह दशा देख सुखेन ने जो सन्मुख ही बैठा हुआ था कहा:—

इस में सन्देह नहीं कि भ्राता भुजाबल आपत्ति काल के सहायक और कठिनता के समय आश्रय रूप होते हैं, लक्ष्मण जी की व्याधि पर जितना शोक करें योग्य है, परन्तु भावी प्रबल है इस के आगे कुछ पेश नहीं जाती हां पुरुषार्थ करना मनुष्य का धर्म है, देवासुर संग्राम में दो चार नहीं दस नहीं वरञ्च सैकड़ों बीर इन अत्याचारियों के हाथों इसी प्रकार छल में आकर घायल हुए थे परन्तु अमृत संजीवनी के सेवन से तत्काल अरोग्य हो गये * हा खेद! वह औषधि इस समय

*देखो फ्लोड आफ दी ईस्ट पृ० २८७ जो अनुमान ७०० मील की दूरी पर है।

पाठक गण! हमारा यह लेख कि हनुमान जी अमृत संजीवनी द्रूनागिरि पर्वत से नहीं लाये और भरत जी से नहीं मिले हैं क्या जाने आप लोगों को अनुचित प्रतीत हो कि हमने तुलसी रामायण का खण्डन किया है परन्तु आप यह बात हृदय में धार लें कि उन्होंने जो कुछ लिखा है भक्तिभाव या महाराज रामचन्द्र जी की सच्ची प्रीति के कारण लिखा है एतिहासिक रीति पर नहीं परन्तु हमने ऐतिहासिक वृतान्त लिखने में युक्ति और प्रणाम से काम लेना है इस लिये जब हम सब से पूर्व बालमीकि रामायण लंका कांड का ९६ वें पृष्ट देखते हैं तो इस बात का कहीं भीं पता नहीं मिलता और न अंग्रेजी इतिहास कर्त्ता मिस्टर

विद्यमान नहीं और हम उस वन से जो गन्धमादन पर्वत पर विद्यमान है, बहुत दूर है, अन्यथा लक्ष्मण जी का घाव तो कुछ वस्तु नहीं यदि समस्त शरीर भी गल गया हो तो भी आरोग्य होना कठिन नहीं था।

रिचर्डसन साहिब जिन्होंने अतीव यत्न से बड़े २ सुयोग्य विद्वानों की सहायता से बाल्मीकि रामायण अनुवाद अंग्रेजी में किया इसकी साक्षी देते हैं। अब हम देखते हैं कि द्रूनागिरि जो हिमालय पर है लंका से कितनी दूर पर है, आधुनिक भूचित्रों से पाया जाता है कि यह अन्तर दो हजार मील से भी अधिक है जो आवागमन की रीति से साढ़े चार हजार मील के लगभग होता है इतनी बड़ी भारी यात्रा के लिये विमानों के सिवा और कहीं कोई साधन वर्नित नहीं है, जिनकी गति हमारे ऋषियों ने अधिकाधिक १३० मील प्रति घंटा के हिसाब से लिखी है, अब देखना यह है कि इस कार्य की सिद्धि के लिये हनुमान जी को कितना अवसर मिला। क्यों कि लंका में दिन मान रात्रिमान के तुल्य होता है इस लिये आधा घन्टा अन्तिम दिन का और १२ घन्टे रात्रि के लेते हैं तो केवल १२ घन्टे ३० मिनट होते हैं। इनमेंसे आधा घन्टा औषधि की तलाश का और दो घन्टा शेष रात्रि के जब कि हनुमान जी वापस आ पहुंचे निकालने से केवल १०घन्टा बचते हैं जिनको ४५०० सौ मील पर बांटते हैं तो प्रति घन्टा ४५० मील आते हैं इस लिये पाठक महाशय स्वयं विचार लें कि वह ऐसे कौन से साधन थे जिनसे हनुमान जी ने यह यात्रा की, जहां तक विचार काम करता है विमानों के अतिरिक्त कोई साधन

रामचन्द्र—"फिर अब क्या कर्तव्य" है ?

सुखेन— अमृत सञ्जीवनी की प्राप्ति के सिवा कोई अन्य

नहीं मिलता, जिनकी गति का वर्णन ऊपर लिख आए है यदि कोई और साधन मान भी लिया जावे तो बुद्धि नहीं मानती कि कि ऐसी तीव्र गति यान में मनुष्य जोवित रह सके, दूसरे महाराज रामचन्द्र जो की आपत्ति का वर्णन और रुधिर प्रवाहिक संग्राम सुनकर भरत जी का मौन साधन किये रहना मानने योग्य नहीं, क्योंकि रामचन्द्र जो के वियोग में राज्य सिंहासन को त्याग साधु में निर्वाह करने के लिये १४ वर्ष की प्रतिज्ञा करने वाला भ्राता ऐसे कठिन समय पर सहायक न होना कब स्वीकार कर सकता था पाठक गण ! क्या आप मान सकते हैं कि भरत जी ने ऐसा किया हो क्या उनका जीवन वृतान्त और महाराज रामचन्द्र जी का वर्ताव इन सब की साक्षी देता है कि भरत जी अकृतज्ञ और आज्ञाकारी थे ? नहीं कदापि नहीं ? वह महाराज रामचन्द्र जी के पूर्ण हितैषी सहायक और आज्ञा कारी भ्राता थे तनिक रामायण के अयोध्या काण्ड को पढ़िये और देखिये कि भरत जी किस स्वभाव और किस विचार के पुरुष थे यह केवल हमारी अल्पज्ञता का फल है कि हम ऐसे महापुरुष के जीवन को कलंकित करते हैं कि यह कदापि सम्भव न था कि वह इस दशा को सुनते और वहां न आते उपरोक्त समाचार को विचारने से अवश्य कहना पड़ता है कि हनुमान द्रूनागिरि पर्वत पर नहीं वरञ्च गन्धमादन या कञ्चन गिरि जो हेमवान पर्वत के किसी विभाग का नाम था। देखो बाल्मीकी रामायण लंका कांड पृ० २९२ अङ्गरेजी रामायण मिस्टर आरग्राफिथस साहिब कृत पृ० ९२ प्रथम पुस्तक।

औषधि प्रतीत नहीं होती और वह सूर्य्यास्त से पूर्व आनी चाहिये अन्यथा फिर खेद और चिंता के सिवा कुछ नव न पड़ेगा।

रामचन्द्र—(हनुमान जी की ओर देखकर) मेरे वीर सेना पति आप के सिवा कोई नहीं दीखता जो इस कठिन कार्य्य को पूर्ण कर सके, लक्ष्मण जी का जीवन तुम्हारे हाथ है।

हनुमान—(हाथ बांध कर) "महाराज आप धैर्य्य धारें, जहां तक सम्भव होगा यत्न करूंगा, (पश्चिम की ओर देख र) सूर्य्य अस्त होना चाहता है आज्ञा दीजिये"।

रामचन्द्र—"शाबाश बीर ! तुम से ऐसी ही आशा थी, (सुखेन की ओर निहार कर) बीर सेनापति को सब व्यवस्था समझा दीजिये"।

सुखेन—"अमृत सञ्जीवनी का * पौदा पीतवर्ण होता है फल सबज़ फूल हलकी सुनहरी रङ्ग के और उस में से जङ्गली चन्दन की गन्ध आती है भूमि पर ऐसा बिस्तृत होता है कि भूमि दृष्टि ही नहीं आती। इन बातों को भली भांति स्मरण रखना परन्तु इतना सोच लेना कि यह कार्य्य सूर्य्य उदय से पहिले होना चाहिये।

हनुमान—सत्य वचन ऐसा ही होगा।

हनुमान जी इतना कह विमानारूढ़ हो देखते ही देखते लुप्त होगए, विमान भी इस प्रकार का शीघ्रगामी कि लगभग डेढ़ प्रहर रात्रि व्यतीत हुई होगी कि जब यह गन्धमादन गिरि पर जो किष्किन्धा के उत्तर भाग और भारत के दक्षिण की ओर किष्किंधा नगर से कुछ दूर था जा पहुंचा, इस समय रात्रि ऐसी अन्धा-

*देखो-Elied of East page 237 एलड आफ दी ईस्ट सफा २३७।

कार मय है कि हाथ को हाथ नहीं सूझता, चारों ओर से भयानक शब्द सुनाई दे रहे हैं, घातक पशु और जङ्गली जीव बोल रहे हैं, पर्वतों के उच्च शिखर और कठिन घाटियें भयानक रूप धारण कर डरा रही हैं, सार यह है कि यह वह समय है कि बीर से बीर के होश उड़े जाते हैं परन्तु महाराज रामचन्द्र जी का बीरजनरैल इन बातों का तनिक भी विचार न करता हुआ निर्भय अपना काम कर रहा है, वह देखिये मशाल हाथ में लिये हर एक पौदे को देखता और ढूंढ़ता हुआ पर्वत शिखर पर प्रसन्नता पूर्वक कार्य सिद्धि की आशा से जाता है, परन्तु थोड़ी देर के अनन्तर अतीव खिन्न मन हो वापस आ कुछ सोचने लगता है और फिर कुछ विचार कर दूसरी ओर निकल जाता है जब कुछ काल ऐसे ही व्यतीत हो गया और रामचन्द्रजी के बीर जनरैल की कार्य सिद्धि की कोई आशा न मिली तो लक्ष्मणजी की दुखदायक हालत का दृश्य आंखों के सामने रूपधारकर आ खड़ा हुआ अतीव खिन्न चित्तहो विचार में पड़ गया परन्तु वीरता और सहिष्णुता ने उसके खिन्न चित्त को साहस दिया और कहा कोई कठिनता नहीं जो सुगम न हो, वह कार्यशक्ति ही नहीं जिसमें कार्य सफलता न हो। इतना अवश्य है कि मनुष्य धैर्य धार कटि बध रहे, सो यदि तुम वास्तव में महाराजा रामचन्द्र जी के सच्चे हितैषी हो, तो इस समय को सोच विचार में ही न गंवाओ किन्तु यत्न करो इस विचार के उत्पन्न होते ही हमारा महाबीर फिर ढूंढ़ने लग गया और उस पहाड़ी पर जो गन्ध मादन के ऊंचे शिखर के नीचे है जा पहुंचा, आहा! जब यह वीर भूमि पर दृष्टि पात करता हुआ प्रत्येक पौदे को देखता हुआ जा रहा था तब एक असाधारण पौदा देखा

कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया वहीं प्रकाश (मशाल) लेकर बैठ गया, तब सावधानता से देखा तो उन समस्त चिह्नों को जो सुखेन ने बतलाये थे पाया, तो बड़ी सावधानी से हाथ बढ़ा कर तोड़ना चाहा परन्तु झिझक कर रह गया और मन में कहने लगा कि "विदित नहीं कि इसको शाखा आवश्यक है। जड़ या पत्ते और मात्रा का हाल भी विदित नहीं' पाठकगण ! हनुमान कुछ काल तक तो इसी विचार में रहा अन्त में न जाने क्या सोच कर चार पांच पौदे जड़ से उखाड़ लिये और उसी विमान पर सवार होकर अभी एक पहर रात्रि शेष होगी कि यह अपने केम्प में आ पहुंचा, उसको देखते ही सब के शरीरों में प्राण पड़ गये. बीर हनुमान रामचन्द्र जी को पाद पाकर प्रणाम करना चाहता ही था, उन्होंने उठा कर गले से लगा लिया। और सुखेन ने शीघ्रता से बूटी नियमानुसार घाव पर बांधी और कुछ बिंदु महाराज लक्ष्मण जी के मुख में डाल दी। इस बूटी के अद्वितीय फल से तत्काल लक्ष्मण जी ने आंखें खोल दीं रामचन्द्र जी प्रसन्नता पूर्वक उसका मस्तक चुम्मन किया, और अभी हनुमानजी की श्लाघा और बड़ाई कर ही रहे थे कि लक्ष्मण जी उठ कर बैठ गये, उन को बैठा देखकर सब केम्प में प्रसन्नता के हर्ष प्रद वाक्य उच्चरित हुए हरएक ने हमारे महाबीर को धन्यवाद दिया, महाराज रामचन्द्र जी ने अपने सेनापतियों को मेघनाद के छल छिद्र से सूचित कर आगे के लिये सावधान रहने की प्रेरणा की और सब को कुछ काल विश्राम के लिये आज्ञा दी।

५१वां अध्याय

सप्तम दिन का संग्राम।

पिछले युद्ध में मेघनाद की माया जाल और छल ने आज महाराज रामचन्द्र जी की समस्त सेना को सचेत बना दिया है, वह देखिये वीर जामवन्त और पालोपम किस सावधानी से दूरवीक्षण लगाये टकटकी बांधे सामने के पर्वत पर बैठे हैं, जिससे शत्रु के विपरीत आक्रमण इन से छुपे न रहें और इधर युद्ध में वीरों को प्रातः से संग्राम करते २ मध्यान्ह काल हुआ चाहता है सूर्य की तीव्र किरण तीक्ष्ण धारा खड्गों पर पड़ कर इतस्ततः फैल रही है परन्तु इन के बर्धित साहस और जचे हुए हाथ थकने का नाम तक नहीं जानते और अतीव शीघ्रता से अपना काम किये जाते हैं धावा कर रहे है। मनुष्यों का अमूल्य रुधिर पानी के समान पृथ्वी पर बह रहा है जिस में बीरों के कटे हुए शिर और तड़फते हुए धड़ इधर उधर तैर रहे हैं, हा ! अश्वों के कठिन पाद प्रहार से सिर तो इधर उधर कंदुक के समान उछलते फिरते हैं परन्तु पांव उदर पर पड़ने से "फुल" का शब्द निकलता हुआ और अन्तड़ियें बाहर निकल आती हैं।

सहस्रों वीर सुवीर वर, क्षण मात्र के बीच।
सिर तन से भिन्न हो, गये परलोक के बीच॥
वीर वीरता मद से, मद माते भए अनूप।
मृत्यु अटल बेग को, जाने न तनिक सरूप॥

परन्तु इस भयानक दृश्य को देख वीरों के हृदय नहीं हिलते और न वह युद्ध समाप्त करना चाहते हैं वरंच वह देखिये कैसे छाती ताने, नेजा बरछी धनुष और खड्ग चला रहे हैं, यह लो राक्षसी सेना ने धावा कर दिया, हा हा! इस में सेनापति जो अभी अपनी आधीन सेना के साहस को बढ़ाता हुआ खड्ग तान कर निकुम्भ पर गर्जा था किस विध सिर के बल असवारी से गिर रहा है, यद्यपि मेघनाद की बरछी ने इस के वक्षस्थल को चीर कर अन्तड़ियों को बाहर निकाल दिया है, परन्तु इस के धैर्य को देखें कि किस फुर्ती से अपना आप सम्भाल कर खड़ा हो गया है, एक हाथ घाव पर है और दूसरे से खड्ग उठाना चाहता है परन्तु इतने में मेघनाद ने उस के मस्तक पर एक और वार बरछी का किया और निकुम्भ ने खड्ग से उस का सिर तन से भिन्न कर दिया इस की यह दशा और बानरी सेना को पराजित होते देख हमारे महावीर ने ध्वजा हिलाई और शंख इस वेग से ध्वनित किया कि वीरों के मन कांप उठे, हनुमान जी या तो अभी कुछ दूरी पर शत्रुओं से लड़ रहे थे। या अभी पल भर में मेघनाद की सेना पर आ कूदे और ऐसे बाण चलाये कि

शत्रु निज पराक्रम को प्रकट न कर सका, उधर बानरी सेना का साहस द्विगुण हो गया और ऐसा वेग दिखलाया कि आक्र-मित शत्रु दल एक पांव भी आगे न बढ़ सका वरञ्च एकाएक पांव उखड़ और संग्राम ने रंग पलटा बानरी सेना ने राक्षसों पर आक्रमण किया, वीर बानर सेना के नेजे झुक गये, छन-छनाती हुई खड़गें खिंच गईं।

सेना खड़ग निकाल कर, पड़ी जिस दल के बीच।
सर्व दल को दलन कर, फिर खड़ग ली खींच॥
क्षण भर के बीच में, शत्रु दल कियो विनाश।
छिन्न भिन्न कर दिल रिपु, शत्रुन दियो प्रकाश॥

असंख्य राक्षसी सेना के वीर रणभूमि में लेट कर दीन हीन दृष्टि से निज संगियों को देखने लगे, इस दशा को देख मेघनाद की क्रोधाग्नि भड़क उठी, मकराक्ष व सूईराक्ष आदि सेनापति इस की सहायता के लिये आ पहुंचे और घोर संग्राम होने लगा, एक ओर तो रुधिर प्रवाह में सूर्य की किरणें अपना वेग दिखला रही है, द्वितीय खड़गें अपना कार्य कर रही हैं। पाठकवृन्द! जिस वीरता व साहस से हमारे महा-वीर जर्नैल ने मेघनाद और उस के दल पर आक्रमण किया, उस की साक्षी के लिये रामायण के लेख और सूर्य के सिवा कोई नहीं, ऐसी वीरता के समय जब कि चारों ओर से खड़गें चल रही हैं, नेजे से नेजा और बरछी से बरछी भिड़ रही है। वीर लक्ष्मण जी का रथवाही अपने रथ को इधर

ही लाया और जब लग उन के तीर ने मेघनाद के रथ के पहियों को चूर २ कर के फैंक नहीं दिया तब तक किसी को उन के आगमन की सूचना ही न हुई! मेघनाद के घोड़ों को घायल और रथ को अयोग्य देख जमूमाली ने तत्काल द्वितीय रथ लाकर खड़ा कर दिया जिस पर सवार हो कर देखिये मेघनाद लक्ष्मण जी के साथ यु र्थ सन्मुख खड़ा हो इस प्रकार कह रहा है:—

'क्या कल का ब्रह्मास्त्र भूल गये जो आज रण-भूमि में आ खड़े हुए हो, जान पड़ता है कि गुप्त रीति से रामचन्द्र तुम्हारे प्राण लेना चाहता है, तुम्हारे लिये उचित यही है कि रण से पीठ दिखला जाओ और प्राण बचा लो अन्यथा आज तुम्हारा बचना कठिन है।''

लक्ष्मणजी—क्यों बकवास करता है, वीर सन्मुख होकर युद्ध करते हैं न कि छिप कर, कायर! यह कौन सी वीरता थी जो तूने कल कर दिखलाई बस समझ ले कि आज या तू है या यह (धनुष को टंकार कर) धनुष!

हृदय विदारक बाण से, तुझे लिटाऊं आज।
सब सेना के देखते, साधूं अपना काज॥

मेघनाद हंस कर कुछ कहना ही चाहता था कि लक्ष्मण जी ने कहा यह हास्य मण्डप नहीं रण भूमि है, अधिक बातें बनाने का समय ही न ले, सावधान हो। यह कह कर अपने धनुष से बाण छोड़ा जिस को युद्ध विद्याविशारद महा धनुर्धर मेघनाद ने क्षणमात्र में अपने तीन बाणों से काट कर गि।

दिया। फिर महाक्रोध करके पराक्रमी मेघनाद ने वीर लक्ष्मण जी पर बरछी का वार किया। यह देख लक्ष्मण जी ने अपना रथ तनिक पीछे हटा लिया और क्रमश: ऐसी बाणों की वर्षा की कि उस को वार करने का अवकाश ही न दिया। एक बाण उस की छाती पर लगा जो कि युद्ध वेष्टन को काट छाती की हड्डियों को वेध कर पार हो गया परन्तु महाप्राक्रमी मेघनाद ने संभल कर ब्रह्मास्त्र छोड़ा जो लक्ष्मण जी के बाण से टकराकर निकम्मा हो गया, अब इस ने द्वितीय बाण छोड़ना चाहा परन्तु लक्ष्मण जी ने एक ऐसा जलवैधी बाण छोड़ा जोकि मेघनाद की भुजा को काटता हुआ निकल गया द्वितीय बाण ने शिर को तन से भिन्न कर जीव को शांति प्रदान करा दी। फिर तो राक्षसी सेना में हाहाकार मच गया वीरों के साहस जो पहिले ही शिथिल हुए थे। भंग हो गये और अनेक अधिपतियों की मृत्यु देख यह सब रह गये निदान पीठ दिखाने के सिवा कुछ न सूझी। यह लो देखना रावण की सेना किस घबराहट से भागी जा रही है और बानरी सेना इन का पीछा कर रही।
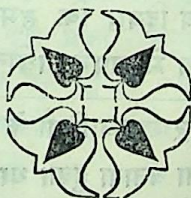
५२वां अध्याय

अष्ट दिवस संग्राम।

दोहा—रक्षक लंका नगर के, रोवत द्वारं ठाड।
सारी शोभा लंक की, आज चली है छाड़॥

राक्षसों ने पराजित रात्रि आंखों में से काटो समस्त रात्रि युद्ध सामग्री के एकत्र और सम्मति में विता दी। रावण वानर द्वीप के वीरों को तो युद्ध के आरंभ ही से नमस्कार कर चुका था क्योंकि इनके निकट इस विवाद के मूल कारण वही थे। महाराज रामचन्द्र जी की ओर से युद्ध कर रहे थे परन्तु अब* उन लोगों ने जिनके पराक्रम पर लंका की राजधानी महत्वता प्रकट कर रही थी और यह महत्वता भी अयोग्य न थी क्योंकि वह महाराज रावण के आधीन थे, जब इनसे सहायता की प्रार्थना की तो इन्होंने टका सा जवाब दिया, कि हम लोग नहीं आ सकते हा! ऐसे कठिन समय में अपने आधीन राजाओं से ऐसा रूखा

---

*यह लोग छोटी २ राजधानियों के राजा थे, जिनको विजय कर रावण ने कर दाता बनाया हुआ था, यहां इन के सविस्तर वर्णन की आवश्यकता नहीं वालमीकी लंका कांड और मिस्टर ग्रेफथस साहिब की पांचवीं पुस्तक का २३२ पृष्ट देखो।

उत्तर सुन कर और बानर द्वीप निवासियों को अपना शत्रु देख रावण का मन जो मित्र गण व बन्धुओं के मारे जाने और नित्य की हार से पहिले ही अग्नि के समान प्रज्वलित हो रहा था एकाएक क्रोध से भड़क उठा, और भांति २ के विचार शत्रु को दण्ड देने के विषय में उत्पन्न होने लगे, कुछ काल तक तो इसी धुन में लगा रहा, परन्तु जब अपनी दशा पर दृष्टि डाली और निज मन्द भाग्यता को सोचा तो अपने ही दुर्व्यवहार अहंकार इन्द्रियाशक्ति आदि मानों सब रूप धारण कर सामने खड़े हो गये, और इसके मन को धिक्कार करने लगे. इस समय रावण को खेद से हाथ मलने और ठण्डी सांस भरने के सिवा कोई उपाय न सूझा अन्त में रथ सवार हो असंख्य सेना सङ्ग ले(जिस की गणना हमारी शक्ति से बाहर है) रण भूमि में आ पहुंचा, और वहां आते ही मेघनाद के मृतक शरीर का चित्र आंखों के आगे आ गया मन कांप उठा अन्तःकरण विदीर्ण होगया और मन ही मन में कहने लगा हा ! मेरे प्रिय पुत्र ! तेरे घातक अभी तक सजीव हैं जब लग में उन से बदला नहीं लेता मुझे चैन नहीं पड़ता आह तेरी वीरता साहस की तो सर्वत्र चर्चा थी इन्द्र यम और कुबेर तो तेरी दृष्टि से कांपते थे, तू इनके हाथ से किस प्रकार मारा गया, इस प्रकार के विचार उत्पन्न हो २ कर उसके मन को निर्बल कर रहे थे। कि समाने शत्रु सेना पर दृष्टि पड़ी और इनको नियम पूर्वक युद्ध के लिये उद्यत देखा इन्द्र, यम, कुबेर को भी अपने विरुद्ध शत्रु की ओर से संग्राम करने के लिये तत्पर देखा तो उसके क्रोध की सीमा न रही, उन की अनभिज्ञता ऐसे कड़े वक्त में करते देख इस की

नाड़ी २ में कोपाग्नि जाग उठी नेत्र लाल हो गये, शरीर कांप ही रहा था कि युद्धारम्भक शंख ध्वनि ने कानों को आ खैंचा युद्ध वाद्यों की बीरों को जोश दिखलाने वाले घराटा घोर सुनाई दिये, और धनुष की टंकार से गगनमराल में गूंज हो हृदय को वेधन कर गई, तो महाराज रावण को जो बड़ी असावधानी से इस समय की प्रतिज्ञा कर रहा था, देखिये एक वीर दल लेकर किस विध रथ को उड़ाता हुआ उसी ओर शत्रुदल पर जा रहा है, जहां महाराज रामचन्द्र जी वरुण, कुवेर आदि २ अपने २ वीरों की वीरता देख रहे हैं, यद्यपि महाराजा रामचन्द्र जी के शूरवीरों ने भी बड़ी योग्यता से इन का सामना किया और रथ के रोकने का यत्न किया परन्तु इस बलवान् राजा के रथ को कोई भी न रोक सका वरञ्च इस यत्न में कई वीर हनन हो गये और क्षण भर में यह आक्रमण करने वाला दल सैकड़ों योधाओं का परलोक गमन कराता हुआ कुछ दूर पहुंचा, तो महाराज रामचन्द्र जी की दृष्टि इधर पड़ गई, तत्काल सेना दल को सम्भाल रथ आगे को बढ़ाया और सामने डट कर ऐसी तीरों की वर्षा की शत्रु के हाथ पूर्व जैसी शीघ्रता वेग दिखलाने से रुक गये इन्द्र, यम, कुवेर आदि वीरों ने आगे बढ़ते हुए शत्रु को वहीं रोक लिया मानों परस्पर संग्रामित दल शक्ति को एक रस कर दिया, हा ! हा ! पल भर में सैकड़ों वीर वानों से वेधे गये ।

पाठक महाशय ! आज का संग्राम कोई साधारण संग्राम नहीं है देखिये रावण का हाथ किस विध फुर्ती से चल कर

चकित कर रहा है और अब समस्त सेना इधर को ही झुक पड़ी है, दोनों ओर के वीर प्राण हाथ पर धर आगे बढ़ २ कर वार कर रहे हैं, फट जाने वाले गोले (बम्ब) और अन्यान्य कई विचित्र शस्त्र आज संग्राम में बरते जा रहे हैं मुरदों के ढेर के ढेर कई स्थानों में पड़े हैं ओ लो एक ही बाण लगने से महाराजा रामचन्द्र जो का रथ निकम्मा हो गया, परन्तु राजा इन्द्र ने तत्काल स्य, रथ ला खड़ा किया जिसपर आरूढ़ हो महाराज रामचन्द्रजी रावण की ओर बढ़ रहे हैं अभी थोड़ी ही दूर गये थे कि रावण ने एक बाण और चलाया जिसको उन्होंने अतीव शूरता से मार्ग में ही काट दिया, बस फिर क्या था दोनों वीर आम्हने साम्हने डट गये, और बड़ी देर तक दोनों में बाण वर्षा होती रही किसी को साहस न पड़ा कि इन के मध्य में हस्तात्तेप करे, जब बाणों से काम निकलता न देखा तो दोनों ने विद्युत् के समान खड़गें निकाल लीं, देर तक इनको निपुणता परस्पर दिखलाते रहे, अन्त में एक गहरा घाव लगने से रावण घबरा गया और खड़ग को त्याग बरछी ले रामचन्द्र जी पर धावा करना चाहा परन्तु इतने अवसर में रामचन्द्रजी के सारथी ने घोड़ों की बाग ऐसी सावधानी से फेरी कि रथ तत्काल पीछे हट गया और रावण का वार व्यर्थ गया और इस के उत्तर में रामचन्द्र जो ने एक बाण धनुष से ऐसा छोड़ा जो रावण के हृदय को बेधता हुआ पार हो गया और वह दीन रथ से नीचे गिर पड़ा।

———

चौपाई।

गिरो भूमि पर जब दशकन्धर,
महा प्रतापी वीर धुरन्धर।

राक्षस सारे भए दुखारी,
सुरादिक सब भए सुखारी।

हा! देखिये! रावण भूमि पर तड़फ रहा है, और शेष सेना जो उसी मैदान की विस्त्रित भूमि में उत्तर की ओर डटी थी अभी तक यु ़ कर रही और इधर विजय पताका आकाश में उड़ने लगा, महाराज रामचन्द्र जी के जय २ कार की ध्वनि आकाश तक पहुंच गई, प्रसन्नता द्योतक हर्ष जनक शब्द सब ओर से आने लगा और शत्रु दल ने अस्त्र फेंक श्री रामचन्द्र जी की शरण मांगी!

पाठक महाशय! रावण को भूमि पर तड़फते देख विभीषण को भ्रातृप्रेम में आ घेरा, शीघ्रता से रथ को चला उस के निकट जा पहुंचा, परन्तु खेद कि इतने में वह परलोक यात्रा कर चुका था और मृत्यु ने उसके शरीर को ठसडा कर दिया था, अब रावण हाथ पांव फैलाये मृत्यू शय्या पर पड़ा है, शरीर रुधिरक्रांत है परन्तु मृग समान नेत्र वैसे ही खुले हैं जैसे कि पहिले थे। विभीषण को भाई की यह दशा देखते ही उसकी विद्वता के कथन, वीरता के व्याख्यान और बल युक्त साहसमय

पूर्वोक्त कथन स्मरण आ गये, उधर वंश के विनाश और अपने एक मात्र रह जाने और सब के वियोग ने इस के आतुर हृदय को और भी विदग्ध कर दिया, सब ज्ञान के वचन इस समय भस्मी भूत हो धूम्र रूप धारण कर मस्तिष्क को चढ़ गये और बेसुध हो भूमि पर गिर पड़ा जब तनिक सुध आई तो उठ कर बैठ गया।

अब देखिये दोनों हाथ भूमि पर टेके रावण के मुख को देखता हुआ हाय भ्राता हाय भ्राता ! कह कर कैसे विलाप कर रहा है और बहुत से वीर सरदार इस के चारों ओर बैठे रो रहे हैं यह लो मन्दोरी भी इस की मृत्यु का समाचार सुन रथारूढ़ हो रोती चिल्लाती आ रही है, हा ! जैसे यह उस मृतक शरीर के निकट पहुंची और स्वामी को रुधिराक्रांत हाथ पांव फैलाये भूमि पर पड़े देखा, बेसुध हो भूमि पर गिर पड़ी, जब सुध आई तो रो रो कर कहने लगी,' हा ! पति तेरी यह दशा क्यों कर हुई तुम से तो इन्द्र, यम, कुबेर आदि डरते थे आज तुम्हारी वह बीरता कहां गई जो इस प्रकार बेसुध पड़े हो हाय ! मेरे कथन का उत्तर नहीं देते ; स्वामिन ! आप के सिवा मुझ को कोई धैर्य देने वाला दीख नहीं पड़ता, हा ! प्रिय पुत्र पहिले ही सिधार गये पौत्र प्रपौत्र भी दीख नहीं पड़ते ! हा ! बीर कुम्भकरण सरीखा देवर भी इस युद्ध की भेट हुआ हा ! विधाता अब मैं किधर जाऊं क्या करूं स्वामिन आप को बहुतेरा सम-झाया लाखों यत्न किये कि आप इस हठ को छोड़ दें परन्तु खेद कि आपने एक न मानी, पाठकगण ! मन्दोदरी इस प्रकार

विलाप कर रही थी कि महाराज रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी वहां पर आ गये और कहने लगे मन्दोदरी तू आप बुद्धिमति है तनिक न्याय पूर्वक आप ही कहो कि जो दशा तेरे पुत्र या पौत्रों की हुई इस में किस का अपराध है देवी ! जब तू स्वयं दूर दर्शिनी और न्यायकारिणी है तो धर्म से न्याय कर कि तेरा स्वामी जो अतीवाभिमानी आत्मश्लाघी और किसी की बात को न सुनने वाला था, उस की यह गत होनी चाहिए थी या नहीं ? तुम ने स्वयं बहुतेरा समझाया और हम ने भी सहस्रों यत्न किये परन्तु इस ने तनिक ध्यान न दिया अब कहिये इसको यह दिन भी देखना था या नहीं ? रानी सन्तोष कर कर्म रेख टारे नहीं टरती इस में किसी का दोष नहीं यह इन्हीं के कर्मों का फल है अब तुम्हारे विलाप से शत्रु प्रसन्न मित्रों को खेद होने के सिवा क्या प्राप्त होगा, यह संसार नाश रूप है कोई स्थिर नहीं रहता। हा! कोई दस दिन पहिले कोई दस दिन पीछे पर मरना सब को है। रानी सोच तो सही, कहां है पुलस्त्य, कहां है ब्रह्मा, कहां है विश्रव, कहां है तारा, यह सब के सब काल भेंट हो गये। सो अब उचित यही है कि धैर्य्य धारो और इस का मृतक संस्कार करो।

५३वां अध्याय

विभीषण का राज्यसिंहासन और रामचन्द्रजी की वापसी।

"चक्रवत्परिवर्तन्ते सुखानिच दुःखानिच"

आहा ! संसार शिक्षा गार है देखिये कल विलाप करते २ विभीषण मूर्छित हो रहा था, और रावण की मृत्यु होने से खेदित दीख पड़ता था आज इसके मन्दिर के आगे हर्ष सूचक वाद्य बज रहे हैं, प्रत्येक स्थान में प्रसन्नता प्रकट हो रही है, मन्त्री और अधिकारी वर्ग उत्तमोत्तम वस्त्र पहिरे राज्य दरबार में जा रहे हैं ! आहा आज क्या है ? जो लका के निवासी बाल वृद्ध सब प्रसन्न वदन प्रतीत होते हैं प्रसन्नता द्योतक शब्द राज दरबार से आ रहे हैं, पाठक वृन्द ! आप चर्कित क्यों हो गये वह देखिये श्री लक्ष्मण जी विभीषण को राज्य तिलक देने के लिये जा रहे

नोट—उपरोक्त युद्ध में जहां तक हमने रामायण में देखा है हमारे वीर का कहीं ऐसा सम्बन्ध नहीं पाया जाता परन्तु वह भी उचित प्रतीत नहीं होता कि इन्द्रिय शक्ति के परिणाम का वर्णन न किया जावे।

है। हैं इतनी शीघ्र ! कल तो यह रो रो कर बेसुध हो रहा था और आज ऐसी खुशी मनाई जा रही है। खेद ! महाशय खेद किस बात का, संसार स्वार्थागार है लोग अकृतज्ञ हैं किसी की करनी नहीं जानते औरों को त्याग यदि हम अपने ही शरीर पर दृष्टि दें और विचारें तो यह अकृतज्ञ और शत्रुओं का घर प्रतीत होगा, हा ! शत्रु भी वह जो लोक परलोक को विगाड़ें वह कौन ? कर्मेन्द्रिय जिनकी प्रबलता से अनुचित वासनायें उत्पन्न होती हैं, और उस समय उचितानुचित का विचार नहीं रहता। और निज वासनाओं की पूर्ति के लिये हम लोग चोरी जारी छल छिद्र के अनुयायी हो जाते है। अन्त में इनका परिणाम यह होता है कि परलोक बिगड़ जाता है सज्जनों की दृष्टि में पतित हो जाते हैं। भाई ! दूर क्यों जाते हो, तनिक रावण की ओर ही दृष्टि कर लो ! चारों वेद और षड्शास्त्र का ज्ञाता और इतने राज्य का स्वामी होने पर भी केवल दुष्ट काम की प्रबलता से संसार की दृष्टि में ऐसा पतित हुआ कि आज हम लोग उस के मस्तिष्क की श्लाघा करने के बदले और माननीय ब्राह्मण कुल भूषण जानने के स्थान उस महान् विचार शील शिर को गधे के शिर से उपमा देते हैं केवल यही नहीं इसकी प्रजा को भी उसी के पीछे हम लोग राक्षस, पशु, शृङ्गधारी समझते हैं इस लिये मनुष्य मात्र को उचित है कि वाह्य शत्रुओं को छोड़ पहिले अपने ही अभ्यान्तरिक शत्रुओं को पराजय करें ईश्वर पर विश्वास रक्खें, और उसी के दिये हुए पर सन्तोषी रहें, यह सब ऐश्वर्य धन भोग नाशवान हैं, देखिये कल रावण का राज्य था आज विभीषण के सिंहासनारूढ़ का

उत्सव हो रहा है। वह लो राज्यसिंहासन पर सुशोभित भी हो गया, लक्ष्मण जो राज्य तिलक देकर और विभीषण सेना लेकर महाराज रामचन्द्र जी की सेवा में जा रहे हैं।

आहा! क्या जाने हमारे पाठक गणों की वृत्ति श्री सीता जी के दर्शनार्थ अशोक वाटिका में घूम रही हो नहीं महाशय सीता जी वहां नहीं हैं उनको तो हमारा महावीर जनरैल रात को ही रथारूढ़ करके ले आया था। वह देखिये महाराज रामचन्द्र जी की बाईं ओर धर्म की मूर्ति सुशीलता और पतिव्रता का साक्षात स्वरूप श्री सीता महाराणी विराजमान हैं। पाठक गण ज्यों ही विभीषण ने बहुमूल्य रत्नों के सहस्रों थाल महाराज रामचन्द्र जी को भेंट किये तो उन्होंने उनकी तरफ केवल एक बेर आंख उठाकर देखा और फिर विभीषण से कहा कि हमारे काम के नहीं इन सब को उन लोगों में (सिपाहियों की ओर देखकर) वितरण कर दो। इन की आज्ञा को विभीषण ने तत्काल पालन किया जब वीरों को पारितोषिक मिल चुका तो महाराज रामचन्द्र जी ने समस्त अधिकारियों को एकत्र कर सबको मान और श्लाघा पूर्वक धन्यवाद दे बिदा किया, और स्वयं अयोध्या जी को पधारने के लिये विभीषण से आज्ञा मांगी।

विभीषण-'महाराज नगर में चल कर एक दो दिन विश्राम कीजिये समस्त लंका निवासी आप के दर्शन के अभिलाषी हैं'

रामचन्द्र-"हम को नगर में जाने के लिये कुछ उजर नहीं परन्तु हम अपनी पूर्व प्रतिज्ञा भंग नहीं कर सकते क्योंकि आज १४ वर्ष का अन्तिम दिन है और नहीं कल का दिन ठहर सकते हैं क्योंकि ...

रहे होंगे, यदि एक दिन भी वनवास काल से अधिक व्यतीत हो गया तो न जाने उन के मन में क्या २ विचार उपजेंगे। माता कौशल्या न जाने क्या कुछ ना कर बैठे, उचित यही है कि अब हम को आज्ञा दीजिये कि हम अपने देश को जायें"।

विभीषण—(हाथ जोड़ कर) आप जाने की चिन्ता न कीजिये, पुष्पक विमान ऐसा शीघ्र गामी है कि एक ही दिन में आप को अयोध्या में पहुंचा देगा, और मैं भी आप के संग अयोध्या जी चलूंगा।

महाराज रामचन्द्रजी—जो कुछ आप ने कहा है, सत्य है परन्तु अब हम किसी प्रकार से ठहर नहीं सकते यदि कुछ क्लेश न हो तो पुष्पक विमान मंगा दीजिये और आप भी चलने की तय्यारी कीजिये।

विभीषण—बहुत अच्छा।

थोड़ी देर में पुष्पक विमान आ गया जिस में महाराज रामचन्द्र जी, सीता जी, लक्ष्मण जी, विभीषण, सुग्रीव, नल, नील, अङ्गद और हमारे पुस्तकलत्त (हनुमान जी) चढ़ बैठे और शेष सामग्री तथा अन्य बानर लोग जिन का अधिक प्रेम था, दूसरे विमानों पर बैठ गये, जब सब विमानों पर आरूढ़ हो चुके तो भारत वर्ष के प्राचीन काल के विमान इस वायु वेग से चले कि जिन की उपमा देने के लिये आज कल कोई यन्त्र प्रतीत नहीं होता। महाराज रामचन्द्र जी सीताजी को हर एक नगर जो रास्ते में दृष्टि गोचर हुआ बतलाते जा रहे थे। ज्यों ही किष्किन्धा के महल दीख पड़े बोले प्रिय! यह वह स्थान है जहां पर सुग्रीव से हमारी मित्रता हुई थी

और बाली मारा गया था।"

सीताजी—महाराज ! क्या ही अच्छा हो यदि आप रोमा तारा प्रभृति वानरों की *स्त्रियों को जिन को आप भली भांति जानते हैं और वह इस समय किष्किन्धा में विद्यमान भी हैं अपने सङ्ग अयोध्या में ले चलें जिस से मैं उन से वार्त्तालाप का लाभ उठाऊं यह सुनते ही महाराज रामचन्द्र जी ने सुग्रीव की ओर देखा, और उसने भी सीताजी के कथन का अनुमोदन किया, जब विमान किष्किन्धा पर पहुंचा तो वह भूमि पर उतारा गया और सुग्रीव नगर में जा कर सब स्त्रियों को तत्काल साथ ले आया और वहां से चल कर भारद्वाज ऋषि के आश्रम पर पहुंचे क्योंकि यह चौदवीं वर्ष की अन्तिक रात्रि थी, इसलिये रामचन्द्र जी ने भी यही उचित जाना कि पहिले हनुमान जी को भरत जी के पास भेजा जावे जिस से वह चिन्ता सागर से विमुक्त हो प्रसन्नता प्राप्त करें और आप ने वहीं रात्रि व्यतीत करने का निश्चय किया।

---

*क्यों महाराज ! अब भी आप को हनुमान सुग्रीव आदि के मनुष्य होने में सन्देह है तो बतलाइए सीता जी को बेचारी बंदरियों से क्या प्रयोजन और उनसे बात चीत करके क्या लाभ उठा सकती थी, पाठकगण ! यह सब मिथ्या भ्रम है। जिस का सविस्तार हम १म, भाग में वर्णन कर आए हैं देखो वाल्मीकी रामायण पृ० १४० लंका काण्ड सर्ग ५५।

५४वां अध्याय

नन्दी ग्राम।

दोनों समय मिल रहे हैं प्रकाशित दिन विदा हो रहा है, या यह समझें कि सूर्यभगवान अपने प्रकाश की गठड़ी बांधे पश्चिम दिशा से मिलने को जा रहा है, और सन्ध्यादेवी के आगमन का समय अतीव निकट है वह महाशय जिनको इस प्रकाश युक्त दिन से कुछ प्रेम है और पवित्र वेद ऋचाओं की शाखा जिनके हृदय में अंकित हैं वह इस बहुमूल्य समय को अहो भाग्य से प्राप्त और शुभ समय जान कर अभी से हाथ में जल का लोटा और कच्छी में आसन दबाए नगर से बाहर जा रहे हैं और कई गृहस्थी जो दिन भर सांसारिक कामों में आसक्त थे और उनको इतना अवकाश ही नहीं मिलता कि यह खुले मैदान में जाकर सन्ध्या वन्दन कर सके, परन्तु इस समय वह भी इसी विचार में हैं कि घर में कहीं एकान्त स्थान मिले तो अपने नित्य नियमों को पालन करें ऐसे समय पर हमारी वृत्ति जिस ओर जा रही है वह अयोध्या के निकट एक नन्दो ग्राम है, जिस के उत्तर की ओर एक छोटा मन्दिर है और जिसके आगे कुछ हरे भरे वृक्ष

लह लहा रहे हैं इस मन्दिर में एक साधु लम्बे कद सांवला रङ्ग सिर पर जटा जूट जिस के मुख से उदासीनता टपक रही है बैठा हुआ सन्ध्या कर रहा है और जल का लोटा आगे धरा है, कुछ देर तक तो नेत्र मूंदे न जाने किस विचार में मग्न रहा और फिर यह कहना आरम्भ किया। हे परमात्मन ! आप ही उस प्राण नाथ रामचन्द्र जी के हृदय को प्रेरणा करें, कि भरत निर्दोष है और शीघ्र उसको दर्शन दें उनका कथन था १४ व के अनन्तर एक दिन भी हम बाहर न ठहरेंगे और यदि कुशल रही तो एक दिन पूर्व ही तुमको आगमन की सूचना देंगे, हा ! वह सुखदायक दिन आज हो का है, जिस पर मेरे जीवन का निर्भर था और जिसके आने की आशा चिरकाल से लग रही है इसी चन्द्र रूप दिन को मेरे नेत्र चकोर के समान तरस रहे थे न जाने रामचन्द्र जी का मन मेरी ओर से क्यों कर कठोर हो गया, या कोई और कारण है जो अभी तक किञ्चित समाचार नहीं आया, हा ! इस में कुछ भय की वात अवश्य है, यह कहा और ग्रीवा झुकाकर न जाने किस विचार में डूब गया, पाठक गण ! जिसको हम साधु समझे थे वह वास्तव में भरत है, जो रामचन्द्र जी की प्रतिज्ञा में देखिये किस प्रकार चिंता मग्न हो रहा है, क्या आप निश्चय कर सकते हैं कि यदि भरत रामचन्द्र जी की आपत्ति का वर्णन सुनता तो चुप चाप रह सकता था, उनको सहायता को न पहुंचता ? नहीं कदापि नहीं तत्काल सुनते ही जिस प्रकार हो सकता अपने आप को वहां पहुंचाता। हां हमारी निर्बुद्धता ने भरत के स्वच्छ पवित्र

जीवन को भी कलंकित कर दिया, खेद एक अनुपम प्रमाण को ही अपवित्र दशा में बदल दिया।

पाठक गण ! जब ही भरत जी ने सिर उठाया, तो हनुमान जी को जो इनकी बात श्रवण कर रहे थे, अपने पाऊं पर पाया, शीघ्रता से उनका सिर उठाया और बोले भाई तुम कहां से आये हो और मुझ से क्या काम है ?

हनुमान—"महाराज मैं रामचन्द्र जी का सेवक हूं, और उनके आगमन की शुभ सूचना लाया हूं, कि प्रातः काल वह आनन्द पूर्वक यहां पहुंच जावेंगे"।

आहा ! इस खबर को सुनते ही भरत जी का मुख प्रसन्नता से प्रफुल्लित हो गया, कलेजा खुशी से उछलने लगा कुछ काल तो अतीव चकितता से हनुमान जी की ओर देखते रहे, फिर कहने लगे 'क्या महाराज रामचन्द्र जी कल अवश्य आवेंगे और आज वह कहां हैं"।

हनुमान—"महाराज वह विभीषण, सुग्रीव आदि प्रभृति वानरों सहित आज रात भर भारद्वाज ऋषि के आश्रम पर रहेंगे, और कल सूर्योदय से पूर्व यहां पहुंच जावेंगे।

भरत (विष्मय होकर) "क्या सचमुच कल सुबह ही आयंगे और आज भारद्वाज ऋषि के आश्रम पर ठहरे हैं"।

हनुमान—जी हां।

यह सुनते ही भरत जी ने जो सब से पूर्व काम किया वह यह था कि उसी समय शत्रुघ्न को बुलाया रनवास में सूचना दी नगर में प्रसन्नता द्योतक शुभ घोषणा की आज्ञा दी फिर हनुमान जी से बोले अब कहिये, विभीषण, अंगद और सुग्रीव कौन हैं और रामचन्द्र जी से उनका क्या सम्बन्ध है ?

पाठक गण ! हनुमान भरत जी को महाराज रामचन्द्र जी की आपत्ति वार्ता सुना ही रहा था, कि कौशल्या सुमित्रा और केकई महाराजा दशरथ की तीनों रानियें आ गईं । हा ! तनिक कौशल्या को देखिये कैसी दुर्बल होरही है, मुख पीत पड़ गया है शरीर में रुधिर का नाम नहीं दिखलाई देता, ओहो ! रथ से उतर कर यहां तक आने की सामर्थ्य भी नहीं । देखिये ! सुमित्रा कैसे थाम कर ला रही है, जैसे ही द्वार पर पहुंची किसी ने कह दिया "वह पुरुष जो भरत के सम्मुख बैठा है जिनको रामचन्द्र ने भेजा है, वह सीता जी के गुम होने का समाचार सुना रहा है, हा ! गुम हो जाने का शब्द सुनते ही बदन में सन्नाटा छा गया और आंखों के आगे अन्धकार फैल गया, और बेबस हो कर गिर पड़ी, कौशल्या को गिरते देखकर अब देखिये लोग उसे तसल्ली दे कर उठा रहे हैं हनुमान ने जो अभी तक भरत की ओर मुख किये बैठा था शीघ्रता से कहा माता यह तो मैं व्रत का वृत्तान्त कह रहा था, वह तो अब तीनों आनन्द पूर्वक भारद्वाज के आश्रम पर हैं और कल प्रात काल आप के पास आ जायंगे, घबराने की कोई बात नहीं ।

कौशल्या—क्या यह सच है जो तुम कह रहे हो या केवल सान्त्वना की बातें हैं !

हनुमान—"माता जी ! जो कुछ मैंने कहा सत्य है निश्चय समझें ।

कौशल्या—तो फिर वह क्या बात थी जो तुम ने सीता के गुम होने के विषय में कह रहे थे ?

हनुमान ने फिर दूसरी बेर रामचन्द्र जी की आपत्ति का वर्णन करना आरम्भ किया और इन्हीं बातों में प्रातःकाल हो गई। महाशयगण! इतने काल में महाराज रामचन्द्र जी के आगमन का समाचार आबाल वृद्ध में फैल गया, वहां अभी से लोग आने आरम्भ हो गये हैं सूर्योदय से पूर्व २ इतनी बड़ी भीड़ भाड़ हो गई कि जिस की संख्या करनी हमारी शक्ति से बाहर है। पाठकगण! तनिक विचार तो करें कि जब किसी का प्रिय सम्बन्धी दो चार दिन के अनन्तर यात्रा से वापस आता है तो कैसी प्रसन्नता होती है। यह अयोध्यानरेश (राजा) का पुत्र जिस ने केवल पिता की आज्ञा पालन के लिये १४ वर्ष का बनवास लिया था, और रावण जैसे सुप्रसिद्ध राजा पर विजय पाकर वापस आता है, क्या यह सब बातें साधारण प्रसन्नता की हैं! नहीं, हम ज़ोर से कह सकते हैं कि ऐसी प्रसन्नता का अवसर किसी को नहीं मिला जो आज इन लोगों को प्राप्त हो रहा है, देखो चारों ओर प्रसन्नता के बाजे बज रहे हैं, सेना प्रशस्त हो खड़ी है, नन्दीग्राम का वह मैदान जो इस के दक्षिण की ओर है, मनुष्यों से भरपूर है, और प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि बड़ी उत्कण्ठा से आकाश को निहार रही है, यह लो भुजायें उठ गईं अंगुलियें सीधी हो गईं क्या जाने विमान दृष्टिगोचर हो गया है। हां यही निःसन्देह ठीक है. वह देखिये अब तो विमान भली भांति दीख रहा है और इन लोगों के पांव भी बेबस हो आगे को बढ़ रहे हैं, जैसे ही विमान भूमि पर उतरा रामचन्द्र जी ने शीघ्रता से उतर कर भरत जी को छाती

से लगा लिया, इस समय दोनों भ्राताओं के नेत्रों से प्रसन्नता का जल टपक रहा है, फिर शत्रुघ्न से मिले और केकई के चरणों में प्रणाम कर सुमित्रा के पांव पर सीस निवाया, और अब कौशल्या की मनो कामना पूर्ण कर रहे हैं, आहा! सीता जी की ओर देखिये किस आनन्द से सब से मिल रही है। मंत्री गण तथा अन्याधिकारी इन सब पर पुष्प वृष्टि करते हुए प्रसन्नता प्रगट कर रहे हैं। सार यह है कि देर तक नन्दीग्राम के इस मैदान को प्रसन्नता लाभ होती रही, तदनन्तर सब रथों बहलियों और अश्वों पर आरूढ़ होकर अयोध्या जी को पधारे दो तीन दिन तक निरन्तर प्रत्येक घर में प्रसन्नता द्योतक वाद्य और हर्ष सूचक मंगलाचार होते रहे, अन्त में महर्षि वसिष्ठ जी ने एक दिन नियत कर महाराज रामचन्द्र जी को राज्य तिलक दिया और तदनन्तर हनुमान, सुग्रीव, विभीषण और अङ्गद प्रभृति को इस देश के बहुमूल्य अपूर्व पदार्थ देकर विदा करने लगे तो सीता जी ने अपने मनोहर वचनों से सब का धन्यवाद किया और अपने गले से बहुमूल्य रत्नों की माला उतार हनुमान जी को देकर इन को जाने की आज्ञा दी, जैसा कि देखिये यह सब पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो कर अपने स्व देश को जा रहे हैं।

५८वां अध्याय

रत्न पुर ।

दोहा—ऋतु बसन्त जाचक भए, तरुवर दीन्हें पात ।
तातें नव पल्लव भए, दीन्ह कतहु नहीं जात ॥

सायं काल का समय है, रात्रि अन्धकार क्षण २ में बढ़ा रहा है और ज्योति प्रकाश घर घर में हो रहा है इस समय हमारे मन की बाग डोर जिधर जा रही है वह रत्नपुर के राज्य के उच्च मन्दिर का वह दालान है जिसे हमारे पाठकगण ने प्रथम भाग में देखा है कि डोली आने के समय स्त्रियों से भरपूर था आज उस में सायंकाल के समय उपासना से निश्चित हो राजा पवन एक रत्न जड़ित आसन पर बैठा है और उस के सन्मुख अञ्जना देवी चिन्तातुर रूप में सरहाने की ओट लिए बैठी है और इसी दालान के उत्तरी ओर एक द्वार प्रतीत होती है जिस में से एक करुणामय शब्द किसी परिचिन्त स्त्री का है परन्तु स्पष्ट रूप से विदित नहीं होता कि किस का है, हां कभी २ पद्मरागा के शब्द का सन्देह होता है, क्योंकि द्वार पर पट तना है इस लिये न तो हम कुछ देख ही सकते हैं और ना ही भली भांति समझ सकते हैं कि क्या वार्तालाप हो रही है परन्तु हां इतना अवश्य प्रतीत होता है कि शिक्षा जनक

वार्तालाप हो रहा है, जिस के श्रवण करने की आसक्ति में अञ्जना देवी की उद्विग्नता हाल जानने के बिना जो प्रायः हनुमान जी के वियोग का फल है हम ने अपने विचार को उस कमरे में पहुंचा दिया, आहा! निस्सन्देह हमारा विचार ठीक निकला, देखिये पद्मरागा नित्य कर्म से निवृत्त हो मनोहरलता इन्द्रमणी और रोहिणी प्रभृति को जो इस के निकट बैठी हैं कह रही है "प्यारी बहिनो! निज मन को सदैव ईर्षा द्वेष, शत्रुता, विरोध और परस्पर की फूट प्रभृति से सदैव बचाये रखना चाहिये, क्योंकि आध्यात्मिक और आधिदैविक योग्यता प्राप्ति के लिये मन की शुद्धता उत्तम साधन है, मन को शीशे से उपमा देते हैं, यदि शीशा साफ सुथरा हो तो उस में जो कुछ देखें दीख पड़ता है यदि उस पर तनिक भी धूल या कोई मैल छाई हो तो साफ किये बिना कुछ भी प्रतीत नहीं होता। सखी! इसी प्रकार ठीक मन की अवस्था है यह मन ही है कि साधू असाधू की पहिचान करता है और जो विचार या सम्मति दृढ़ कर सकता है चाहे वह शुभ हो या अशुभ, सारांश यह है कि मन को जिस ओर लगायें लग जाता है, इसी लिए प्यारी जीवन काल को अपूर्व जान कर इस शुभ कर्मों में प्रवृत्त करें और बुरी बातों से बचायें और ऐसे पुरुषों के मिलाप से सदैव बचते रहना चाहिये जिनके हृदय में कुछ हो और बाहर से कुछ और ही प्रकट करें क्योंकि ऐसे मनुष्य की सङ्गत अशुभ फल दायक होती है।

पाठक गण! पद्मरागा अभी अपना कथन समाप्त करने ही न पाई थी कि दालान में से हमारे रत्न महावीर का शब्द कमरे में सुनाई दिया तब फिर क्या था रत्न की मन सखी तत्काल

में आ गईं और देखा कि हनुमान जी अञ्जना देवी के पास फरश पर बैठे हैं, और वह कह रही है कि 'पुत्र! इतना भी तो मन कठोर नहीं करना चाहिये, कि छै महीनों तक गृह की सुध ही न लेना तुम तो यहां से कुछ दिनों के लिये गये थे कि सुग्रीव और बाली का फैसला करा के शीघ्र आ जाऊंगा।"

हनुमान—माता! क्या कहूं पहिले तो बाली से झगड़ा होता रहा, जब महाराज रामचन्द्र जी की सहायता से उस का तो बध हुआ, परन्तु महाराज रामचन्द्र जी का वर्णन जो आपने सुन ही लिया होगा क्या उस से अधिक भय जनक नहीं था: आप ही न्याय कीजिये ऐसी दशा में मुझे अपेक्षा करनी उचित थी?

अञ्जना—नहीं पुत्र! कदापि नहीं यह जीवन क्षणिक है इस में जो समय उपकार में व्यतीत हो वही शुभ है, विशेष करके परदेशी की सहायता करनी सब से श्रेष्ठ है परन्तु शरत यह है कि सत्य पर हो।"

पवन—(बीच ही में) रावण को क्या हो गया जो हठ कर वैर बढ़ा लिया और थोड़ी सी बात के लिये अपना सर्वस्व और वंश का नाश करा लिया।"

हनुमान—महाराज हम लोगों ने बहुतेरा यत्न किया अतीव समझाया इस के सिवा श्री रामचन्द्र जी ने अन्त समय तक यही यत्न किया कि वह सीता जी को ला कर क्षमा प्रार्थना करले, तो उसे क्षमा दी जाए परन्तु खेद कि उस अदूरदर्शी की समझ में कुछ भी न आया, जिस का फल यह हुआ कि आज भूमण्डल में उन के नाम मात्र शेष रह गये हैं।

पवन—हां! हां!! एक वह समय था कि जब बड़े २ राजा

महाराजा इसके आगे सिर झुकाते थे और वह बड़े अभिमान की दृष्टि से उनकी ओर देखता, आज उस का नाम लेवा भी नहीं दीखता। हा खेद ! जब से इस अन्यायी के मन पर काम प्रबल आया तब से प्रतिष्ठा भंग होने लगी और ऐश्वर्य भी घटता गया।

पाठकगण ! जब लग अरुणोदय न हुवा तब तक इन लोगों की वार्तालाप निरन्तर होती रही।

५६ वां अध्याय

समस्त देशों से बढ़ गया ।

अब वह समय है कि हनुमान की वीरता का चर्चा घर घर हो रहा है, उनकी जगदुपकार और सर्व हित कारिता की प्रसिद्धि सब वानर द्वीप में फैल गई, यद्यपि पवन जी ने अतीव यत्न किया और बहुतेरा चाहा कि राज्यभार उनको दिया जावे परन्तु हमारे महावीर ने अपनी प्रबल वक्तृता द्वारा इस बात पर उनको प्रसन्न कर लिया कि वह स्वतन्त्रता पूर्वक जीवन व्यतीत करें। पाठकगण ! वानर द्वीप देश का कोई भाग ऐसा न होगा जहां इसकी वीरता का शोर न मच गया हो किस की सामर्थ्य थी जो किसी दुर्वल पर अत्याचार कर सके या किसी दीन को निष्कारण सता सके। यद्यपि बहुत से राजा उस देश में थे परन्तु सब के सब इस राजधानी के आधीन थे प्रजा प्रसन्न थी कोई भी किसी प्रकार की पुकार नहीं करता था क्योंकि किसी को सामर्थ्य न थी कि दुर्वल को सता सके।

यदि तनिक भी किसी के मन में अत्याचार या दुष्कर्म का बीज उत्पन्न हुआ तो तत्काल ही रावण की दुरावस्था का चित्र उसकी आंखों के सामने भयानक रूप धारण कर आ गया मन कांप उठा हृदय भयभीत हो गया और स्वयं इसके हृदय से यह बीज दूर हुआ और शुभ विचार उत्पन्न हुए:—

यदि मेरे इस दुराचार की खबर निकली तो मेरी भी वही दशा होगी जैसे कि रावण की।

सार यह है कि हमारे वीर के समय में वानर द्वीप का देश समस्त दक्षिणी देशों से बढ़ गया और सब प्रजा आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगी।

चौपाई—देश सुखी भा अतिशय भारी,
ज्यहि समान नहिं अन्य विचारी।
धन यौवन सम्पत सुख नाना,
सकल प्रजा आनन्द मनमाना।
प्रीति प्रेम अरु धर्म विचारा,
सब प्रकार भया देश सुखारा।

पाठकगण! दक्षिणी भारत की तो यह दशा थी और उत्तरी भारत में महाराजा रामचन्द्र जी का डंका बज रहा था सार यह है इस समय भारत के भाग्य का नक्षत्र पूर्ण रूप से प्रकाशित हो रहा था, वेद और शास्त्रों की मर्यादा प्रचलित थीं किसी के विचार में भी न था कि यह समय भी भारत को देखना पड़ेगा, जब कि इस समय की प्रतिष्ठा वीरता और साहस को सुन कर अन्य देश निवासी इन्हें ईर्षा से झूटी और कपोल कल्पित मानने लगेंगे और भारत निवासी धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म मानेंगे। पाठक वृन्द! देखिये यह वही सौभाग्य का समय था कि जिस में विधाता को भी इस अपने बाग में ऐसे २ पेड़ लगाने स्वीकार थे, जिनके पुष्पों की गन्ध से आज लाखों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी भारत वर्ष महक रहा है और उन फलों का ध्यान करने से सेवती के

सुगन्धित पुष्पों की गन्ध के समान मन प्रसन्न हो जाता है इस लेख में फूलों से हमारा तात्पर्य हमारे प्राचीन ऋषि मुनि शूर वीर और महात्मा हैं, जिन्होंने हमारी मार्ग द्रष्टता के अर्थ एक से एक बढ़ कर काम किये आप लक्ष्य न कर दिखाया तो प्रिय भ्रातृगण ! हमारी लेखनी को सामर्थ नहीं कि हम उन फूलों की मुर्झाई हुई मूर्त्ति आप को यथावत रूप में दिखाने का यत्न करें और न ही हमारे में यह कहने की सामर्थ है कि वह प्रकृति नियमों के हस्तादेप से बाहिर थे, नहीं ! कदापि नहीं । वह भी इसी प्रकार प्रकृति नियम बद्ध थे, जैसे कि हम स्वार्थी आत्मश्लाघी और लोभी हैं और वह इन बातों से रहित थे और यही कारण है कि आज लाखों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी भारतवासियों को उनसे अपने प्रिय बन्धु वर्ग से भी अधिक प्रेम है, उनके जीवन वृतान्त सुन कर रुधिर खौलने लगता है, तो आप ही कहें कि दास किस प्रकार उन के रूप का चित्र खेंच सकता है, जिनकी पवित्र आत्मायें आज तक हम को निश्चय दिलाती हैं कि भारत देश सब देशों में अग्रगण्य था और अब भी रह सकता है यदि हम उन ऋषि मुनियों के सच्चे अनुयायी बनें और शूर वीरों के कर्त्तव्यों पर आचरण करें, जैसे कि देखिये हमारे नाबिल का वीर हनुमान यद्यपि इस समय वृद्ध प्रतीत होता है, तथापि इसके प्रताप और मुख शोभा में किंचित परिवर्तन नहीं हुआ वह उसी प्रकार कुन्दन के समान चमक रहा है, देखिये कैसे छाती ताने वृद्ध सेनापति धुन्द वीर से खड़े २ मुस्करा कर बातें कर रहा है एक हाथ से शत्रु हृदय विदारक गदा को हिला रहा है दूसरे हाथ से मूछों को सुधार रहा है, जिसको देख हमारा साहस

हो नहीं पड़ता कि किंचित मुख खोलें इस लिये दूर ही से प्रणाम कर आज्ञा मांगते हैं, और अपने मान्य वर्ग पाठकगण से विनय पूर्वक प्रार्थना करते हैं कि यदि कोई अशुद्धि इस क्षुद्र कृति में हो तो दास को सूचित कर अनुग्रहीत करें, यहां अनुवादक भी इस प्रार्थना से रुक नहीं सकता कि यदि किसी प्रकार ग्रन्थ कर्त्ता के आशय का यथार्थ रूप से प्रकट न होना वा अन्य अशुद्धि रह गई हो तो कृपा पूर्वक क्षमा कर सूचित करें। जिस पुनरावृत्ति में वह त्रुटि न रहे।

समाप्ति।

प्रिय पाठक गण! दास ने जहां तक इसकी क्षुद्र बुद्धि से सहाय दिया या बालमीक जी की पवित्र कृति ने सहायता दी हनुमान जी के जीवन चरित्र और लंका युद्ध का चित्र खैंच कर आप लोगों की भेंट की अब न्यायकर्ता आप हैं या तो आधुनिक प्रचलित रामायण को अशुद्ध वर्णन करने का दोष दीजिये या यह समझ लीजिये कि एक प्रेमी दास ने एक प्राचीन बहु मूल्य रत्न को धूलि से स्पष्ट कर आप के शुभ हाथों में समर्पण किया है।

आप का दास—

ठाकुर सुखराम दास चौहान,

मालिक—राजपूत गज़ट लाहौर।